अंधेरी रात के तारें
एक कलाप्रेमी के सांस्कृतिक-साहित्यिक संस्मरण
किशनसिंह चावडा
अनुवादक
कृष्णगोपाल अग्रवाल
सोमैया पब्लिकेशन लिमिटेड

जिप्सी की आँखों से

1947 का वर्ष। विख्यात गुजराती पत्रिका 'सस्कृति' का पहला अंक प्रकशित हो चुका था। एक शाम को 'संस्कृति' के सम्पादक भाई उमाशंकर, प्रसिद्ध गुजराती लेखक श्री 'स्नेहरश्मि' और मैं गपशाप करते हुए बैठे थे। बातों-बातों में मैं एक बीता हुआ प्रसंग छेड़ बैठा। उस पर हास्य-विनोद हुआ। कुछ प्रोत्साहन मिलाप . . . अन्य बातें छिडी। उमाशंकरजी ने इस प्रकार के प्रसंगों को लिखने का आग्रह किया। अच्छे ढंग से लिखे जाये, तो -संस्कृति' में छपवा देने का आश्वासन भी दिया। परन्तु मेरा भीतरवाला यों आसानी से मानने को तैयार नहीं हुआ।

'संस्कृति' के माध्यम से उमाशंकरजी से आत्मीयता बढ़ती गयी। इससे श्रद्धा को बल मिला, विश्वास जागृत हुआ। दो-तीन प्रसंग लिख डाले। लेकिन उमाशंकरजी की कसौटी पर वे खरे उतरेंगें या नहीं इसकी शंका थी। हर महीने के आरंभ में वे 'संस्कृति' के अंतिम संपादन के लिए बडौ़दा आते थे। एक बार डरते-डरते उन्हें एक रचना दिखायी। भाग्य की बात कि उन्हें पसंद आ गयी। अब एक नयी दिक्कत उपस्थित हुई। अपने नाम से छपवाने में मुझे बेहद संकोच हुआ। पाठकों को, मित्रों को न मालूम कैसी लगे यह आकांशा मन को कुरेदती रही। आखिर अपनी घुमक्कड़ वृत्ति के अनुकूल 'जिप्सी' उपनाम धारण किया। 'जिप्सी की आंखों से' नामक लेखमाला का सूत्रपात इस प्रकार हुआ।

ज्यों-ज्यों ये रचनाएं प्रकाशित होती गयी, उन्हें पाठकों का अधिकाधिक सद्भाव प्राप्त होता गया। अधिक लिखने का आत्मविश्वास इससे और भी दृढ़ हुआ। पर इसी में से एक अन्य उत्पाद ने जन्म लिया। अंतर की धरती पर एक नये कुरूक्षेत्र का निर्माण हुआ। संघर्श जगा। और मनोभूमि के एक कोने से आत्मशुद्धी का सोता फूट पड़ने के लिए कुलबुलाने लगा। मैं उसे फूट पड़ने से रोकने का प्रयत्न करता रहा। तभी मुझे अनुभव हुआ कि मनुष्य के भीतर दर असल दो शक्तिया एकसाथ निवास करती है। सुन्दर और असुंदर। इस बात की शंका तो बहुत पहले से थी। लेकिन साधना के बिना अनुभूति कैसे मिले! इस कसमकस में इन रचनाओं ने मित्रों की भांति सहायता की है। डगमगाते हुए कदमों को संभाला है, टटोलते हुए हाथों को साधा है। मुझमें 'जिप्सी' का जन्म न हुआ होता, तो जीवन की किचित् भी श्री देख पाने का मेरा बूता नहीं था। अतः उस प्रेरणास्रोत को जीवित रखने का और उसे झेलने-पचाने का सदा निष्ठा से प्रयत्न करता आ रहा हॅंू।

घटनाएँ तो जीवन में घटी हुई पडी़ थी-हृद्य के किसी निभृत कोने में, उपेक्षित और अनगढ़। जीवन में जब कभी कोई काव्यसत्य (पोएटिक ट्रूथ) प्रस्फुटित होता, संबंधित प्रसंग तुरंत उसकी उंगली पकड़ कर खडे हो जाते। बस, इसी प्रकार की प्रक्रिया इस लेखमाला के पीछे रही है। बेशक, उसकी पीठिका है अनुभूति। परंतु आकृतिबंध बांधने के लिए कहीं-कहीं कल्पना की छूट मैंने ली है। स्थान-स्थान पर रंगों का संमिश्रण किया है। कलम चलानी न आयी हो, तो यह कमी मेरी है। इन संस्मरणों का आरंभ करते समय केवल आनंद ही प्रयोजन था। ज्यों-ज्यों लिखता गया त्यों-त्यों विशुध आनंद के साथ-साथ अंतरात्मा की अनुकंपा का योग भी हुआ। मेरे लिए यह दोहरा लाभ रहा। पाठकों को सिर्फ आनंद में ही सहभागी कर पाया, तो अपने प्रयत्न को धन्य सम्ज़ूगा।

मित्रों की माया-ममता इन रचनाओं को सदा प्राप्त होती रही है। पाठकों की सद्भावना ने ही इन्हें पुस्तक रूप में प्रकाशित करने का बल दिया है। अनेक रसिकों ने समय-समय पर पत्र लिखकर प्रोत्साहन दिया है। श्री

उमाशंकरजी जोशी, श्री विशणु प्रसाद त्रिवेदी, स्वामी आनंद, श्री मनसुखलाल झवेरी और श्री गुलाबदास ब्रोकर आदि मित्रों ने अपना स्नेह शब्दों में प्रकट करके इस संकलन का गौरव प्रदान किया है। उनके ऋण का अहसास मुझे है, परंतु उसे चुकाने का प्रयत्न नहीं करूंगा।

-किशनसिंह चावडा
'संकेत'
4, अरूणोदय सोसायटी,
बडौ़दा-8

°°°°°°

मर्मदर्शी जीवनयात्री

बंगलौर विज्ञान परिशद् से लीट कर आगरा जाते समय हमारे वयोवृद्ध साहित्यकार डॉ॰ कान्तिलाल पण्डया ने एक पत्र मुझे लिखा था। पूछा था: ''इन दिनों 'प्रजाबंधु' में 'संस्कृति' पत्रिका से उद्धृत स्व॰ फैयाज़खां संबंधी लेख पढा़। संगीत विशयक इतनी गहन जानकारी से गुजराती भाषा में ऐसा वर्णन कर सकने वाला लेखक कौन हो सकता है? किसी पर ध्यान नहीं ठहरता। आखिर यह 'जिप्सी' है कौन?''

संस्कृति' में 'जिप्सी की आंखो से' शीर्षक के अन्तर्गत छपने वाली लेखमाला के संबंध में मुझे और भी अनेक पत्र मिल चुके थे। सुदूर कच्छ, मद्रास और कलकत्ता से भी। कभी कोई सज्जन कहते, ''हमारी वृद्धा माताजी है। 'संस्कृति' आते ही ऐनक को ठीकठाक कर के सब से पहले 'जिप्सी' पढ़ लेती है।' ' अनेक साहित्यकारों और साहित्यरसिकों के मुख से भी इसी प्रकार का इकरार सुन चुका हूँ। संस्कृति के उद्धृत या अनूदित होकर ये प्रसंग गुजराती के साथ ही अन्य कई भाषाओं की पत्रिकाओं में भी प्रकाशित हो चुके है। इनकी लोकप्रियता का एक उल्लेखनीय उदाहरण-बम्बई ग्रंथागार' के श्री रसिक झवेरी ने भी सुनाया था। उनका अनुभव इस प्रकार था। बम्बई के नल बाजा़र-भिंडी बाजा़र मुहल्लों से आने वाले एक श्रमिक पाठक को कोई पुस्तक पसंद ही नहीं आती थी। वह जो भी पुस्तक ले जाय, दूसरे दिन आ कर ग्रंथपाल के सामने नाक-मुंह सिकोडे और पुस्तक वपास कर दे। आखिर थक कर, और कुछ उसे सबक सिखाने के हेतु से, उन्होंने उसे 'संस्कृति' की भारी-भरकम पुरानी फाईल थमा दी। कुछ दिन बाद वह पाठक फिर आया और हर्शातिरेक से चिल्लाने लगा। ''खुल गये खुल गये!'' ''अरे भाई क्या खुल गया?''-फरमाया: ''जिप्सी पढ़कर अंतर के किवाडे खुल गये।!''

'जिप्सी' कौन है, इस विषय को लेकर आरंभ में अनेक तर्क-वितर्क हुए थे। शांतिनिकेतन का उल्लेख होने के कारण श्री नगीनदास पारेख का अनुमान हुआ। संगीत और श्री अरविद का जिक्र आने से सोचा गया कि शायद दिलपकुमार रॉय की रचनाएं होगी। किसी-किसी भले मानस ने तो वह टोपी मुझे ही पहनाने की कोशिस की। (मैं मानता हूं कि घुमक्कड़ मैं भी हूं। लेकिन इस से मुझे ठेठ 'जिप्सी' करार नहीं दिया जा सकता।) दूसरी तरफ बात बढ़ती ही गयी। योरप, अफ्रीका, अमरीका-त्रिखंड की निजी अनुयतियों वर्णित होने लगी। ऐसे विविध अनुभवों वाला गुजराती लेखक ढूढ़ना और भी मुश्किल हो गया। अब मैं राजा-महाराजाओं के अब इतिहास के गर्भ में विलीन हो चुकने वाले कारवां की मर्मस्पर्शि वर्णमाला आरंभ हुई जिसमें 'जिप्सी' को श्री किशनसिंह चावडा़ के रूप में पकड़वा देने में सहायता की।

प्रस्तुत लेखमाला उन्हीं 'जिप्सी' की कृति है। जिप्सी का अर्थ हुआ अतिरिक्त प्राणशक्ति के उद्रेकवाला बहिमुख, घुमक्कड़ और फक्कड़ आदमी। लेकिन इस 'जिप्सी' को सिर्फ बहिमुख घोशित कर देने से शायद उस पर अन्याय होगा। बाहरी दुनिया की धकामुकी में सदा डूबे दिखाई देने वाले व्यक्ति कभी-कभी भीतर की सृश्टि के शोधक अन्तमुख यात्री भी होते है। इस बात का इंगित इन संस्मरणों में स्थान-स्थान पर अवश्य मिलेगा।

इस पुस्तक से पहला प्रभाव पड़ता है विविधता का। यह स्वाभाविक है। चैखंड धरती (अक्षरश आस्ट्रेलिया को छोड़ कर चारों महाद्विपों) के अनेकविध अनुभव इस में ग्रथित हुए है। इन प्रसंगों को पांच-छः मोटे मोटे विभागों में बांटा जा सकता है।

1. परिवारिक कथाएं।
2. दिल की गहराइयों को भेद जाने वाले लाक्षणिक चरित्रों का आलेखन।
3. संगीत विशयक वर्णन-संस्मरण।
4. राजा-महाराजाओं की विलुप्त दुनिया की झांकों। उनके पराक्रमों और पराजयों, षक्तियों और कमजोरियों की निकटतम झलक।
5. जीवन की समीक्षा करने वाले प्रसंग
6. जीवनमांगल्य का दर्षन कराने वाली मर्मकथाएं।

‘ ‘पहले मन को मूंडो, फिर आतम को ढूंढो ‘ ‘-गाने वाले गोविदसिंहजी चावडा परम भक्त गृहस्थ थे। उनके प्रखर व्यक्तित्व का उत्ताप क्रोध के आवेश में महाकौर मेहतरानी को माकली कह बैठने वाली माँ को जीवनभर सहन करना पडा। परंतु दीक्षा लेने के मौके पर उसी माँ की निस्वार्थ पर मर्मस्पर्शी राय को मान लेने में गोविदसिंहजी को कोई संकोच नहीं हुआ। कुटुम्बजनो में पिता के उपरान्त गंगाबुआ, अमृता बहन आदि पात्र भी आकर्षक है। परंतु मां-मंगलसूत्र रेहन रख कर बेटे के लिए साईकिल जुटा देने वाली मां की मूर्ति तो अविस्मरणीय हो उठी है।

विविधरंगी और बहुढंगी पात्रों से परिचय तो कदम-कदम पर होता है। गंगा के घाट पर सपेरे के नागराज को मुग्ध कर देने वाला अनजान पखावज वादक-साधु मातृत्व बरसाने वाली अमरीकी महिला ‘एकावनी’ की भावभीगी सुरावली से मेहमान का स्वागत कर के धन्यवाद व्यक्त करने वाली तरूण आंग्ल माता, राषन के जमाने में इत्रफरोष को करारी सलाह सुना कर मिट्टी का तेल बेचने की बेशकीमत राय देने वाले गंथप्रेमी डाक्टर मुस्तफा अपने मरीन ड्राइव पर लोगों की भीड के बीच चुटको से ताल दे कर रागो के गुजन में डूब जाने वाले बैरिस्टर झाबवाला, फटा हुआ गमछा जीमन पर बिछा कर शाही अदा से लोगों के आदाब स्वीकार करने वाला दिल्ली सल्तनत का अंमित अवशेष, मरे हुए षेर के शारीर में गोलियां दाग कर अदा से फोटो खिचवाले वाले बहादुर गोरे लोग सिफ भाले की सहायता से शेर को बीध कर विवाह का अधिकार प्राप्त करने या मसाई नौजवान, ‘‘गाडी को जाना हो तो जाय, मैं अपनी चाल नहीं बिगाड सकता। कहने वाले स्वानामधन्य हाइनेस, ठेले पर बैठी हुई प्रियतमा का सवारी खीचने वाला श्रमिक अल्लाहमियां द्वारा फुरसत के क्षणों में बनाई गयी चीज-----ठाकोर फक्कड चाचा, नन्नू मियां अफलातून लाहरी के ठाकुर रघुनाथसिंहजी हाजी वजीर मुहम्मद --गिनाऊ, यह चरित्रमाला तो शायद ----की समूची विशिष्टताओं का निरूपण करने के लिए पर्याप्त सिद्ध होग।

शास्त्रीय संगीत का आस्वादन और आलेखन इन संस्मरणों का एक महत्वपूर्ण अंग है। चित्रकला के आस्वादन पर तो फिर भी अपनी भाशाओं में थोडा बहुत लिखा जाने लगा है। इसी प्रकार संगीत के संबंध से भी गहरी जानकारी के साथ और उन अनुभवों को मानो फिर से जी रहे हों ऐसी तादृषता और तल्लीनता से लिखा जाना चाहिए। इस अभाव को बहुत हद तक इन प्रसंगों ने पूरा कर दिया है। लेखक संगीत, नृत्य, चित्रकारों आदि लालेत कलाओं के अपने संवेदित संस्पर्षी को सुभम रीति से षब्दबद्ध कर पाये है। स्व॰ फैयाज़खां या नन्नू उस्ताद संबंधी संस्मरणों में इसका विषेश परिचय मिलता है।

जीवन को समीक्षक की दृष्टि से देखने पर जो विसंवादी चित्र दिखाई देते है उन्हें वर्णे का संतुलन रखते हुए कूची के हल्के स्पर्श से चित्रित किया गया है। आरती के चढ़ावे में से उडा़ये जाने वाले पैसे, पूजा के दीपक में पुराना बदबूदार घी जाने वाला परम वैशणव वणिक्, फ्रीमेंसन जैसे उच्चभ्रू संस्था के दानपात्र में से निकलने वाले खोटे सिक्के, आदि चित्र जीवन को एक भिन्न कोण से निरखने की प्रेरणा देते है। स्वातत्र्यप्राप्ति के बाद स्वदेष

लौटने वाले किसी भावुक खादीधारी की ललक को किसी अनुभवी ने कैसी सनसतानी हुई राय दी है। आज की राजनीतिक दाभिकता को ''बडी मुश्किल से स्वराज मिला है। गर्व हो तो उसे संभालना' ' आदि शब्दों में एक जनखे के मँहु से उसी नियम चुनौती दे रहा है। इसी प्रकार की विसंवादिता में से लेखक कही-कही जुडवा दृश्य प्रस्तुत करते है। एक आंख कुल्पित दृश्य पर ठहरती है, तो दूसरी किसी परम मंगल तत्व पर। जीवन है भी ऐसा। इन दोनों के आलोडन से अंत में तो हृदयगुंजन को संवादिता के सम पर ही लाने का प्रयत्न किया गया है। 'उजाले से अंधियारे में' , 'आल्पता और महत्ता' , 'भारतीय और अंगरेज' , एवम् 'जीवन का सौदर्य और कुरूपता' आदि जुडवां प्रसंग इसी श्रेणी के है।

हास्य-विनोद के प्रसंग अकसर राजा-महाराजाओं संबंधी संस्मरणों में आये है। महाराज साहब के 'अनिवार्य असदाब' में पंद्रह-बीस मन वजन की कपडे धौने की शिला भी हो सकती है। बडे लाट साहब द्वारा शिकार में मारे गये शेर का नाप जिस फीते से लिया जाता है, उसका पहला फुट कटा हुआ ही होना चाहिए। गाडी़ प्लेटफार्म पर आ जाने के बाद पान और हुक्के की तलब लगने में ही खरा आभिजात्य समाया हुआ है! इन प्रसंगों पर लेखक घनांतर्गत हास्य की और इंगित कर के आगे बढ़ जाते है। उस पर भाष्य करने के लिए रूकते नहीं।

परंतु समूचे ग्रंथ के मर्मभाग जैसे संस्मरण है जीवनमांगल्य का दर्षन कराने वाले प्रसंग। मानवजीवन की अंतिम कल्याणमयता का वातावरण तो पूरे गंथ पर छाया हुआ है। फिर भी, इतालवी कैदी मजदूरों द्वारा निर्मित गिरजे की कथनी हृदयधर्म का प्रसाद' या गांधी इस देष में अभी जिंदा है आदि प्रसंग इसकी सविषेश प्रतीति कराते है।

एक पुस्तक के दायरे में एक लेखक के लिए इतनी विविधता खासी मानी जायगी। इस विषय में कुछ पाठकों के मन में यह प्रशन उठ सकता है कि ये सारी बातें क्या सत्य घटनाएं होगी? मनुष्य के छोटे से जीवनकाल में क्या किसी एक व्यक्ति को इतने अनेकविध अनुभव हो सकते है? मेरी दृष्टि में ललित साहित्य की किसी रचना के संबंध में ऐसे प्रशन उपस्थित ही नहीं होने चाहिये। ये सारे प्रसंग लेखक के स्वानुभव के हों, तब तो निश्चित ही उनके प्रति आशचर्य मिश्रित आदरभाव उत्पन्न होता है। लेकिन यदि इनकी या इनमें से कुछ की उन्होंने कल्पना की हो, तो भी उनकी अमोध कल्पना शक्ति के प्रति उतना ही आदर उत्पन्न होता है। वास्तव में इन दोनों दृष्टियों से देखने की आवश्यकता नहीं। अमुक रचना संस्मरणात्मक है या सत्य घटना है, केवल इसी कारण से वह महत्वपूर्ण नहीं होती। महत्वपूर्ण बात यह होती है कि वह संस्मरण किस विशिस्ट व्यक्ति के हैं। उनमें जीवन के किसी मर्म का उद्घाटन है या नहीं। मनुश्य स्वभाव के किसी सुंदर पहलू को वह साकार करती है या नहीं। विशिस्ट जनों की संस्मरणात्मक या आत्मकथात्मक रचनाएं वे खुद जिन जीवनमूल्यों को साकार करते है उनके अनुसंधान में ही अर्थपूर्ण बनती है, अन्यथा नहीं। लेखक ने अपने निवेदन में यह स्पस्टीकरण कर भी दिया है कि इतिवृत्त के साथ उन्होंने कहीं-कहीं थोडी़-बहुत छूट ली है और काव्यगत सत्य (पोएटिक ट्रूथ) के अधीन रह कर रचना की है।

कई बार साधारण बातचीत के दौरान में भी हम देखते है कि किसी प्रसंग का वर्णन हम आज करें और फिर छह महीने बाद करें, तो दोनों समयों की हमारी भिन्न मनोभूमिका के अनुसार दोनों में थोडा-बहुत फर्क पड़ ही जाता है। कुछ लोग संभाशण के कलाकार होते है। वाणी द्वारा वे अकसर किसी सत्यांश का आकार देने के प्रयत्न में रहते है। किसी समय वे उस सत्यांष के एक पहलू को विकसित करते है तो किसी अन्य परिस्थिति में किसी और पहलू को महत्व दे कर उसी सत्यांष की किसी अधिक इश्ट किरण को प्रकट करने की चेष्टा करते है। वर्णनात्मक प्रसंगकथन में तो उनकी दृष्टि सदा सत्य के सौन्दर्यांश की खोज में ही केन्द्रित रहती है। ऐसी दृष्टाओ की स्मृति भी किसी प्रसंग-विशेष का यथातथा निरूपण करने के बजाय सत्यसौन्दर्य के मापदंडों की आवष्यतानुसार उन प्रसंगों का सौन्दर्यात्मक आंकलन करने वाली होती है। इस प्रकार की स्मृति को एक यूरोपीय कवि-मनीशी ने सर्जक स्मृति (क्रिएटिव मेमारी) नाम दिया है। इसमें सत्य का अपलाप होता है ऐसा

मानने का कोई कारण नहीं। अलबत्ता, विज्ञान, जीवनी आदि में यह नहीं चल सकती। लेकिन ललित 'साहित्य में, कलाप्रवृत्त रचनाओं मेेें इस प्रकार की सर्जक स्मृति को विकसित होने का पूरा अधिकार है।

श्री किशनसिंह चावडा़ की सर्जक स्मृति की ये कृतियां जिस हद तक मानवजीवन के किसी न किसी रहस्यसौन्दर्य को साकार कर सकी है उसी हद तक वे साहित्य के रूप में आस्वाद्य बन पायी है। ऐसे सौन्दर्य की शोध के आभाव में उनकी लेखनी अकसर प्रवृत्त हो नहीं हुई। इस संस्मरणों में केवल वर्णन की खातिर वर्णन का या रहस्यशोधन में असफलता मिलने का उदाहरण शायद ही मिले। केवल वर्णनात्मक प्रंसगों में भी ऐन मौके पर मानवभावना का संचार करा के वे उन्हें कितना सजीव बना सकते है, इसका सर्वोत्तम उदाहरण 'मातृत्व' में देखा जा सकता है।

सत्य घटनाओं के अंग होने के बावजूद इन प्रसंगों के कुछ अंश किसी को अरूचिकर मालूम दे सकते है। उदाहराणर्थ, महान विभूतियों के निकट संपर्क में आने के एकाधिक प्रसंग, या अनच्छिा से ही सही पर अपने आप को राजा के रूप में खपा देने वाला प्रसंग, या कभी किसी को कुछ आर्थिक सहायता करने के उल्लेख। इसमें रूचिभेद हो सकता है। परंतु अधिकाश में तो, स्वानुभव पर आधारित किसी भी रचना में यह दोश निर्वाह्य ही नहीं, किसी हद तक अनिवार्य भी माना जायगा।

मुझे विश्वाश है कि इस संस्मरणों का गद्य आस्वाद्य प्रमाणित हुए बिना नहीं रहेगा। जिप्सी की आंखों से देखी हुई इन प्रसंगमालाओं का आकृतिबंध ही ऐसा है कि एक ओर यदि लेखक को एक स्वयंनिर्मित नियंत्रण में रहना पडा़ है तो दूसरी आरे उनके हृदय में रूंधा हुआ काव्य अनिर्बंध रूप में प्रकट हो सका है। 'कलाकार की दिलदारो' का वर्णन या 'आत्मविलोपन के उत्सव' का निरूपण, सितारनवीस नन्नू उस्ताद की वादन कला का आलेखन या फैयाज़खां द्वारा प्रस्तुत मल्हार के चारों रूपों का शब्दांकन काव्य में सराबोर डूबी हुई षौली में हुआ है। 'संगीत की सरहदों का सूबेदार तानपूरा' , 'आदमीयत की सुगंध' ,'जीवन का इत्र' , 'शिक्षा का अंधत्व' इत्यादि शब्दावली इन संस्मरणों का एक विशिष्ट लक्षण है। और दिल्ली के स्टेडियम में आग लगे इस परिवार नियोजन में कह कर मातृत्व की कामना करने वाली नवोढा कामिनी का केवल कानों की सहायता से किया हुआ रेखांकन तो लेखक की ढीठ अनुभवदक्षता का अविस्मरणीय परिचय करा जाता है।

इस प्रकार के वैविध्यपूर्ण मधुसंचय की कीमत भी महँगी चुकानी पडी होगी। लेकिन हमें इस से क्या गरज? हमे तो इत्र से काम। पंखुड़ियों पर क्या बीती होगी, यह वे जाने। केवल षब्दों की सहायता से मानवजीवन में चित् भी सौंदर्य प्रकट किया जा सके, तो यह काम कृतार्थता का अनुभव नहीं रोमाँ रोलाँ ने कही कहा है कि हम तो है मिट्टी के पिंड। अनगढ और असुंदर। जब कि कला है उस पिंड के भीतर में प्रस्फुटित होने वाला मोहक और रमणीय सुमन।

स्वानुभवों को कलारूप दे कर जीवन के सौन्दर्य को व्यक्त करने वाले चुटकुले, प्रसंग-निरूपण, रेखा चित्र या कथाएं प्रस्तुत करने के इस प्रकार के प्रयत्न विदेशी भाषाओं में अकसर दिखाई दे जाते है। अपने यहां भी ऐसा प्रयत्नों का आरंभ हो चुका है। परन्तु अपनी अंतरानुभूति और आत्माभिव्यक्ति का सहज वाहन हो ऐसे सरल सुंदर ढंग से श्री किषनसिंह चावडा़ को छोड़ कर षायद ही किसी अन्य साहित्यकार ने साहित्यविधा का इतने बडे पैमाने पर प्रयोग किया हो। सौदर्यबोध की अत्यंत सूक्ष्म संवदेना के कारण इस साहित्यविधा को कला के उच्चत्तम षिखर पर पहुचाने की संभावनाओं का भी श्री चावडा़ की कलम ने अधिकतम विकास किया है। परिणाम-स्वरूप हमें जीवन की मधुर और मत्त सुगंध से भरी हुई एक प्रसन्नवदना और प्राणमन में बस जाने वाली रचना प्राप्त हुई है।

'संस्कृति' -उमाशंकर जोशी
अहमदाबाद

मनोहारी सौन्दर्य

श्री किशनसिंह चावडा़ का जीवन निरंतर प्रवास और जनसम्पर्क के द्‌वारा असाधारण रूप से समृद्ध हुआ है। उनके पास जीवन के इन अनेकविध अनुभवों को पचाने की और मानवहृदय के मंगल अंषों को देखने की मूलगामी दृष्टि है और उन्हें हृदयस्पर्शि एवम्‌ महनोहारी कात्मकता से शब्दांकित करने की असाधारण शक्ति है। प्रस्तुत प्रसंगमाला में इस शक्ति का विशेष रमणीय अधिकार हुआ है। इन संस्मरणों में स्थान, समय, पात्रों और प्रसंगों का आधार वैविध्य है। उनके रहस्य को पहचानने में और उनका आलेखन करने में लेखक की स्मृति और दृष्टि का कुशलतापूर्वक विनियांग हुआ है। अंधेरी रात में टिमटिमाते ये तारें चमके तो है वास्तविक अनुभूति गगन में, पर उनका निरूपण इतनी सावधानी और सूक्ष्मता से हुआ है कि पाठकों को निरविषय समाधि में लीन कर उनके उदात्त मानवीय भावों को स्पर्श कर जाने वाली क उत्तम कलाकृति के चेतोहर सौन्दर्य की उपलब्धि हुई है।

-मनसुखलाल झवेरी

कलामय और सौन्दर्यशील

प्रस्तुत संकलन में समायी हुई कथाओं की यह साहित्यविधा अनेक प्रसार से वैषिश्टयपूर्ण है। वह आत्मकहानी है, पर आत्मकथा का भाग नहीं। संस्मरणात्मक है, पर कोरा इतिवृत्त-कथन नहीं। उसमें की अनेक कथाएं अत्यंत लाघवयुक्त कहानियाँ बन गयी है। परंतु लेखक उन्हें ‘कहानी’ नहीं कहते। फिर ये प्रसंग आखिर है क्या? जिसकी आंखे खुली है, हृदय संवेदनशील है, और पांव इस चैखड पृथ्वी पर नित्य भ्रमणशील है ऐसे एक सूक्ष्मदर्षी कलाकार ने खुद अनुभव किये हुए और जिये हुए जगत और जगत के जीवों का सुभग आलेखन है यह। उनकी भाषाशेली और वस्तु का कसाव और उठाव इतने कलामय और सौन्दर्शील है कि ‘संस्कृति’ में जब से ये प्रसंग प्रतिमास प्रकाशित होने लगे तब से ही हमारे और परप्रांतों के अनेक पाठकों के मन को इन्होंने मोहित कर लिया है। साहित्य की इस अभिनव सुन्दर विधा को अपनी भांषा में लाने वाला यह संकलन हमारे साहित्य को निःसंशय एक विशिष्ट देन सिद्ध हुआ है।
-गुलाबदास ब्रोकर

अनुवादक का निवेदन

आज कोई बारह वर्ष पूर्व मेरे अभिन्न मित्र और साथ प्रा. सुरेश दलाल के साथ श्री किशनसिंह चावडा़ की पुस्तक ‘अमासना तारा’ के सुरस संस्मरणों में आकंठ डुबकियां लगाते समय आनंद के जिन क्षणों का अुनभव किया था उन्हें हिन्दी-भाशी पाठकों के साथ बांट लेने का संकल्प मन में उठा था। हर्ष का विषय है कि आज इतने वर्षो के बाद ही सही, पर उस संकल्प की सिद्धि हो रही है।

साहित्य की इस अभिनव विधा के आकृतिबंध के विशय में या इन संस्मरणों के वैयक्तिक सत्यानुभव होने-न होने के संबंध में मुझे कुछ भी नहीं कहना है। स्वयं लेखक ने अपने वक्तव्य में और गुजराती के मूर्धन्य समालोचक श्री उमाशंकर जोशी ने अपनी प्रस्तावना में इन प्रश्नों का समीचीन एवं स्पष्ट निराकरण कर दिया है। सृजनात्मक साहित्य के संदर्भ में इस प्रकार के प्रश्न एक विशिष्ट सीमा के बारह उपस्थित ही नहीं होने चाहिये।

मुझे तो आकर्शित किया था लेखक की सनातन जीवनमूल्यों के प्रति अविचल निष्ठा ने। परंपरा और संस्कारों की प्रतिक्षण ढहती हुई वुर्जियों के बीच किसी निष्चल स्तूप की तरह खडी़ हुई उनकी एकांत श्रद्धा ने। मानव की बुनियादी मांगल्य-प्रवृत्ति के प्रत उनके अडिग विष्वास ने। पढ़ते समय बार-बार ऐसा महसूस हुआ कि खोखले सिद्धांतों और नित-नये वादों की सस्ती नारेबाजी के इस युग में साहित्य-मनीशियों के अंतर मे जब तक ये आस्थाएं मौजूद है तब तक मानव जीवन को एक निष्चित आलंबन मिलता रहेगा। और उस के भविश्य के विशय में आषंकित होने की आवष्यकता नहीं। इसी प्रकार, द्‌वितीय विष्वयुद्ध से पहले के उस बीते हुए युग की

जो अंतरंग झांकियां इन संस्मरणों में प्रस्तुत हुई है वे उस पीढ़ी को काफी हद तक आष्वस्त करती है जो वर्तमान की लड़खड़ा देने वाली रफतार के साथ कदम मिला कर चलने में असमर्थ रही है और जो हर परिवर्तन को प्रगति मानने से इनकार करती है। स्वातंत्रय प्राप्ति के बाद के पिछले पचीस वर्शो में नैतिक, राजनैनिक, समाजिक और साहित्यिक मूल्यांे के क्षेत्र में हम जहां पहुंचे है और जहां जा रहे है उससे लेखक की आत्मा को जो क्लेष पहुंचा है उसकी झलक इन पृश्ठों में कदम-कदम पर बिखरी पड़ी है। वे एकांतिक रूप से प्राचीनता के पूजक या आधुनिकता के विरोधी नहीं। किसी भी प्रकार की कड़वाहट गया गुटबंदी से तो वे कोसों दूर है। लेकिन बुनियादी बातों में उन्हें किसी प्रकार का समझौता स्वीकार नहीं।

इन दिनों उनके दर्शन का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ। अनुवाद संबंधी मेरी हर समस्या का उन्होंने जिस आत्मीयता और स्नेह से निराकरण किया उस से मस्तक श्रद्धा से नत हो गया। उन्हीं के एक पात्र के संबंध में प्रयुक्त उन्हीं शब्दों में कहूं तो, ... वर्ताव में इतनी तहज़ीब, बातों में इतनी खानदानी, आँखों में इतना स्नेह और हृदय में इतनी उदारता कि मुझे तो वे उस गुजरे हुए जमाने की पुरलिहाज इन्सानियत की जीती-जागती प्रतिमा जैसे दिखाई दिये।’ ’

अनुवाद में मूल की ताज़गी और सुशमा का निर्वाह आंशिक रूप में भी हो पाया है या नहीं इसका निर्णय पाठक ही करेंगें। पर एक बात स्पश्ट है। इन पृश्ठों में जो निर्मल गंगाजल है वह लेखक की उपलब्धि है। बरसाती नालों का मटमैला पानी आन मिला हो, तो वह कमी मेरी है।

प्रस्तुत संकलन में ‘अमासना तारा’ के उपरान्त ‘जिप्सी नी आंखे’ से भी कुछ संस्मरण लिये गये है।

सुधो पाठकों और विद्वान समालोचकों से क्षमा-प्रार्थना करते हुए यहाँ एक साहसी प्रयोग का स्पश्टीकरण कर देना आवष्यक समझता हूँ:

अंग्रेजी की कुछ स्वर -ध्वनियों को नागरी में लिखते समय जिन मात्राओं का प्रयोग किया जाता है, उनके से एक मुझे बेहद खटकती रही है। अंग्रेजी के Barrister, Captian, Bat, Tax इत्यादि शब्द हिन्दी में बैरिस्टर, कैप्टन, बैट, टैक्स इ. रूपों में लिखे जाते है। इन शब्दों में अंग्रेजी ‘a’ का जो विषिश्ट उच्चारण है उसकी समकक्ष स्वर-ध्वनि हमारी भाषाओं में नहीं है और इसी कारण से उसकी अभिव्यक्ति के लिए कोई निर्धारित संकेत या मात्रा भी नहीं है। परंपरा से इस स्वर को की मात्रा के द्वारा ही व्यक्त किया जाता है। परंतु इस में दिक्कत यह है कि एक संयुक्त मात्रा है जिसका अपनी भाषाओं मे सुनिश्चित उच्चारण है जो ‘अय’ और कुछ हद तक ‘अइ’ के निकट है। इस मात्रा के अनुसार उच्चारण करने पर अंग्रेजी के ये शब्द हास्यास्पद हो उठते है। अहिंदीभाषी मित्रों ने इस का उल्लेख अनेक बार मुझसे किया है जिसका कोई संतोषजनक उत्तर मैं आज तक नहीं दे पाया हूं। इस कठिनाई से बचने का सरलतम उपाय मुझे यही सूझा कि इस ध्वनि को एक भिन्न माना के द्वारा व्यक्त किया जाय। इन्हीं कारणों से प्रेरित हो कर उपरोक्त शब्दों को इन पृश्ठों में बॅरिस्टर, कॅप्टन, बॅट, टॅक्स आदि रूपों में लिख गया है।

प्रा. सुरेश दलाल का प्रोत्साहन न होता तो यह उपक्रम इस रूप में शायद ही पूरा हो पाता। आरंभ से ही वे मेरी प्रवत्ति के साथ इस हद तक एकरूप रहे कि उनका औपचारिक आभार मानने की हिमाकत नहीं करूंगा।

पुस्तक को इतने सुंदर रूप में प्रकाशित करने के लिए मे.सोमैया प्रकाषन के संचालक धन्यवाद के पात्र है।
-कृष्णगोपाल अग्रवाल

1
माँ

पिताजी जब कभी बाहर जाते तब माँ बहुत उदास हो जाती थी। इस वजह से ही या न जाने और किसी वजह से, पिताजी जब तक अनिवार्य कारण न हो तब तक दूर की यात्रा क्वचित् ही करते थे। एक दिन सूरत के गुरूद्वारे से तार आया। पिताजी को तुरंत सूरत आने की गुरू महाराज ने तार से सूचना दी थी। उन दिनों किसी के यहाँ तार आना बडा़ महत्वपूर्ण प्रसंग माना जाता था। अकसर कोई बुरी खबर हो, तो ही किसी के यहाँ तार आता था। पूरे मुहल्ले में बात फैल गयी कि हमारे यहाँ तार आया है। धीरे-धीरे लोग पूछताछ को आने लगे। तार में कोई बुरा समाचार तो था नहीं। अतः चिंता का स्थान कुतूहल और उत्साह ने ले किया । इस षताब्दी के आरंभ का जमाना। साधारण लोगों के लिए सूरत-अहमदाबाद जाने का प्रसंग भी दो-चार साल में एकाध बार ही आता था। और, बम्बई-कलकत्ता जाना तो सुदूर विदेषयात्रा के समान कठिन और विरल माना जाता था।

पिताजी के सफर की तैयारी होने लगी। माँ की सहायता के लिए बडी़ मौसी और मामी आ पहुंची। पर्वती बुआ एक पीतल के चमकदार डब्बे में चार मगद के लड्डू ले आयी। पिताजी के पाथेय का प्रष्न इससे आधा हल हो गया। बिस्तर के लिए मामा अपनी नयी दरी लेते आये थे। लल्लू काका धोबी चार दिन बाद मिलने वाले पिताजी के कपडे उसी रोज इस्तिरी करके दे गये। शाम को भजन हुआ। राज को भोजन के बाद पुरूशोत्तम काका ने लालटेन की रोशनी में पिताजी की हजामत बना दी। पिताजी मध्यरात्रि की लोकल से जाने वाले थे। इतनी रात गये सवारी मिलना मुश्किल होता। अतः दस बजे ही घर से निकल देने की बात तय हुई। साढे नौ बजे तांगा लाने के लिए मामा लहरीपुरा गये। हमारे परिचित मुस्लिम स्वजन मलंग काका का तांगा चैराहे पर ही खडा़ था। मामा के कहते ही वे आ गये। उन्होंने रात को ग्यारह बजे तक गपषप कर के पिताजी के बिछोह का विशाद कुछ हद तक हलका कर दिया। लेकिन तांगा जाते ही कठिनाई से रोके हुए मां के आूस बरस पडे। मौसी, मामी और बुआ माँ को ढाढ़स बाँधती रही और आधी रात बीते घर गयी। हम भी लेट ये।

मां जब भी मुझे अधिक लाड-प्यार करती, मैं समझ जाता कि वह अत्यधिक दुःखी और अस्वस्थ है। आज भी वैसा ही प्यार करने लगे। मेरा शरीर सहलाती जाती थी और हिचकियाँ लिये जाती थी। उसे सांत्वना देने के लिए मैं भी उसे सहलाने लगा। लेकिन इसका परिणाम उलटा हुआ। माँ रो पडी़। मेरी उम्र उस समय कोई बारह वर्ष की रही होगी। माँ मुझे अत्यधिक प्रिय थी। पिताजी के प्रति आदर-भाव था, लेकिन उनसे कभी-कभी डर लगता था। जब कि माँ से तो निर्भयता का वरदान मिल चुका था। मैं माँ के पास ही लेट गया और उसके पल्ले से उसके आँसू पोंछने लगा। लेकिन जैसे-जैसे पोछता गया वैसे -वैसे अश्रुधारा अधिकाधिक बहने लगी। मेरा भी जी भर आया। उसके अविरत आँसू देख कर मेरी आखें भी छलक पडी। लेकिन मुझे रोते देख कर माँ के आँसू अनायास रूक गये। मुझे और पास खींच कर उसने आंचल से मरेरी आंखें पोंछी। इस दरमियान वह एक शब्द भी नहीं बोली थी। मैं बोलने की हालत में था ही नहीं।

आखिर माँ ही बोली। उसकी आवाज रूलाई से नम हा रही थी। कहने लगी, ''बैटा, मैं तुझे बहुत अच्छी लगती हूं न?'' इसका जवाब क्या देता। आँसूभरी आंखों से एकटक उसे देखता रहा। आँखो का उत्तर पढ़ कर वह फिर बोली, ''तेरे बापू मुझे उनते ही अच्छे लगते है। वे जब कभी बाहर जाते हैं, मैं विहव्ल हो जाती हूं। इस बार तो मेरी बेकली और भी बढ़ गयी। गुरू महाराज ने तार दे कर न जाने क्यों बुलाया है। ... न मालूम रामजी की क्या मरजी है। ... चल अब सो जा।' ' इस प्रकार बाते करते हुए हम एक-दूसरे का आष्वासन बन कर सो गये।

पाँचवे दिन शाम को पिताजी लौट आये। माँ तब तक उदास हो रही। परंतु उन्हें देख्ते ही उसकी आँखों में जीवन उमड़ आया। गमगीनी पर आनंद की लहरें छा गयीं। मैं भी पुलकित हो उठा। वायुवेग से समाचार फैल गया। आप्तस्वजनों का आना शुरू हुआ। घर में जहाँ कुछ समय पहले शून्यता छायी थी वहाँ जिंदगी की हिना महक उठी। सब को विदा कर के हमने एक साथ भोजन किया। मैं हमेषा पिताजी के पास ही, पर अलग बिस्तर पर सोता था। हमारे बिस्तर के सामने ही माँ सोती थी। रात को प्रार्थना कर के हम सो गये।

बहुत बात बीते हिचकियों की आवाज से मैं जाग गया। देखा कि माँ और पिताजी आमने सामने बैठे हुए बाते कर रहे थे और माँ की हिचकी बंधी हुई थी। मैं धीरे से उठा और माँ की गोद में जा छिपा। पिताजी को इतना व्याकुल मैंने शायद ही कभी देखा था। माँ की गोद से उठ कर मैं उनकी गोद में जा बैठा। वे मेरे सिर पर हाथ फेरते रहे। उनके स्वर में अस्वस्थता थी। माँ को संबोधित कर के वे कहने लगे, ''तुम हाँ कहो तभी मैं सूरत की गद्दी का स्वीकार कर सकता हूँ। गुरू महाराज ने स्पष्ट कहा है कि तुम्हारी सम्मति हो, तभी मेरा सन्यास सार्थक हो सकता है।

' 'आपको गद्दी देने की गुरू महाराज की इच्छा है इसकी शंका तो वे पिछली बार जब यहाँ आये थे तभी मुझे हो गयी थी। नारायणदास ने मुझसे कहा तो मैंने समझा कि मजाक कर रहे होंगे। इसीलिए मैंने आपसे स्पष्ट पूछा भी था। आपने उस समय तो ना कह दी थी। लेकिन आपके मन की कसमकस में उस समय भी भांप गयी थी। फिर सूरत की गद्दी जयरामदास को दने की बात चली और मैंने मन को मना लिया। अब की बार तार आया तब से तो मैं कुसंका से पागल हो रही हूं....।' ' माँ की हिचकिया चलती रहीं।

' 'लेकिन देखो न नर्मदा,'' पिताजी की वाणी में व्याकुलता थी, ''जयरामदास को गद्दी देने को अब गुरूजी की इच्छा नहीं है। उनका कहना है कि हमारे कुछ का त्याग उच्च कोटि का है। पिताजी के दान की षोभा बढ़ानी हो, मंदिर की प्रतिश्ठा संभालनी हो और निरांत संप्रदाय को जीवित रखना हो तो मुझे गद्दी स्वीकार करनी ही चाहिये।' '

सहसा माँ की हिचकियां रूक गयी। आँसू आँखों में ही रूक गये। आवाज कुछ सजीव मालूम दी। बोली, ''देखिये, आपके आत्मकल्याण के मार्ग में आकर मैं अपने धर्म से विचलित होना नहीं चाहती। लेकिन यह हमारे लिए बडे कलंक की बात होगी।' '

' 'दीक्षा लेने में कलंक है यह तुम से किसने कहा? मैं कुछ दुःख, निराशा या जिम्मेंदरियों से भाग कर तो सन्यास ले नहीं रहा। संसार का समाना न कर सकने की कायरता के कारण सन्यास लिया जाय तो उसे कलंक कहा जा सकता है। जब कि मैं तो सब प्रकार से सुखी जीव हूं। और फिर, मैं तो तुम्हारी सम्मति के बाद ही यह कदम उठाना चाहता हूँ। तुम्हारी रज़ामंदी न हो, तो मुझे गद्दी नहीं चाहिये।' ' पिताजी का आवाज़ में कंप था। वे अभी स्वस्थ नहीं हुए थे।

' 'मैं जिस कलंक की बात कह रही हूं, उसका कारण बिलकुल अलग है,'' माँ ने कहा। ''मेरे कहने का मतलब यह है कि लोग कहेंगे कि बाप-दादा की संपत्ति सीधी तरह से विरासत में नहीं मिली, तो साधु बन कर हथिया ली। पिता ने उदार मन से जो संपत्ति मठ के दान कर दी थी उसे बेटे ने महंत बन कर भोगा। हमारी तो संपत्ति भी गयी और इज्जत भी गयी। आपके संबंध में कोई इस प्रकार का संषय व्यक्त करे, तो मेरे लिए तो वह मौत का सामान होगा।' '

पिताजी गंभीर हो गये। मेरे सिर पर उनका हाथ फिरता रहा। लालटेन की रोषनी उन्होंने कुछ तेज की। कमरे में प्रकाश छा गया। माँ की आंखे पिताजी की आंखों की गहराई में उतर कर कुछ खोज रही थी। वे अपने स्वाभाविक धीर-गंभीर स्वर में बोले, ''तुम बिलकुल ठीक कह रही हो, नर्मदा। यह मुझे पहले ही सूझना चाहिये था। न जाने कैसे यह बात मेरे ध्यान में ही नहीं आयी। मेरे मन में एक ही लगन थी कि गुरू महाराज की आज्ञा का पालन करना चाहियें। लेकिन अब तुम्हारी बात समझ में आती है। कल सुबह ही तार कर के गुरूजी के चरणों में अस्वीकृति भेज दूंगा।' '

मेरी उपस्थिति से बेखबर होकर माँ ने पिताजी के पांव छू लिये।

ठाकुर माधवसिंह जी का परिवार हमारी जाति में कुलीनता की परिसीमा माना जाता था। खानदानी, प्रतिश्ठा और संपत्ति, तीनों में उनकी बराबरी कोई नहीं कर सकता था। मुहल्ले में उनकी हवेली हम बच्चों के मन किसी राजमहल से कम नहीं थी। मानवसिंहजी की मृत्यु के बाद उनके बडे लड़के रामसिंह कर्ता-धर्ता हुए। रामसिंह खुद तो बडे सज्जन और सरल स्वभाव के आदमी थे, पर उनकी पत्नी का उन पर कडा़ षासन था। पूरे परिवार पर उस स्त्री की किसी चक्रवती के समान एकछत्र हुकूमत चलती था। उससे स्त्रियां तो क्या, पुरूश भी घबराते थे। इस परिवार में कोई हीरे जैसी आदमी था, तो वह थे रामसिंह के छोटे भाई मोहनसिंह। मधुर स्वभाव, छलकती सज्जनता, सीमाहीन उदारता और निश्ठावान सेवाभाव। भाई और भाभी के प्रति ऐसा आदरभाव कि भरत या लक्ष्मण की याद आ जाय। इतना ही नहीं, वे तो श्रवण कुमार की तरह उन्हें माता-पिता मान कर पूजते थे।

इन मोहनसिंह जी के साथ हमारी गंगाबुआ का विवाह हुआ था। गंगाबुआ पिताजी की छोटी बहन थी। भाई-बहन के बीच निःसीम स्नेह था। लेकिन इस स्नेह के बावजूद पिताजी यदि मोहनसिंह के विशय में कभी एक षब्दा भी उलटा-सीधा बोलते तो बुआ तुरंत उनका विरोध करती। पति के संबंध मंे निंदाव्यजक एक षब्द भी सुनने को वे तैयार नहीं थी। उन दोनों भाइयों के बीच अटूट स्नेहभाव था ही। लेकिन इतने में रामसिंह जी की अचानक मृत्यु हो गयी। बंदूक साफ कर रहे थे कि गोली छूट गयी और षरीर बिंध गया। परिवार में हाहाकार मच गया। मोहनसिंह भाभी को माता के समान मानते थे। भाई की मृत्यु के बाद उनकी भक्ति और भी बढ़ गयी।

यह सज्जन और सदाचारी आदमी मौका पड़ने पर अपनी पत्नी के लिए भी प्राण दे सकता था। लेकिन स्नेह का दिखावा करना उन्हें पसंद नहीं था। गंगाबुआ के पति उनके प्यार और आदर की एक कहानी माँ सुनाया करती थी। मौका देख कर हँसते-हँसते उसने पिताजी से भी यह बात कह दी थी। एक बार माँ और पिताजी काषी जाने का विचार कर रहे थे। तब मोहनसिंह जी ने माँ से कहा था कि ''गंगा घर में ही होने पर भी काषी जाने की क्या जरूरत है? कहिये तो उसके पाँव धो कर गंगाजल ला दूं।' ' माँं इस बात में अपनी ओर से भी थोडा़-बहुत नमक-मिर्च लगाती और पिताजी को हंसाती। उसका प्रिय मजाक था कि मोहनसिंह षादय इस गंगाजल से आचमन भी करते होंगे। हमारे परिवार के उपरान्त पूरी जाति में और मिलने-जुलने वालों में भी गंगा बुआ और फूफाजी का दांपत्य प्रेम लोगों के कुतूहल और ईश्या का विशय था।

मोहनसिंह फौज में नौकर थे। सूबेदार का ओहदा था। अफसरों और सैनिकों, दोंनों में उनके प्रति समान रूप से स्नेह और आदरभाव था। उस समय उनकी बटालियन की छावनी पादरा रोड़ की बैरकों में थी। एक रोज माहनसिंह घर आ रहे थे कि रास्ते में उन्हें साँप ने डस लिया। वे वहीं गिर पडे और तत्काल उनकी मृत्यु हो गयी। षाम तक घर नहीं लौटे और कोई समाचार भी नहीं आया तो सब को चिंता हुई, और खोज-खबर के लिए पिताजी बैरक की ओर चले। रास्ता सुनसान था। मोहनसिंह का षरीर सड़क की एक ओर पडा़ हुआ था। पिताजी भागते हुए बैरक पहुँचे। केप्टन को सूचना दी। कुछ फौजी जवानांे के साथ केप्टन घनाना स्थल पर पहँुचा। मृतदेह को डोली में डाल कर घर पहुँचाया गया। षमषान यात्रा के समय केप्टन साहब ने इच्छा व्यक्त की कि अग्निदाह बैरक के पास ही, जहाँ उन्हंे सर्पदंष हुआ था, वहीं हो। गंगाबुआ और पिताजी ने यह बात मान ली। सैनिक सम्मान के साथ फूफाजी का अग्नि-संस्कार हुआ।

दूसरे दिन षाम को पिताजी, माँ और हम सब बुआ के पासे बैठे थे। कुछ बोलने की किसी की मनस्थिति ही नहीं थी। इतने में बुआ ने कहा, ''इच्छा तो कल उनके साथ ही अग्निप्रवेष करने की थी। पर फिर सोचा कि सिर्फ साथ जल मरने से थोडे ही सती हुआ जाता है। मैंने जीवनभर उनके साथ प्रेमतपस्या की है। उस अधूरी तपस्या को उनके बाद पूरी करूगीं और फिर हँसते हुए मुख से उनसे मिलने जाऊंगी।' ' षीघ्र ही उनकी आँखों से आँसू बरसने लगे। साथ बैठे हुए सब की हिचकियाँ बँध गयी। लेकिन बोल कोई नहीं पा रहा था। मेरा अबोल मन एक

ही बात का अचरज कर रहा था कि कल तो गंगबुआ मांगल्य की मूर्ति थी और आज कारूण्य की प्रतिमा बन गयी है। क्या एक आदमी के चले जाने से उनका सारा संसार बदल गया? जीवन के मूल्य, महत्ता, हेतु दृश्टि, क्या सब कुछ इस हद तक बदल सकते है। फूफाजी के जीवन काल में बुआ जैसी थी, वैसी उन्हें फिर कभी नहीं देखा।

इसके बाद, रोज सुबह रामयण सुनाने के लिए पिताजी मुझे उनके घर भेजते। रामयण-पाठ के बाद बुआ मुझे प्रसाद देती और कोई सुंदर कहानी सुनाती। कहानी में किसी न किसी बहाने फूफाजी का उललेख आये बिना न रहता। धीरे-धीरे समय बीतता गया। एक वर्श हुआ। दुख और उदासी के बादल छंट गए। और, इसी तरह तीन साल बीत गये।

उस दिन फूफाजी की श्राद्धतिथि थी। सुबह मैं रामायण सुनाने गया। देखा कि आज बुआ रोज की तरह स्वस्थ नहीं थी। सोचा कि षायद फूफाजी की याद से विकल हो रही होगी। मैंने कहा, ''चलो बुआ, रामायण पढेंगें।' ' वे बोली, ''चल बेटा।' ' बुआ बैठी तो सही, लेकिन आज रामायण सुनने में भी उनका मन नहीं लग रहा था। अंतर में चलने वाले किसी मंथन की व्यथा उनकी आँखों में झलक रही थी। पाठ अधूरा छोड़ कर ही वे उठ गयी। भीतर चैके में उनकी जिठानी रसाई बना रही थी। मुझे यह स्त्री कभी अच्छी नहीं लगी थी। उसका चेहरा ही कुछ ऐसा कठोर और रूखा था कि देखते ही दुर्भाव उत्पन्न हो। आँखों में जब देखो तब एक प्रकार की खाने को दौड़ने वाली खूँख्वारी ही झलककती रहती थी।

मैं भी बुआ के पीछे-पीछे गया। रसोईघर में जाकर उन्होंने कहा, ''क्यों दीदी, आज सुबह जो बात तुमने कही थी वह सच्ची है या सिर्फ मुझे जलाने के लिए कही थी?'' जिठानी बोली, ''बिलकुल सच्ची है। तू अपने आदमी को भले ही रामचंद्र जी का अवतार मानती हो। पर एक बार उसने मुझे छेडा़ था यह बात मैं डंके की चोट कहंूगी। जब देखो तब पति के प्रेम और भक्ति की डींगे हांकती थकती ही नहीं । ऐसा ही भक्ति भाव था और तेरे प्रति इतना ही प्रेम था तो माँं के समान भाभी पर नीयत क्यों बिगाडी? मैं तो कहूंगी, कहूंगी और कहूंगी।' ' घृणा से उसकी आँखें और भी डरावनी हो उठी। बुआने मुझसे कहा, ''चलो बेटा!'' और वे लौट पडी़। उन्हें इतना उदास और व्यथित मैंने कभी नहीं देखा था। बाहर आकर बोली, ''किषन, चल। अब इस घर मैं नहीं रहना।' '

लेकिन घर से बाहर निकलते ही उन्होंनंे देहली की चैखट पर सिर दे मारा। जोर से धमका हुआ और कपाल फट गया। खून की धारा बह निकली। घबराहट से मैं चीख पडा़। जिठानीजी बाहर आयी। उनकी तरफ देखे बिना बुआ ने बहते हुए रक्त को अंजलि में ले कर दरवाजे पर थापे मारे। फिर मेरा हाथ पकड़ कर चल दी और सीधी हमारे घर आ कर रूकी। माँ, पिताजी, पडौसी, सब हडबडा़ गये। बुआ भैया' ' कह कर पिताजी से लिपट गयाी। उनके कुछ कहने से पहले ही पिताजी ने धोती के छोर से जख्म को दबा दिया। बुआ ने छोर हटा दिया और बोली, ''भैया, उनके जाने के बाद मैं अधूरी तपस्या पूरी करने के लिए ही जा रही थी। पर आज मरने की घडी़ आ गयी है। आज दीदी ने मेरे मरे हुए स्वामी पर कलंक लगाया। मैं इसमें एक भी बात नहीं मानती। वे तो देवता थे। लेकिन दीदी षायद मुझे इसी प्रकार मारना चाहती है। तभी उनके मन को षांति मिलेगी। अब मैं उस घर में कभी वापस नहीं जाऊंगी। उस घर में किसी की षकल भी देखना नहीं चाहती।' ' बुआ वही गिर पडी़। माँ और पिताजी उन्हें उठा कर अंदर के कमरे में ले गये। डाक्टर आया। मैंने सुबकते हुए सारी घटना कह सुनाई।

साँझ ढल रही थी। इतनी डरावनी षाम मैंने कभी नहीं देखी। लोगों से घर भर गया था। वातावरण दुख और वेदना से काँप रहा था। बुआ की अंतिम साँस चल रही थी। रक्तस्राव बहुत आधिक हो चुका था। वैद्यजी पास ही बैठे थे। अचानक बुआ ने दम लिया और बोली, ''बोली भैया...! ''पिताजी कुछ पास सरक गये। हृदय की गहराई में से बुआ की आवाज निकली, ''भैया, वैसे तो वे गये उसी दिन जाने की इच्छा थी। लेकिन फिर सोचा कि सिर्फ जल मरने से तो सती नहीं हुआ जाता। और फिर मेरे लिए तो वे मर कर भी जीवित थे। आज उस

निर्मल आत्मा पर उनकी माता समान भाभी ने झूठा कलंक लगाया। उनकी आत्मा को कितना क्लेष हुआ होगा। भैया, अब मुझे उनके पास जाना चाहिए। अब मैं जीना नहीं चाहती। मेरी चिंता जहाँ उन्हें अग्निदाह दिया था वही जलाना।' ' बुआ के अंतिम षब्द माने अंतर्मन की गहराई को फोड़ कर निकले। सांस रूक गयी। आँखे अपनी आप बंद हो गयी और प्राणपखेरू उड़ गया। वैद्‌यजी भी रो पड़े। सारे घर पर षोक की घनघोर घटा छा गयी।

पिताजी ने बटालियन के केप्टन से मिल कर बुआ का अग्निसंस्कार उसी जगह करने के लिए सरकारी अनुमति प्राप्त कर ली। जहाँ फूफाजी की चिता जली थी ठीक उसी जगह बुआ की चिता रची गयी। नष्वर षरीर पंचतत्व में मिल गया।

बुआ की अस्थियों का नर्मदा में विसजर्नन किया गया। उसके बाद कई दिनों तक पिताजी राजमजदूर साथ लेक कर अग्निसंस्कार के स्थान पर जाते रहे। वहाँ उन्होंने एक सुंदर छोटी सी मढी़ बननवायी। बुआ की मृत्यु के ठीक दषहरे के दिन हुई थी। उसी दिन हमारी कुलदेवी सिंधवाई माता का हवन होता था। मढी़ मंदिर के रास्ते में पड़ती थी। होम-हवन से वापस लौटते समय हम सतीचैरे पर फूल-कुंकुम चढा़ कर ही घर लौटते थे। वर्शो तक यह क्रम चलता रहा। फिर तो पिताजी चले गये। कभी-कभी याद दिल कर सतीचैरे पर भेजने पर भेजने वाली माँ भी चली गयी। हवन में जाना भी बंद हो गया। मढी़ की देखभाल नहीं रही। और आज तो उसके अवषेश भी दिखाई नहीं देते।

अभी कुछ रोज पहले, बहुत वर्शो के बाद, विष्वामित्रि से बडौ़दा पैदल आते समय उसी सड़क से गुजरा। विस्मरण के मलबे के नीचे दबी हुई यह पुरानी याद जीवन आकाष के क्षितिज पर झलक गयी। स्नेह से सिंचित किसी भी वस्तु का, फिर वह स्मृति हो या आदर्ष? पुनर्साक्षात्कार हुए बिना अकसर नहीं रहता।

3

बलिदान और समर्पण

हमारी कुलदेवी सिंधवाई माता के मंदिर में साल में दो बार हवन होता था। एक अनंचतुर्दषी के दिन और दूसरा दषहरे के दिन। विजयादषमी का हवन सादा हविश्य-यज्ञ होता था पर अनंतचतुर्दषी के दिन बकरे की बलि दी जाती थी। श्रावण की अमावस्या के दिन बकरा खरीदा जाता। फिर अनंत-चैदस तक उसे खिला-पिला कर और सुख-चैन में रखकर तगडा़ बनाया जाता। बकरा हमारे मामा के यहां बांधा जाता था। मामा का घर पडो़स में ही था। अतः बकरे को तगडा़ बनाने में मामा के लड़कों के साथ मेरा भी योगदान रहता। अनंत-चैदस के दिन सुबह ही हम बच्चे बकरे को माता के मंदिर में ले जाते। वयस्क लोग तो बाद में, हवन के समय आते। तब तक बकरा हमारे मनोरंजन का साधन बनता।

आठ, साढे-आठ बजे हमारे पुरोहित छगन महाराज आकर हवन की तैयारी करते। नौ, साढे नौ बजे हवन षुरू होता। हवन में यजमान के स्थान पर प्रायः मामा ही बैठते। जिस साल की यह बात है उस साल वर्शा अच्छी हुई थी। अतः सब के मन प्रफुल्ल थे। प्रसाद और बच्चों के नाष्ते के लिए बढ़िया-बढ़िया चीजे मंगवायी गयी थी। हमारी खुषी का पार नहीं था।

हम बच्चे तरह-तरह के खेलों में लगे हुए थे। इतने में न जाने क्यों मामा के लड़के के साथ मेरा झगडा़ हो गया। उसने मुझे इतने जोर से पत्थर मारा कि मेरा सिर फट गया। कोई पिताजी और फूफाजी को बुलाने दौडा। दोनों भागे-भगे आये। मंदिर की पुजारिन भी बाहर आ गयी। सिर से खून बहे जा रहा था। पुजारिन मरहम और कपास ले आयी। फूफाजी ने अपना दुपट्टा फाड़ कर पट्टी बनायी। गहरे जख्म में मरहम भर कर पिताजी ने पट्टी बांध दी। जख्म पोंछ-पोंछ कर पिताजी का दुपट्टा लहू से सराबोर हो गया था। इस घटना से खेल बंद हो गया। लड़के षांत और सयाने बन कर मंदिर के दालान में बैठ गये। मैं पिताजी की गोद में जा छिपा।

हवन षुरू हो चुका था। बिरादरी के प्रायः सभी लोग आ गये थे। पिछले तीन-चार वर्शो से चर्चित बलि के प्रष्न की फिर चर्चा होने लगी। धर्मषास्त्रों का प्रमाण देकर बलि की प्रथा बंद करवाने का पिताजी का आग्रह था। मामा, फूफाजी और अन्य बुहत से लोग बलि के पक्ष में थे। उनके मन में आषंका थी कि बलि बंद करने से देवी माता नाराज हो जायेगी और जो अधिक क्रोधित हो गयी तो पूरी विरादरी में महामारी फैल जायेगी। अतः बलिदान देना ही चाहिये। पिताजी ने समझौते का मार्ग सुझाया। उन्होंने कहा कि बलि यदि आवष्यक ही हो, तो बकरे का एक कान काट कर उसेे छोड़ देना चाहिये। उसे होमने की जरूरत नहीं। जीवनसिंह चाचा ने इस बात का करारा विरोध किया। वे माता के परम भक्त थे और माता के प्रसाद में उनकी अटल श्रद्धा थी। हवन की बलि का प्रसाद उनकी नज़र में माता का प्रत्यक्ष आषीर्वाद था। परंपरा से चली आने वाली इस रूढि में किसी प्रकार का परिवर्तन करने के वे विरूद्ध थे।

बात भी सच थी। प्रसाद की महिमा पूरी बिरादरी में फैली हुई थी। हमारे घर में भी उसका अस्तित्व था। पिजाजी षुद्ध षकाहारी थे। किसी भी हालत में मांसाहार नहीं करते थे। अतः हमारे घर में बारहों महीने षाकाहारी भोजन ही बनता था। सिर्फ अनंत-चैदस के दिन दो जगह रसोई होती। अलग चूल्हे पर माता का प्रसाद राँधा जाता और पिताजी को छोड़ कर हम सब उसे आनंद से ग्रहण करते। मामा के यहाँ उस रात को उत्सव होता। उनके घर में सभी मांसाहारी थे। अतः उनके यहाँ से थाली भर कर सामिश प्रसाद हमारे यहा आता। बापूजी के एक और मित्र थे ठाकुरसिंह काका। उनके यहाँ भी देवी के समक्ष बकरे की बलि दी जाती और प्रसाद का थाल हमारे यहाँ आता। पिजाजी को यह सब बिलकुल पसंद नहीं था। उनके विशाद का पार नहीं रहता। इस क्षोभ को ढकने के लिए वे अनंत-चैदस की षाम को भजन का आयोजन करते।

बिरादरी में और भी चार-पांच लोग ऐसे थे जिनके गले पिताजी की बात उतरती थी। वे पिताजी का समर्थन करते, पर जीवनसिंह चाचा का खुले आम विरोध करने की हिम्मत उनमें नही थी। पिताजी की जिस प्रकार एक भक्त और सदाचारी मनुश्य के रूप में ख्याति थी उसी प्रकार जीवनसिंह चाचा का नाम कुछ भी कर सकने वाले क्रूरकर्मा और दबंग आदमी के रूप में प्रसिद्ध था। जाति के लोग दबी जबान में यह भी कहते सुने जाते थे कि वे चोरी का माल खरीदते थे और फर्जी गवाह खडे करके झूठी गवाहियाँ भी देते थे। अपने दुष्मनों को नेस्त-नाबूत करने में तो वे कोई कसर नहीं रखते थे। इन सब कारणों से उस दिन की चर्चा में पिताजी का प्रस्ताव टिक नहीं सका।

हवन की पूर्णाहुति की तैयारी थी। बलि होमने की बेला हो रही थी। मामा की तलवार पास ही रखी थी। बलि के संबंध में एक परंपरागत मान्यता यह भी थी कि बलिपषु का सिर एक ही बार में कट जाय तो ही बलि माताजी को पहुँचती है और इसी हालत में भगवती उसका स्वीकार करती है। अतः बलि को एकही झटके में विच्छिन्न करने के लिए पर्याप्त सावधानी बरती जाती थी। मामा पहले से ही तलवार को सान पर चढ़वा कर तैयार रखते। बल की उनमें कोई कमी नहीं थी और बहादुरी में भी वे बेजोड़ थे। एक बार आधी रात बीते उन्होंने कई चोरों का अकेले मुकाबला करके उन्हें भगाया था। उनके षारीरिक बल को देख कर ही पंचों ने हवन के यजमान के अबोध आँखे भी इस अचरज की थाह पा रही थी। निर्दय और डरावना दिखाई देने वाला जीवनसिंह चाचा का चेहरा वर्शा में स्नात प्रकृति के जैसा स्वच्छ और स्नेहमह दिखाई दे रहा था।

उस दिन से मेरे ह्दय में बलिदान और समर्पण पर्यायवाची षब्द बन गये है। इतना ही नहीं, वे कोरे षब्द न रहकर जीत -जागते सद्भाव बन गये है।

4

बडे भैया, केदारा गाइये . . .

एकादषी और पूर्णिमा के दिन मैं पिताजी के साथ गुरूद्वारे जाया करता था। षाम को भजन होता था। मेरी उम्र उस समय चैदह-पन्द्रह वर्श की रही होगी। भजन में गुरू महाराज खुद मृदंग बजाते थे। पिताजी करताल बजाते और गिरधर चाचा झाँझ बजाने में सिद्धहस्त थे। पिजाजी की आवाज बुलंद थी पर स्वर की मधुरता में गिरधर चाचा बेजोड़ थे। भजन की रंगत में जब षब्द तिरोहित हो जाते और झाँझ, करताल एवं मृदंग के ध्वनिविलास द्वारा केवल सुरों का साम्राज्य छा जाता तब पिताजी अपनी बुलंद आवाज का हवाला गिरधर चाचा को सौंप कर करताल में ही मस्त हो जाते। और फिर प्रेमीभक्त गिरधर चाचा की आवाज जो लीला-विस्तार करती उसका माधुर्य अब भी मेरी स्मृति में जीवित है।

ग्यारह, साढे-ग्यारह के करीब गुरू महाराज मृदंग को गोद से उतार कर मंदिर में दीपसंकर्शण के लिए जाते, तब कुछ देर के लिए मध्यांतर होता। इस विराम के बाद उनकी आज्ञा से मृदंग मेरे सुपुर्द किया जाता। मृदंग का मुखलेप यदि सूख कर सख्त हो गया होता, तो मैं उसे बदल देता। थाप देते-देते आटे का लेपन समप्रमाण में फैलते ही गुरूजी गरदन हिला कर अनुमति देते। इसे उनका आषीर्वाद और अपना रक्षाकवच मान की मैं मृदंग को गोद में जमा कर रखता और साखी षुरू हो जाती। गिरधर चाचा अपनी मधुर आवाज में कहते, ‘‘बडे भैया, केदारा गाइये।’ ’ पिजाजी केदार की साखी छेड़ते और देखत-देखते पहले साखी और फिर केदार के स्वर पूरे वातावरण में गूंज उठते। पिताजी को बुलंद और गहन-गंभीर, आवाज में गाये जाने वाले केदार के साथ मृदंग बजाने का सौभाग्य मुझे प्राप्त होता था वह मेरे लिए जीवन की सब से गौरवपूर्ण बात थी। मेरा बालमन प्रफुल्ल हो उठता और कभी-कभी तो इस सम्मान से मैं गद्गद् हो जाता।

आधी राज बीते हम घर लौटते तब पिताजी माँ को षुभ समाचार सुनाते, ‘‘तुम्हारे बेटे ने कमाल कर दिया। इसका हाथ सुधरता जा रहा है।’ ’ पिताजी जैसे संगीत-पारखी से गुणग्राहकता का इनाम पा कर मैं सुख की नींद सो जाता।

गिरधर चाचा जाति से तमोली थे पर साग-भाजी बेचने का धंधा करते थे। वे और उनकी पत्नी रूक्मिणी सुबह दस बजे ही खाना खा कर खेत पर चेले जाते और षाम को छः बजे लौटते। राज को भोजन कर के हमारे यहां आते समय कुछ साग-सब्जी लेते आते। पिताजी दो-चार भजन गाते, कुछ देर दोनों को गपषप होती और ग्यारह बजे वे चले जाते। सुबह पांच बजे उठ कर सब्जीमंडी जाते और पिछली राज को खेत से लायी हुई साग-भाजी बेचकर आठ बजे तक वापस आ जाते। नहा-धोकर खाना खा कर, दस बजे फिर खेत में। यही उनका नित्यक्रम था। संतान में उनके सिर्फ एक लड़की थी जिसका विवाह हो चुका था। अब पति-पत्नी पसीना बहा कर गुजारा करते थे और बाकी का समय ईष्वर-भजन और सत्संग में बिताते थे।

गुरूपूर्णिमा का दिन था। उस रोज गुरूद्वारे में भजन का ठाठ कुछ अलग ही होता। अषोक के पत्तों के बंदनवार और फूलमालाओं से मंडप सजाया जाता। बिछात नयी होती और गुरू महाराज के गद्दी-तकिये भी नये। बैठक पर दूध-सी सफेद चद्दर बिछायी जाती। मंदिर में राम-सीता और लक्ष्मण की सफेद संगमरमर की मूर्तियों का वेष-परिधान और सिंगार भी आज विषेश षोभापूर्ण किया जाता। पास ही चैकी पर स्वर्गीय बडे गुरूदेव की तस्वीर रखी जाती। उसके चारों ओर घी के दिये जलाये जाते।

भजन के समय गुरू महाराज की थाप मृदंग पर पडी। करताल खनखनायी, झांझ झनक उठी और पिताजी ने साखी छेडी:

गुरू गोविंद दोनों खडे, किसको लागंू पाय,
बलिहारी गुरूदेव की जिन गोविंद दिये मिलाय।

‘सियावर रामचंद्र की जय’ के साथ भजन का अरंभ हुआ। आज गिरधर चाचा की आवाज़ में उनके स्वभाविक माधुर्य के उपरांत भक्ति-गद्‌गद्‌ हृदय का आत्म-निवदन भी समाया हुआ था। बीच-बीच मंे पिताजी की भक्तिरस में डूबी बुलंद तान अंतर को भेद कर गहरी उतर जाती थी। आज झांझ की झनकार, करताल के कलरव और मृदंग के लाल में एक अपूर्व बेसुधी छायी हुई थी।

साढे-ग्यारह बजे। गुरू महाराज दीपसंकर्शण के लिए उठे। कुछ समय के लिए विराम घोशित हुआ। मैंने मृदंग संभाला। सूखा हुआ आटा बदल कर ताजा आटा लगाया। थाप षुद्ध होत ही गुरूदेव की आंखों ने अनुज्ञासूचक संकेत किया। भक्तों और भजनी-मंडली ने अपने-अपने स्थान गहण किये। गिरधर चाचा हमेषा पिताजी के पास बैठते थे। बरसों में यही देखता आ रहा था। आज गुरू महाराज ने खुद साखी कह कर भजन का प्रारंभ किया।

गिरधर चाचा ने हमेषा की आदत के अनुसार चेहरे पर स्मित ला कर अपनी मोठी आवाज में पिताजी से कहा, ‘‘बडे भैया, कैदार गाइये।’ ’ एक क्षण के लिए पिताजी का चेहरा उतर गया। फिर कुछ गंभीरता से बोले, ‘‘गिरधर भाई, आज केदारा तुम गाओ।’ ’ यह सुन कर गिरधर चाचा को आष्चर्य अवष्य हुआ होगा पर पिताजी के प्रति उन्हें इतनी गहन श्रद्धा थी कि उनकी बात में मीनमेख निकालना तो दूर रहा, उनकी आज्ञा का कारण पूछने का विचार भी उनके मन में नहीं आया। चाचा ने साखी कह कर केदार के सुर छेड़ दिये। धीरे-धीरेे केदार का वतावरण जम गया। षब्द तिरोहित हो गये। चाचा का आरोह ऊपर उठा। करताल खन उठी, झांझ झानझना उठी। मैंने भी अपनी पूरी षक्ति लगा कर मृदंग का लाल संभाला। केदारा समाप्त हुआ। पिताजी ने चाचा की पीठ ठोंकी। गुरू महाराज ने मेरे सिर पर हाथ रख कर आषीर्वाद दिया। आरती हुई, प्रसाद बांटा, चरण स्पर्ष हुए, भजन की धुन बंद हुई और गुरूपुर्णिमा का उत्सव समाप्त हुआ।

घर आ कर पिताजी ने माँ से उत्साहपूर्ण स्वर में कहा, ‘‘आज फिर तुम्हारे बेटे ने कमाल किया। केदार का ताल सही-सही संभाला। अब इसका हाथ बैठ गया है।’ ’ मंाँ ने मुझे छाती से लगा कर बलैयाँ लीं। दोनों की चरणरज ले कर मैं सो गया।

दूसरे दिन मंडी मंे साग बेच कर गिरधर चाचा सीधे हमारे घर आये। रोज वे रात आते थे। सुबह वे तभी आते जब कोई महत्वपूर्ण काम होता। वे आये तब पिजाजी स्नान कर रहे थे। वे माँ के पास बैठे। माँं के प्रति गिरधर चाचा को बडी़ ममता थी। अपनी इस बडी़ भाभी के लिए उनके मन में माता से भी अधिक स्नेह सम्मान की भावना थी और माँ भी गिरधर भाई से परिवार की गोपनीय बातें भी निस्संकोच भाव से कर सकती थी। वह जातनी थी कि इन दोनों मुुंहबोले भाइयों के बीच सगे भाईयों से भी अधिक निव्र्याज स्नेह का संबंध है। मित्रत्व का स्थान बंधुत्व से भी ऊँचा होता है यह बात इन दोनों की मैत्री से चरिचार्थ हो जाती थी।

पिजाजी नहा कर बाहर आये। गिरधर चाचा को देख कर उन्हें आष्चर्य हुआ होगा। लेकिन उसे छिपा कर पूछा, ‘‘क्यों गिरधर भाई, आज सुबह-सुबह कैसे,’’ गिरधर चाचा चुप रहे। पिताजी जैसे कुछ समझ गये। मां चाचा के लिए दूध ले आयी। पिताजी ने कुछ नाष्ता बना लाने को कहा। माँ के जाते ही गिरधर चाचा ने कुछ दबी हुई आवाज से पूछा, ‘‘भैया, कल केदारा क्यों नहीं गया? छोटे भाई की षपथ है। सच-सच कहना।’ ’

‘ ‘गिरधर भाई, कसम नहीं दिलायी होती तो भी सच-सच ही कहता। हमारे गांव के मुरारी भाई कल आये थे। उनका पांच सौ रूपये का कर्ज है। मैंने कहा कि अगले वर्श दूंगा। उनके मन में कुछ षंका रह गयी। इसलिए मैंने आष्वासन दिया कि रूपये नहीं चुकेंगे तब तक केदारा नहीं गाऊंगा। बस, इतनी सी बात है। .... केदारा गिरवी रख दिया है।’ ’ पिताजी ने जिस निस्संकोच भाव से बात कही उससे गिरधर चाचा के चेहरे पर प्रसन्ता छा गयी।

फिर दोनों मित्रों में कुछ देर तक गपषप होती रही। गिरधर चाचा घर गये और उसी रोज चिट्ठी लिख कर मुरारी भाई को बुलाया। वे उन्हीं के घर ठहरे। चाचा ने पांच सौ रूपये चुका कर रसीद लिखवा ली। फिर उन्हें ले कर हमारे घर आये। मुरारी भाई ने पिताजी से सब बात कही। उस रोज को सब का भोजन हमारे ही यहां हुआ। देर तक बातें होती रही। बड़ा आनंद आया।

फिर एकादषी आयी। गुरूद्वारे में भजन का आरंभ हुआ। नियमानुसार साढे ग्यारह बजे गुरू महाराज दीपसंकर्शण के लिए उठे। विराम के बाद मृदंग मैंने संभाला। मृदंग पर थाप पड़ते ही गिरधर चाचा ने सस्मित वदन से स्नेहमिश्रित आवाज़ में कहा, ‘‘बडे भैया, केदारा गाइये।’ ’ .....और पिताजी ने केदार की साखी छेड़ दी। केदार षीघ्र ही जम कर वगरा उठा। करताल की वहीं खनकार, झांझ की वही झनकार, गिरधर चाचा का ही मोहकर और मधुर पंचम का स्वर और पिताजी की बुलंद आवाज का वही वैभव। ... उस दिन ऐसा लगा कि सुर की बैठक अलग-अलग होने पर भी इन दोनों मित्रों की आवाज में कितना साम्य है। मानो मित्रता की गूंज स्वरों में भी प्रतिध्वनित हो रही हो।

आज भी वह आवाज़ याद है। ... खूब याद है। आज वह आवाज़ नहीं रही। ... पर उसका आलंबन मेरी स्मृति में सुरक्षित है।

5
प्रभु मोरे अवगुन चित न धरो. . .

पिताजी भक्त थे। निरांत संप्रदाय में उनकी गुरू परंपरा थी। ‘अर्जुनवाणी’ के रचयिता अर्जुन भगत उनके गुरूभाई थे। पिताजी ने भी सन 1913-14 में ‘तत्त्वसार भजनावलि’ नामक एक भजनसंग्रह छपवाया था। भजन गाने का उन्हें जन्मजात षौक था। प्रकृति ने बुलंद आवाज की देन दी थी। पुराने ठाठों की उनकी जानकारी गहरी थी। मारू, धनाश्री, गौडी़ जैसे पुराने राग और भजनों की परंपरागत षुद्ध तर्जे और रूप उनके गले में सुरक्षित रहे थे। अपने रचे हुए भजनों के उपरांत, सूर, तुलसी, कबीर, रैदास, दादू और निरांत संप्रदाय के अन्य भक्तों के सैंकडो़ भजन उन्हें कंठस्थ से। अतः षाम को नित्यनियम से सत्संग की बैठक जमती। चांपानेर दरवाजे के खुषालदास काका अपनी जूतों की दुकान बंद कर के, नहा धो कर भजन मंडली में षरीक होते। दिन भर राजगीरी की कडी़ मजदूरी करने के बाद षाम को भोजन करके, हाथ में चिलम लिये हुए फकीर काका आ पहुँचते। दोपहर की भयानक धूप में घाट पर कपडे धो-धो कर जिनकी चमडी़ खरे पक्के रंग की हो गयी थी वे लल्लू काका धोबी भी आते। दिन भर नगरपालिका की चिट्ठियाँ बांटते-बांटते थक जाने वाल जमादार ठाकुरसिंह रास्ते में ही इकतारे का तार छेड़ते हुए आते। सुबह, दोपहर और सांझ को एक मान कर, दिन भर चाक घुमा कर निर्जीव मिट्टी में से नाम-रूप वाली आकृतियाँ घड़ने वाले षामलदास कुम्हार कंधे पर ढोलक लटकाकर आते और मुहल्ले के नाके पर ही ढोलक पर थाप मार कर अपने आने की सूचना देते। उनकी पत्नी धूलों बुआ पिताजी की मुँहबोली बहन थी। हर साल उसे हमारे यहां से एक मन बाजरा मिलता था, जिसके बदले में साल भर तक मिट्टी के हर प्रकार के बरतन वह दे जाती थी। मुहल्ले के नल पर नहा-धोकर पुरूशोत्तम काका भी सीधे मंडली में आते। पिताजी कहते कि पुरशोत्तम के जैसी दाढी़ बनाने वाला कारीगर तो विलायत में भी नहीं होगा। उनका हाथ इतना हलका था कि हजामत बनवाते समय लोगों को नींद आने लगती।

यह पूरी मंडली दिन ढले बाद ही जमती थी। पहले जरा इधर-उधर की गपषप होती, फिर चिलम और हुक्के का दौर चलता। धीरे-धीरे ढोलक की कड़ियां कसी जाती, इकतारे के तार गिलते, मजीरों की झंकार होती और बेनालूम भजन का आरंभ हो जाता। आठ बजे के करीब मुहल्ले का मेहतर धूला भगत रोटी मांगने आता। लेकिन रोटी मांगना भूल क रवह दूर एक तरफ बैठ जाता और भजन में मस्त हो जाता। उसकी पत्नी महाकोर सुबह गली झाड़ने आती तब उसकी लापरवाही की माँ से रोज षिकायत करती। रोटी समय पर न पहंचाने के कारण बच्चे रात को भूखे ही सो जाते थे।

लल्लूकाका धोबी पहले रोज दारू पीते थे। लेकिन भजनमंडली में आना षुरू करने के बाद पीना बिलकुल छोड़ दिया था। इसी प्रकार षामलदास ने गांजा और ठाकुरसिंह ने भांग पीना छोड़ दिया था। रात को आठेक बजे गिरधर चाचा तमोली आ पहुंचते और भजन का रंग जमता। गिरधर चाचा कई बार हमारे ही यहां भोजन करते। सप्ताह में दो-तीन बार ठेठ रंगमहल से मगनकाका दालवाले और पीरामितार से गंगाराम काका तेली भी इस सत्संग में षरीक होते। गंगाराम काका की धानी का षुद्ध तिल का तेल उन दिनों पूरे षहर में मषहूर था।

एक दिन माँ ने पिताजी के कान में भनक डाली की धूला भगत रात को रोटी माँगने आता है और भजन में बैठ जाता है। रात को बच्चे भूखे ही सो जाते थे। इसकी षिकायत महाकोर अनेक बार कर चुकी थी। पिताजी ने उसे समझाया पर इससे कोई खास फर्क नहीं पडा़। अतः यह व्यवस्था हुई कि धूला के साथ महाकोर भी आने लगी। भगत भजन में बैठा रहता और महाकोर रोटियां ले कर घर चली जाती। वह जमाना ही ऐसा था कि मुहल्ले के बच्चे धूना भगत को धूला काका और महाकोर को महाकोर काकी कहते थे। मां भी रोटियां डालते समय, ''लो महाकोर, रोटी ले जाओ' ' जैसे आरराथ बहुवचन का प्रयोग करती। तीज-त्यौहार के दिन महाकोर के लिए खाने का थाल अलग रख दिया जाता। जन्म-कर्म के अनुसार ऊँच-नीच और अस्पृष्यता का पालन कठोरता से होता थ। पर मध्यम जातियों के बहूजन समाज के प्रति तच्छना की भावना नहीं थी। अत्यंज-अस्पृष्यों के प्रति भी नहीं।

एक बार ऐसा हुआ कि लगातार तीन-चार दिन तक भगत रोटी मांगने नहीं आया। महाकोर अकेली ही आयी। महाकोर पिताजी से परदा करने के कारण उनके सामने बात नहीं करती थी। अतः पिताजी ने माँ के माध्यम से धूला भगत की गैराहाजिरी का कारण पुछवाया। मालूम हुआ कि भगत बीमार है। पिताजी ने माँ से सुदर्षन चूर्ण उबलवाकर काढा़ बनवाया। काढे की बोतल भगत के घर पहुचाने के लिए मुझ भंगीवाडे भेजा। ऐसी तीन-चार बोतले पीने के बाद भगत अच्छे हुए और नियमपूर्वक भजन-मंडली में आने लगे।

धूला भगत की बीमारी के दिनों में महाकोर सुबह सफाई के लिए नहीं आ सकी थी। आंगन और पाखने में गंदगी बढ़ती जा रही थी। पिताजी, माँ और मैं अपने हाथों से थोडा़-बहुत करते पर धूला की सफ़ाई नहीं हो पाती थी। इस कारण से माँ म नही मन महाकोर पर बेहद चिढी़ हुई थी। एक रात को वे दोनों रोटी मांगने आये। धूलाभाई महाकोर के कंधे पर हाथ रख कर लकडी़ टेकते-टेकते चल रहे थे। वे आते ही अपने अलग स्थान पर बैठ कर भजन में षामिल हो गये। इतने में मां ने महाकोर को दो-तीन बार आवाज़ दी। वह षायद कहीं चली गयी थी या न मालूम और कोई कारण हुआ, पर वह आयी नहीं। माँ क्रोधित हो उठी और मुझसे कहा, ''वह माकली आ कर मरे तो यह खाना दे देना।' '

भजन समाप्त हुआ। मंडली बिखर गयी। माँ ने बाहर आ कर देखा पर महाकोर अब तक नहीं आयी थी। धूला भगत सामने की दीवार के सहारे बैठा ऊँध रहा था। पिताजी का नियम था कि मेहतरानी को रोटियां दे दी जाने के बाद ही भोजन करते थे। माँ ने फिर एक बार बाहर आकर आवाज़ लगायी, पर महाकोर नहीं थी। माँ चिढ़ कर बोली, ''यह माकली मरती भी नहीं है और पिंड भी छोडती। सब भूखे बैठे है इसकी भी इसे सुध नहीं।' ' माँ का यह कहना था कि महाकोर की आवाज़ आयी, ''बहूजी, रोटी डालो...''। ''तब से कहां मर गयी थी, माकली? ... ले!'' कह कर माँ ने रोटियां उसके टोकरे में फेंकीं। सारा खाना टोकरे में बिखर गया।

थोडी़ देर बाद माँ ने खाना परोस कर सब को भोजन के लिए बुलाया। दो-तीन बार कहने पर भी पिताजी नहीं उठे तो माँ खुद बाहर आयी। पिताजी ने खाने से इनकार कर दिया। इतना ही नहीं, पाँच दिन तक उपवास करने का निष्चय जाहिर किया। सब तो आष्चर्य हुआ। माँ हो हड़बडा़ गयी। थोडी बाद गद्‌गद्‌ कंठ से उसने इसका कारण पूछा। पिताजी बोले, ''तुमने महाकोर से कैसा बर्ताव किया? ... अक्खड़पने से बात करके और रोटियां फेंक कर उसका अपमान किया। ... इससे हमारी खानदारी पर बट्टा लगा। ... मुझे इसका प्रायष्चित करना ही

चाहिए।' ' माँ सकपका गयी और हमेषा की तरह हाथ जोड़ कर क्षमा मांगी, पर पिताजी टसे से मस नहीं हुए। उनके साथ मां को भी पांच दिन तक उपवास करना पड़ा। मैं उस समय अंगरेजी आठवें या नवे दर्जे में पढ़ता था। मन पर अंगरेजी षिक्षा के संस्कार होने लगे थे। ईसाई और पासी मित्रों की सोहबत के कारण घर की नम्रता और निर्मलता की परंपरा पर नास्तिकता और गरूर की छाया पड़ने लगी थी और पुराने संस्कारों को मैं वितंडावाद के चष्में से दखने लगा था। इतने में ही यह घटना हुई। पिताजी की बात ने मुझे कुछ अतिरेक और गँवारपन दिखाई दिया।

पांचवे दिन षाम को भजन-मंडली जमी। माँ और पिताजी आज उपवास का पारण करने वाले थे। अंतिम भजन था, ''प्रभु मोरे अवगुन चित न धरो।' ' उस रात को हम भोजन करने बैठे तब माँ और पिताजी के मुख पर का अवर्णनीय आनंद देख कर मेरा मुग्ध मन पुलकित हो उठा। अनास्था और संषय का जाल छिन्न-भिन्न हो गया। हृदय से भ्ज्ञन की वे पंक्तियां हटती ही नहीं थी।

प्रभु मोरे अवगुन चित न धरो।
आज भी उस प्रसंग को याद करता हूं तो उपर्युक्त पंक्तियां सजीव हो उठती है।

6
अमृता
मेरी छोटी बहन का नाम तो था अमृता, लेकिन सब उसे लाड़ से अमु कहते थे। मुझसे वह तीन साल छोटी थी। मैं बारह वर्श का था और वह नौ की। हम दोनों भाई-बहिन के अलावा गहरे मित्र भी थे। अमु गजब की षरारती और नटखट थी जब कि मैं कुछ षांत था। मुहल्ले के बच्चों में आपस में झगडा हाने पर अमु विरोधियों के छक्के छुडा़ देती थी। गठा हुआ बदन, स्वास्थ्य की गरिमा, मोहकर चेहरा और तेजस्वी एवं चपल आंखे। अमृता की आंखों पर तो मैं मुग्ध था। आंखे नारी के समग्र सौंदर्य का सर्वोच्च षिखर होती है। यह सूझा तो बहुत बाद में उपजी। परंतु बचपन की उसे अबोध अवस्था में भी मुझे उसकी आंखें बहुत अच्छी लगती थी। उन आंखों पर धनुशाकृति रचनेवाली भाीेंओं को सहलाते मैं कभी थकता हीं नहीं था। बात यहां तक बढी़ कि कभी-कभी अमु के उन धनुशों को याद करते-करते मैं अपनी ही भौंहे सहलाने लगता।

उसे देख कर मेरी नानी कहती, ''किषन, तेरी मां छोटी थी तब बिलकुल अमु के जैसी दिखाई देती थी। अमु बडी़ हो कर हूबहू नर्मदा जैसी सुंदर बनेगी।' ' एक दिन नानी ने हम दोनों को मां के बचपन की एक बात सुनाईः-
'नर्मदा तब नौ-दस साल की होगी। एक बार मैं बहुत बीमार हो गयी। किसी को मेरे बचने की आषा नहीं थी। तेरे नाना तो निराष होकर रो पडे थे। एक दिन कोई सन्यासी भिक्षा मांगने आया। नर्मदा आदत के अनुसार दोनों मुट्ठियों में बाजरा भर करर दौडी़। उसके गले में सोने की जंजीर थी। साधु महाराज ने बातों ही बातों में यह जान लिया कि उसकी मां बीमार है। फिर प्यास का बहाना करके पानी मांगा। साधु ने कहेगा, कोई उचक्का होगा। नर्मदा से बोला कि तेरे गले की कंठी दे दे, तो तुझे ऐसी भस्म दूं कि तेरी मां तुरंत अच्छी हो जाय। नर्मदा ने तुरंत जंजीर उतार कर दे दी। साधु एक चुटकी रख देकर चतला बना। लड़की ने एक चम्मच पानी में घोल कर भस्मी मेरे गले में उतार दी। भगवान की लीला कि उसी दिन से मेरी हालत सुधरने लगी और कुछ ही दिनों में मैं बिलकुल अच्छी हो गयी। आठ-दस रोज बाद नर्मदा के गले की ओर ध्यान गया। जंजीर दिखाई नहीं दी। पूछने पर बात पकडा़ई दे गयी। लड़की ने सब कुछ सच-सच बता दिया। तुम्हारे नाना बोले, 'कोई बात नहीं। कंठी गयी तो गयी। तुम तो अच्छी हो गयी। नर्मदा, घबराना नहीं बेटी।' ऐसी थी तुम्हारी मां। अमु, देखना, दू भी कुछ ऐसा मत कर बैठना।' '

षामको ननिहाल से लौटते ही अमु बोली, ''मां मेरे गले में से यह सोने की कंठी उतार ले। वरना मैं भी किसी साधु को दे दूंगी।' ' मां पहले तो इस संदर्भहीन घोशणा का मतलब नहीं समझी। फिर मैंने समझा कर कहा

तब हंसते-हंसते लोटपोट हो गयी। मां ने उसे बांहो में भर कर कई बार चूमा। फिर मां का ध्यान मेरी ओर गया। पर अपने राम नौ-दो-ग्यारह हो गये।

अमु को गुट्टे खेलने का बेहद षौक था। इस खेल के पीछे वह पागल थी। घंटों खेल कर भी अघाती नहीं थी। खेल में अत्यंत निपुण। उन दिनों हमारे मुहल्ले में एक राजस्थानी संगतराष परिवार रहता था। उसके मुखिया भैरव काका महल में नौकरी करते थे। संगमर्मर गढ़ने में उनका जोड़ नहीं था। छेनी और हथौडी जैसे उनके इषारे पर नाचने वाली दासियां हों। एक बार भैरव काका ने मां को संगमर्मर का एक सं ुदर खरल भेट दिया। मां बेहद खुष हुई। अमु ने उसी समय काका से संगमर्मर के गुटके ला देने का वचन ले लिया। दूसरे ही दिन उसके सं ुदर गुट्टे आ गये। बस, उसी दिन से पूरे मुहल्ले में अमु का नाम हो गया। इतना ही नहीं, सहेलियों में उसकी प्रतिश्ठा भी बढी। ऐसी अमूल्य निधि और किसी लड़की के पास नहीं थी।

अमु ने खेल-खेल कर उन गुटकों को और भी चिकने और चमकदार बना लिया। वे गुट्टे तो मानों उसके प्राण थे। और खेलती भी कैसी तन्मयता से थी! एक बार अपनी चार-पांच सहेलियों के साथ बरामदे में बैठी खेल रही थी। और लड़कियां तो मामूली ऊँचे उछाल कर खलने पर भी दांव चूक जाती थी। लेकिन इनमें एक अमु की बारी आयी। उसके गुट्टे खूब ऊपर तक उछलने लगे। ऊपर उछलते हुए गुट्टे के साथ आंखों की पुतलियां भी ऊपर को उठती और नीचे आते हुए के साथ नीचे उतरतीं। एक तो उसकी आंखे वैसे ही चपल थी, इस खेल ने उन्हें और भी पैना बना दिया। गुस्सा आने पर भौहों की ऐसी कमान खिंच जाती कि बेचारी मां को तुरंत झुकना पड़ता। ये संगमर्मर के गुटके उसे इतने प्रिय हो उठे कि उसकी दसवीं वर्शगांठ के दिन मां ने उन्हें रखने के लिए रेषम बटुआ सिलवा दिया। उसकी दुनिया में ये गुटके उसकी सबसे मूल्यवान संपत्ति भी और वह थैली उस संपत्ति की संरक्षक तिजोरी।

षीघ्र ही मुझे तेरहवां साल लगा। मुझे महसूस हुआ कि कुछ दिनों से घर में एक प्रकार की हलच लमच रही है। बोरे भर-भर कर नाज आने लगा। जब देखों तब बुआ, मौसी, मामी, सब मां की सहायता के लिए हाजिर है और नाज का बीनना-चुनना जोर-षोर स ेचल रहा है। धीरे-धीरे मुझे मालूम हुआ िकवह तो मेरे विवाह की प्रारंभिक तैयारियां हो रही थी। विवाह का दिन ज्यों-ज्यां े पास आता गया त्यों-त्यों हलचल बढ़ती गयी। घर में मेरा महत्व भी बढ़ने लगा। अमु को यह बात कुछ पसंद नहीं आयी। हमारा मेलजोल अब पहले जिनता नहीं रहा और दिन पर दिन वह और भी कम होने लगा। हम दोनों के बीच स्नेह का बंधन इतना उत्कट था कि यह नयी परिस्थिति दोनों को गवारा नहीं हुई। फिर अमु ठहरी अत्यंत तेजस्वनी और गुस्सैल। उसका रोश अनेक रूपों में प्रकट होने लगा। मां ने जब उसकी बाता हंसी में उडा दी तब उसकी दरख्वास्त पिताजी तक पहुंची कि मेरा विवाह रोक दिया जाय। लेकिन उस बेचारी की बात कौन सुनता। पुराना जमाना, कुलीन घराना और प्रतिश्ठित परिवार। आप्त-स्वजानों का फैला हुआ विस्तार। उस जमाने में विवाह के लिए यही उम्र सुयोग्य मानी जाती थी। अतः लड़का योग्य समय पर चतुर्भुज हो जायेगा इस विचार से घर के सब लोग खुष थे। जिस रोज़ मुझे हल्दी चढी उस रोज़ तो अमु फूट-फूट कर रो पडी। मां और पिताजी के समझाने पर भी चुप नहीं हुई। जब मैंने उसे बांहों में भर लिया जब कही उसके आंसू थमे।

विवाह में सब ने मुझे कुछ न कुछ भेंट दी। कई लोगों ने रूपये दिये। बुआ ने जरी की टोपी दी। मौसी सोने की जंजीर लायी और मामी हाथ की पहुची। और भी अनेक प्रकार की वस्तुएं आयी। अमु बेचारी क्या देती? सब के चले जाने के बाद हम अकेले रह गये तब अमु धीरे-धीरे मेरे पास आयी और मुझ से सट कर बैठ गयी। फिर बडे संकोच से बोली, ‘‘भैया, तेरे लिए मैं यह लायी हूं।’ ’ कह कर उसने वह गुट्टों की थैली मेरे हाथ में रख दी। मैं भी था तो बच्चा ही। फिर भी अमु की आखों से छलकने वाले स्नेह को मैं देख सका और उसके अपने अंक में ले लिया। सुलहनामा होते ही हम दोनो रो पडे ..... और पेट भर कर रोये।

फिर तो अमु बडी़ हो गयी। और भी अधिक आकर्शक, और भी अधिक मोहक। उसके रूप में यौवन का संयोग हुआ। लावण्य में माधुर्य का मिश्रण हुआ। आंखें में षरारत के स्थान पर लज्जा का उदय हुआ। बाल-सुलभ नटखटपन का स्थान प्रथम यौवन के संकोच ने ले लिया। लेकिन उम्र के साथ हमारा स्नेह घटा नहीं। बढ़ता ही गया। भले बुरे संयोगों और परिस्थितियों को पार कर के वह अधिकाधिक विषुद्ध और सहृदय होता गया। उका मार्दवा बढा, उसकी भव्यता उजागर हुई। फिर अमु का विवाह निष्चित हुआ। वह अब ससुराल चली जायेगी इस विचार से मैं उदास रहने लगा। विवाह के दिन तक तो यह उदासी इतनी बढी़ कि उसे हल्दी चढी़ तब मैं बेकाबू होकर रो पडा़।

अमु विदा हो रही थी। मां की आंखों से सावन-भादों बरस रहे थे। सगे-संबंधी भी रो-रो कर पागल हो रहे थ। मुहूर्त षायद कुछ सधा नहीं था। वातावरण में फैला हुआ था मांगल्य, जब कि अनुभव हो रहा था कारूण्य का, किसी घुमड़ते हुए संकट का, किसी आसन्न अनिश्ठ का। मैं उतरे हुए चेहरे से मां के पीछे खडा़ था। हृदय में वेदना का तूफान उमड़ रहा था। मन कुंठित हो रहा था।

कुछ रोज पहले मैंने पिताजी से पच्ची रूपये मांग लिये थो। उन रूपयों को अमु के दिये हुए बटुए में गुटकों के साथा रखा और जैसे ही गाडी में बैठी, मैंने बहुआ उसके हाथ में रख दिया। उसने मेरी ओर देखा। उस दृश्टि को मैं कभी नहीं भूल सकूंगा। स्नेह, विशाद औश्र व्यथा की अनकही कहानी आंसुओं के रूप में मूर्त हो रही थी। हमस ब को रोते छोड़ कर अमु खुद भी रोती-रोती चली गयी।

उसके बिछोह का दुख वह लौट आयी तभी कम हुआ। लेकिन इन कुछ ही दिनों में मेरी यह लाड़ली बहन बिलकुल बदल गयी थी। उसका हंसता हुआ चेहरा, थिरकती हुई षरारती आंखें और उल्लसित व्यक्तित्व सभी मानों बिलकुल बदल गये हो, जीवन-ज्योति ही मानो बुझ गयी हो। जैसे-जैसे दिन बीतते गये, वह और भी षांत और गंभीर होती गयी। स्पश्ट था विवाहित जीवन में वह सुखी नही थी।

चारेक साल बाद वह बीमार होकर ससुराल से आयी तब मां और मैं उसे पहचान भी न सके। वह इतनी बदल गयी थी मानों अमु न हो। अमु की छाया हो। सुंदरता की उस स्नेहमयी और नटखट पुलती का वह डरावना रूप देख कर हम सब भौचक हो गये। मां तो रो पडी। कुछ दिनों में अमु की बीमारी और भी बढ़ गयी। और एक दिन वह हम सब को बिलखते छोड़ कर चल दी। उसके जाते ही घर में सन्नाटा छा गया। सारी श्री, सारी षोभा समाप्त हो गयी। सारा मांगल्य नश्ट हो गया।

माँ की आज्ञानुसार तीसने दिन नर्मदा और आर नदी के संगम में अमु की अस्थियों का वसर्जन करने जाना था। जाने से पहले माँ और मैं उसकी पेटी की चीजों की देखभाल कर रहे थे विवाह के दिन की सौभाग्य-चुनरी की तह में से वह रेषमी बहुआ निकला। खोल कर देख तो संगमरमर के पांच गुटके हाथ-पांव सिकोडे पडे थे। मैं न तो रो सका, न कुछ बोल ही सका। मां भी कभी उन गुटकों को दखती, कभी मुझे। फिर देखना असंभव हो गया तो मुझ से लिपट कर रो पडी़। मां की गोद में मेरा भी हृदय द्रवित हो गया और फिर आंसुओं का धारा बह निकली।

सोमनाथ की ओर से आने वाली नर्मदा से जहां आर नदी मिलती है उस संगम की ओर हमारी नाव जा रही थी। मेरे हाथों में अमु की अस्थियों की झोली थी और जब में उसके गुटकों का बटुआ। अंतर में उसकी स्मृति के अगणित प्रसंग उमड़ रहे थे। इतने में मल्लाह ने कहा कि संगम आ गया। मैंने अस्थियों की झोली पानी में डाल दी। अमु की अंतिम स्मृति से वंचित होना तो नहीं चाहता था पर मन नहीं माना और मैंने गुटकों की थैली भी साथ ही विसर्जित कर दी। अमु की अस्थियां और संगमरमर के गुटके उस पवित्र संगम में एकरूप हो गये।

मुड़ कर देखा तो नर्मदा की लहरों के रूप में उसके लावण्य और लज्जा भरे लोचन धनुशाकृति घनी भौहों के नीचे से मेरी ओर देख कर मुस्करा रहे थे।

7

माता से मित्र

सावन का महीना था। मेरी उम्र तब पंद्रह-सोलह वर्श की रही होगी। माँ की आज्ञा हुई कि श्ररवण में मुझे रोज रणमुक्तेष्वर के दर्षन करने जाना चाहिये। वैसे मैं नास्तिक नहीं था। पर धर्म के बाह्य आडंबर और कर्मकांड पर मेरी श्रद्धा बिलकुल नहीं थी। दूसरी ओर पारिवारिक संस्कारों के कारण धर्मभावना बचपन से ही खून में मिली हुई थी। अतः कभी-कभी धर्म और आडंबर के बीच संघर्श उठ खडा़ होता। परंतु माँ की आज्ञारूपी बुनियादी बात के सामने बुद्धि और भावना दोनों को झुकना पड़ता और उसे सर्वोपरि मान कर दोनों का समाधान हो जाता।

मैं रोज षाम को पहले रणमुक्तेष्वर के दर्षन करता और वहां से सीधा अखाडे चला जाता। मंदिर जाने का नियम व्ययामषाला जाने के नियम के समान ही अटल था। किसी भी नियम या नियमन का निरपवाद रूप से पालन करना अपने आप में एक बुनियादी तालीम है। संयम सहज हो जाने पर स्वभाव बन जाता है। आज्ञा पालन की अनिवार्यता का समाधान अंतःकरण ने पहले ही स्वीकार कर लिया था। अब धीरे-धीरे उस में संतोश और सांत्वन मिलने लगा। षीघ्र ही दोनों के मेल से आनंद का उदय हुआ।

मंदिर जाने का रास्ता निष्चित था। बरहानपुर से मुड़ कर जो सड़क गोयागेट के राजमार्ग पर निकलती है वहां पहले एक नीम का पेड़ था। उस मोड़ के पष्चिम में नगरपालिका का छिड़काव की गाड़ियों का अड्डा था। उसके बाद गंदी बस्ती थी। नीम के नीचे एक टूटा हुआ-सा छप्पर था। एक रोज़ षाम को मंदिर जाते समय मैंने देखा कि छप्पर के नीचे एक बुढ़िया सो रही थी। मैंने सोचा कि कोई भिखारिन होगी, और मैं मनुश्य-सुलभ लापरवाही से आगे बढ़ गया। दूसरे दिन षाम को भी बुढ़िया वहीं पडी़ हुई दिखाई दी। मेरे कदम डगमगाये, पर रूके नहीं। लेकिन तीसरे दिन मैं आगे नहीं बढ़ सका।

बुढ़िया के पास जाकर देखा। उसका षरीर चिथडो़ में लिपटा हुआ था। फटी हुई मैली धोती आधी पहन कर आधी ओढी़ हुई थी। षरीर पर दूसरा वस्त्र नहीं था। जीर्ण वस्त्र में लिपटी हुई काया कठिनाई से सांस ले रही थी। मैंने उसे हिला कर कुछ पुछने का प्रयत्न किया। हलचल हुई पर बोल नहीं निकला। क्या करना चाहिए, कुछ समझ में नहंी आया। कुछ उलझन हुई, परन्तु षीघ्र ही निष्चय हो गया। मैं घर लौट गया। एक मूंज का खटोला, एक गुदडी, कुछ ओढा़बन और एक छोटा गिलास साथ लिया। माँ से कुछ कहा, और नीम के नीचे पहुंच गया। खटोले पर गुदडी़ बिछा कर बुढ़िया को लिटाया। पास ही कुम्हारवाडा़ था। वहां से एक घडा़ ले कर पानी भर लाया। कुछ पानी बुढ़िया को पिलाया। अंधेरा होने लगा था। महादेवजी मंदिर गया, पर उस षाम को आखाडे न जा सका। रात हो गयी। मन को चैन नहीं। आखिर माँ से सारी बात कही। उसने भोजन कर के साथ आने की बात तुरंत मान ली। कुछ रोटियां लेकर हम नीमतले पहंुचे। माँ ने बुढ़िया का षरीर टटोला। जर्जर काया बुखार से जल रही थी। दोनों छोटेलाल वैद्य के यहां पहुंचे। वैद्यजी भोजन कर रहे थे। माँ ने लक्षण बता कर दवा मांगी। मैंने आग्रह किया कि वे खुद चल कर देख लें तो अच्छा रहे। वैद्यजी साथ आये। रोगिणी को जांच कर दवा दी। सुबह-षाम षहद में दवा देनी थी। तीसरे दिन बुढ़िया को होष आया। आठ-दस रोज नियमित दवा और पथ्य देने से कुछ ठीक होती दिखाई दी। दोपहर को मौसी के यहां जाते समय माँ उसे खाना दे जाती थी। कोई पन्द्रह रोज बाद बुढ़िया बोलने के काबिल हुई।

उस दिन षाम को मैं नियमानुसार रणमुक्तेष्वर जा रहा था। हमेषा की तरह नीम के नीचे रूका। आज बुढ़िया के मुंह से वाणी निकली। पहला षब्द निकला ''वे .....टा' ' फिर दम लेकर बोली, ''जिला दिया मुझे!'' मैंने कहा, ''मांजी, सब भगवान की दया से होता है।' ' बुढ़िया की आंखों में चमक दिखाई दी। बोली, ''ईष्वर की

दया भी किसी के हाथों से ही पहुंचती है। वह खुद थोडे ही नीचे उतरता है।’ ’ वह मेरे सिर पर हाथ फेरने लगी। कुछ देर बाद में दर्षन करने चला गया।

दूसरे दिन श्रवण का अंतिम सोपवार था। रणमुक्तेष्वर महादेव के मंदिर में धृतकमल की झांकी थी। षाम को माँ भी साथ थी। बुढ़िया को खाना दे कर हम दर्षन करने चले गये। सोचा कि लौट कर कुछ देर उसके पास बैंठेगें। लौटे तब नौ बज रहे थे। डोकरी खाट पर बैठी थी। हमें देख कर पुलकित हो उठी। हमें खाट पर ही बैठाया। मैंने कहा कि खटोला तीन आदमियों को बोझ नहीं झेल सकेगा। बुढ़िया बोली, ‘‘बेटा, तीन क्या, तेरह का बोझ झेल लेगी। धरतीमाता की गोद जैसी यह खटिया।’ ’

फिर माँ के कंधे पर हाथ रख कर बुढ़िया ने कहा, ‘‘बहन दोनों से एक बात कहनी है, पर कही नहीं जाती। पर तुमने मुझे जिलावा है। तुम से क्या संकोच। हम पास के गांव गाजरावाडी में रहते है। मेरी नातिन मेरे साथ रहती थी। मैं वर्शो से विधवा हूं। हमारे एक संबंधी का लड़का कुछ दिनों से हमारे यहां आने लगा था। तीज-त्यौहार को चार पैसे की मदद कर देता था। लड़की जवान थी। छठी कक्षा पास कर के गांव के स्कूल में मास्टरनी हो गयी थी। धीरे-धीरे उसे लड़के ने हमारे यहा रहना षुरू किया। वह विवाहित था, बालबच्चे भी थे। फिर भी मेरी जवान नतनी उस पर उसकी नजर थी। मैं सब खेल समझ गयी। लड़की को चेतावनी दी। पर लड़का नहीं माना। मैं जरा देर के लिए घर से बाहर जाऊँ या दर्षन करने जाऊँ कि वह आया ही समझो। मुझे बहुत गुस्सा आया। पर मैं ठहरी गरीब, असहाय विधवा। क्या कर सकती थी? लाचारी से सब देखती रही। एक दिन मुझे कुछ खिला क रवह याह डाल गया और लड़की को ले कर भाग गया है। लड़की वापस मिलने का कोई उपाय हो, ... तो ....। मेरा इस दुनिया में और कोई नहीं है।’ ’ बुढ़िया की आंखों में आंसू आ गये। उसकी कहानी से दुखी होकर हम दोनों घर की ओर चल दिये।

माँ ने घर आकर पिताजी से सब बात कही। हमारे परिवार के एक मित्र थानेदार थे। माँ ने आग्रह किया कि उन से जिक्र किया जाय। पिताजी माँ के स्वभाव को जानते थे। अतः दूसरे ही दिन उन्होंने थानेदार साहब से बात की। चैथे रोज वे दोनों पकडे गये। लड़की अभी नाबालिक थी। अतः उसे उसकी नानी को सौंप दिया गया और आदमी को हवालात में बद कर दिया गया। लड़की को प्राप्त कर के बुढ़िया के आनंद का पारावार न रहा। गाजरावाडी में उसे उसके घर ले गये तब तो उसका हर्श बांध तोड़ क रवह निकला। साल भ्ज़र बाद उस लड़की का विवाह कर दिया गया। माँ ने उन्हें अपना मान कर अनेक प्रकार से सहायता की।

इस प्रसंग ने मेरे हृदय को सेवा की सच्ची दीक्षा दी। इसके बाद माँ के प्रति मेरा दृश्टिकोण भी बिलकुल बदल गया। हम एक दूसरे के अत्यंत निकट आ गये। मेरे भविश्य के सेवाकार्य में माँ ने हार्दिक समवेदना से सहयोग दिया, और वह उसकी मृत्यु तक अखंड चलता रहा। इस बुढ़िया की घटना ने ऐसा क्या कर दिया था कि हम दोनों के बीच एक नया संबंध स्थापित हुआ? उसका वात्सल्य तो सीमाहीन था ही पर बाद में दीन-दुखियों की सेवा के प्रति भी उसके मन में गहरी निश्ठा उत्पन्न हुई। मेरे अनेक प्रस्तावों में वह कभी सिर्फ राय देती, कभी तटस्थ रहती और कभी समभावपूर्वक सहायता करती। पर किसी भी हालत में उसने मुझे सहानुभूति से वंचित नहीं रखा और वह मेरी सदा की साथी बन गयी। वात्सल्य के उपरान्त अब उस से मुझे प्रोत्साहन और मनोबल प्राप्त होने लगे। उसके इस रवैये से अनुगृहीत बना हुआ मेरा मन सदा उसके आषीर्वाद की कामना करने लगा। कच्ची उम्र मे जाग्रत इस सेवाभाव ने समर्पण की भावना को एकाग्र किया और अंत में इसी प्रक्रिया ने मेरी अंतनिश्ठा को सुदृढ़ बनाने में अमूल्य सहायता की। मदमस्त यौवन में सन्निश्ठा बलवती न हो, तो अभियान का सूक्ष्म कीटक पूरे अस्तित्व को दीमकर लगा देता है। माँ के वत्सल और विमल सहचार ने मरते दम तक मेरी सन्निश्ठा पर पहरा दिया।

उसके अंतिम दिनों में एक अविस्मरणीय घटना हुई। गांधीजी के विचारों से प्रभावित होकर एक बार मैं एक हरिजन विद्यार्थी को भेजन कराने के लिए घर ले आया। माँ कंठीबंध वैश्णव थी। पर उस रोज उसने हमें चैके

में बैठा कर खिलाया। परोसते-परोसते उस बुढ़िया की बात याद की और बोली, ''अत में गांधीजी की बात ही सही है, बेटा। न कोई ऊँचा है, न कोई नीचा। दरिद्र-नारायण ही नारायण का सही रूप है। जो उनकी सेवा करता है व ईष्वर की पूजा करता है।' '

उस दिन के बाद हमारे घर में वैशणवजन और हरिजन के बीच कोई भेदभाव न रहा। हम दोनों पहले माँ-बेटे थे। अब घनिश्ठ मित्र बन गये।

8

मृत्यु के तांडव में षिवसंकल्प

प्लेग के दिन थे। महामारी ने पूरे षहर में भय और आतंक का वातावरण फैला रखा था। जिन्हें बाहर चले जाने की सुविधा थी वे कभी के षहर छोड़ कर चले गये थे। धनवान और उच्च मध्यम वर्ग के बहुत से लोग षहर के बाहर कुटिया बना कर रहने लगे थे। षहर की गली-गली में रूदन और व्यथा का सामाज्य था। हमारे मुहल्ले में बाहर जा कर रह सकें ऐसीं किसी की स्थिति नही थी। प्रायः सभी परिवार श्रमजीवी या निम्न मध्यम वर्ग के थे। अतः मुहल्ला अब तक भरा हुआ था। सौभाग्य से अब तक किसी को रोग का ससंर्ग नही हुआ था। कई घरों में बिल्लियां पाली गयी थी। चूहे के दर्षनमात्र से लोग कांप उठते थे। मृत्यु की भयानकता और सर्वग्राही भय से पूरा वातावरण छाया हुआ था।

ऐसे में एक रोज हमारी पडा़ेसन फुली काकी रोती-रोती बाहर आयी। बेचारे फकीर काका की बगल में गांठ निकल आयी थी। वेदना बढ़ती जा रही थी। फुली काकी और पड़ोस के अन्य लोग सेवा-टहल में लग गये। पर प्लेग के रोग की कोई दवा नही । प्रतिबंधक इंजेक्षन तब तक निकले नही थे। प्रथम महायुद्ध का जमाना। किसी प्रकार की दवा दारू हो सके उससे पहले ही उसी षाम को फकीर काका ने देह छोड़ दी। पूरी रात मुहल्ले में भयंकरता भटकती रही। प्लेग का हमारे मुहल्ले में पहला षिकार था। लोग फकीर काका के षव को जला कर आधी रात बाद घर लौटे ही थे। फिर कहीं से रोने की आवाज सुनाई दी। मालूम हुआ कि रतन काकी का इकलौता बेटा प्लेग के चंगूल में फंस गया था। जाध्ंा में गांठ निकली थी। जिसकी वेदना से जवान लड़का बलि दिये जाने वाले पषु की तरह चीख रहा था। रतन काकी विधवा थी। लड़का ही उनका एकमात्र आधार था। ष्मषान से लौटने वाले लोगों ने कुल्ला भी नही किया था कि रूदन से रतन काकी की छाती फट गयी। जिस की परोपकारिता का पूरे मुहल्ले में जोड़ नही था। उस रतन काकी का जवान लड़का षंकर मृत्यु के मुख में जा पड़ा। प्लेग के रोगी के षव को अधिक देर घर में नहीं रखा जाता। अतः फकीर काका को जला कर आने वाले लोग उलटे पाॅवों षंकर को उठा कर ले गये।

मंै, माँ और मेरी बड़ी बहन, तीनों रात भर सो न सके। सुबह सात बजे पिताजी ष्मषान से लौटें। पूरी रात का जागरण श्रम, भय का वातावरण और जवान की मौत के विशाद के कारण उनके चेहरे पर षून्यता छा रही थी। माँ के कहने से वे नहा-धोकर और कुछ खा कर लेटे ही थी। कि हमारे सामने के मकान में मगन मामा भागते हुए आये और हिंचकयों से रो पड़े। लखमी मामी को प्लेग की गांठ निकली थी। उनके रोने की आवाज से पिताजी जाग गये। वे मगन मामा के कंधों पर हाथ रखकर सांत्वना के दो षब्द कर रहे थे। कि पाली मौसी रोती-रोती खबर लायीं कि पिछली गली में रहने वाली अंधी बुढिया की इकलौती जवान लड़की मणी को गंगाजल दिया है। उस दिन दोपहर को दो अरथियाॅ एक साथ निकलीं। पूरे मुहल्ले में हाहाकार मच गया। दो दिन पहले तक यह इलाका सुरक्षित था। सब कुषल थे। पर अड़तालीस घंटों मेंे मृत्यु की काली छाया ने विनाष का धमासान मचा दिया।

लोग ष्मषान से लौटे नही थे। अभी तो चिताओं के अंगारे भी नही बुझे होंगे। सांय ढल रही थी। माँ रोटी और साग परोस कर हम भाई बहन को खिला रही थी। और पिताजी को चिंता में उद्विग्न हो रही थी। कि फूली

काकी की दोनों जांधों में गांठें निकली हुई थी। मैं और बहन एक कौर भी न खा सके। फूली काकी को उनके घर में ले गये। बहन मुझ से बहुत बडी थी। उस समय पसीसेंक साल की होगी। मैं चैदह पंद्रह का दासमझ किषोर लगा चिल्लाने । मेरी चीखेेें सुनकर मुहल्ले के लोग जमा हो गये। पुरूश ते सब ष्मषान गये थे। सब स्त्रियाॅ और बच्चे ही थे। फूली काकी उनके स्वभाव की मिठास और सेवाभाव के लिए प्रसिद्ध थी। एकत्रित स्त्रियाॅ वैसे ही घबराई हुई थी। कि फिर से चीख-पुकार सुनाई दी। किसी ने कहा कि रेवा मौसी है। कोई जा कर समाचार लाया कि दौलतराम मौसा चल बसे। ष्मषान के लोग लौटे तब काषी बुआ के बड़े लड़के चुन्नीलाल और फूली काकी की अंतिम धडियाॅ गिनी जा रही थी। और दौलतराम का षव राह देख रहा था।

पिताजी ने अरथियों के बजाय और किसी व्यवस्था की राय दी। सेवा समिति की ओर से मुर्दे ले जाने के लिए ठेला गाड़ियों की व्यवस्था की गयी थी। तय हुआ कि उनका उपयोग किया जाय। सब लोगों ने तुरंत यह बात मान ली। दुसरे दिन प्रातः मुहल्ले से तीन ठेला गाड़ियाॅ निकलीं। फकीर काका का तो घर ही उजड़ गया। कोई नही बचा। मुहल्ले का रखवाला कसरती जवान चुन्नीलाल भी चलता बना। षतरंज के यकताॅ खिलाड़ी दौलतराम मौसा की बुलंद आवाज के अभाव में मुहल्ला सूना हो गया। अब उनके सहन मेेें से मुहरों की सही चाल के बारे में हाने वाली गरमा गरम बहस कभी सुनाई नहीं देगी।

उसी रोज षाम को बहन को रोती देख कर माँ चितिंत हो गयी। पूछने पर मालूम हुआ कि बगल में बहुत दर्द हो रहा था। माँ आषंका से अधमरी हो गयी। पिताजी आये। कोई उपाय नहीं था। बहन प्लेग के पंजे मेेें फॅस चुकी थी। वेदना के मारे चीख चीख कर आधी रात को वह सदा के लिए षांत हो गयी। अब तक पूरे मुहल्ले में हमारा घर सब कि लिए सांत्वना का स्थान था। अब हम भी उसी श्रेणी में आ गये। पौ फटे पिताजी और उनके मित्र बहन को ष्मषान ले गये। माँ और मैं एक दूसरे को देख देख कर रोते रहे। बड़ी मौसी और अन्य स्त्रियों ने ढ़ाढसा बंधाया पर माँ के ह्रदय का दुख कम नही हुआ। उलटे लोगों की सांत्वना जितनी अधिक सह्रदय होती गयी उतना ही उसका दुख ह्रदय की गहराइयों में उतरता गया। उसकी सुबकियाॅ सुन कर आंखों के आंसू भी वेकाबू हो उठे।

दोपहर को पिताजी घर पर नही थे। तब फिर माँ की गंगा जमना वह निकलीं। माँ के इस मर्मभेदी रूदन से घबराया हुआ मेरा अबूझ मन भयभीत हो कर सुन्न हो गया। हमारे घर में मेरे लिए षोक या दुख का यह पहला ही प्रसंग था। विशाद से अपरिचित मेरा मन उसके प्रथम स्पर्ष से ही विमूढ़ हो गया। उस रात कोई भी सो न सका। दूसरे दिन पिताजी ने मुझे गांव भेज देने का निष्चय किया। तुंरत अपने पुराने मित्र छंगन पटेल को तार से सूचना दे कर बुलवाया। माँ की हालत विचित्र थी। वह मुझे भेजने को भी राजी नही थी। और रोकने को भी तैयार नही थी। सूरत जिला प्लेग से मुक्त था। लेकिन मुझे अपनी ममता की छाया से दूर भेजने में उसका ह्रदय फटा जा रहा था। दूसरी ओर महामारी ने जो रूप धारण किया था। उसे देखते हुए मुझे मौत के षिंकजे में रोके रखने की भी उसकी इच्छा नहीं थी। आखिर मुझे भेजना ही तय हुआ।

रोज मै पिताजी के साथ ही भोजन करता था। पर अलग थाली मेेें। उस रोज पिताजी ने मुझे अपने साथ एक ही थाली मेेें खाने को कहा। इतना ही नहीं आग्रह कर के माँ को भी साथ ही बैठाया। जहाॅ तक याद है, माँ पिताजी और मैने एक ही थाली में भोजन किया हो, ऐसा उस रोज पहली ही बार हुआ था। दुख से भुने हुए ह्रदयों को इस आत्मीयता और निकटता से कुछ ठंडक मिली। उस स्थिति में इस से बढ़ कर आष्वासन और ही भी क्या सकता था।

तीन चार दिन से षाम को भजन नहीं हो रहा था। हर सांझ मृत्यु की छाया से घिरी हुई रही थी। और प्रायः ष्मषान में ही बीती थी। अतः षाम को पिताजी ने मंडली एकत्रित की। भजन की धुन षुरू हुई और उन्होने अपना प्रिय भजन: ’’इस तन धन की कौन बड़ाई, देखत नैनो में मिट्टी मिलाई’ ’ इतने श्रांत स्वर में गाया कि खुद भी रोये और औरों को भी रूलाया।

रात को पिताजी की तबीयत ठीक नही थी। अतः उन्होंने खाना नही खाया। माँ ने और मैनें एक ही थाली में थोड़ा बहुत जैसे तैसे खा लिया। रात को माँ ने पिताजी को पेनकिलर की एक खुराक दी। सब सो गये। रात को एकाएक मैं नींद मेें से हडबड़ा कर जगा। देखा कि पिताजी वेदना से छटपटा रहे थे। और विस्तर पर बैठे हुए एक हाथ से दूसरे हाथ को दबा रहे थे। माँ दिखाई नही दी। दीपक कुछ तेज जल रहा था मैने पूछाः ''आप को क्या हो रहा है बापूजी ? माँ कहाॅ गयी?''

' ' अभी आती होगी बेटा। हाथ में सहज दर्द हो रहा है। तू सो जा।' ' पिताजी ने कहा तो पर उनके मुख पर वेदना और विवष्ता के चिहन स्पश्ट दिखाई दे रहे थे। दूसरों को आष्वासन देने वाली उनकी प्रतापी आवाज आज दीन मालूम दे रही थी। और श्रद्धा से दीप्त उनकी तेजस्वी आंखोें में गमगीनी आंसू बन कर झलक रही थी। मै विहूल हो उठा इतने में माँ मामा और मामी को साथ लिये आ गयी। कुछ ही देर में हमारा छोटा सा घर लोगों से ठसाठस भर गया। मामा भाग कर छोटेलाल बैद्य को बुला लाये। एक घंटा भी नही बीता था कि माँ की चीख सुनाई दी। मै अंदर पहुंचा। पिताजी को प्लेग की गांठ निकल आयी थी। माँ को छाती फाड़ कर रोते हुए देख कर मेरे हृदय का बांध भी टूट गया। छोटेलाल रात भर उपचार करते रहे । दोपहर को षहर के दो बड़े डाक्टर भी आये। पर सब ने आषा छोड़ दी थी।

सांझ ढल रही थी। चिंता और व्यथा से सब बेचैन हो रहे थे। यहां की हालत का तो वर्णन नही हो सकता। छगन पटेल मुझे लेने आ पहुचे थें। यहाॅ की हालत देख कर बेचारे स्तब्ध हो गये। इतने में पिताजी ने माँ से कह कर सब को बाहर भिजवा दिया और मुझे अंदर बुलाया। सिर्फ माँ, छगन पटेल मामा और छोटेलाल वैद्य भीतर रहे। पिताजी ने मुझे अपने पास बैठाया। सिर पर हाथ फेरा। उनकी दृश्टि से नजर मिलते ही मै रो पड़ा। पिताजी ने मुझे षांत किया और धीमी आवाज से पानी मंगवाया। फिर मेरे मुख पर आंखें स्थिर कर के बोले '' बेटा एक संकल्प करना है।' ' माँ और पास बैठे हुए अन्य लोग दहल उठे पिताजी ने और भी धीमी आवाज में कहा, मेरे पिताजी ने अपनी सारी पुष्तैनी जायदाद सूरत के निरांत मठ को दान कर दी थी। लेकिन उसकी वसीयत और पक्की लिखा पढ़ी नही हो सकी। मरते समय उन्होंने मुझ से वचन लिया था कि मै उस जायदाद पर दावा नही करूंगा। उसी साल तेरी माँ और मेैं स्वेच्छा से अकिंचनता को स्वीकार कर के यहाॅ चले आये। मौसी ने यह मकान न दिया होता तो सिर पर छप्पर भी न होता। लेकिन ईष्वर ने हमें भूखा नही मारा। उसी ईष्वर पर श्रद्धा रख कर हाथ में जल लेकर वचन दे कि उस वंष परंपरागत मिल्कीयत को तू वापस नही मांगेगा। और उसे प्राप्त करने के लिए मुकदमेबाजी करेगा।' '

माँ ने मेरे दाहिन हाथ की अंजलि मेें पानी दिया और कहा बेटा संकल्प कर कि उस जायदाद को वापस प्राप्त करने का विचार तक नहीं करेगा। मैने पिताजी के षब्दों के साथ माँ के षब्द जोड कर वचन दिया।
' ' बेटा किसी का भला न कर सको तो कम से कम किसी का बुरा मत करना। किसी के रास्ते में फूल न बो सको, तो कम से कम कांटे मत बोना' ' इतना कह कर पिताजी ने फिर सिर पर हाथ फेरा।

हाथ सिर पर ही रह गया और पिताजी चले गये।

9

सौभाग्य

हमारे घर में नागपंचमी के दिन नागदेवता की पूजा होती थी। हमारे पुरोहित छगन महाराज सुबह से ही आ कर चंदन घिसने लगते। घिसा हुआ चंदन एक कटोरी में भरते। फिर एक दातुन को कुचल कर उकसी कूंची बनाते। एक आले के गोबर से लीपा जाता। कूंची से उस लिपे हुए आले में नागदेवता के चित्र बनाये जाते। फिर इन चित्रों की पूजा होती। घर की कोई सुहागिन पूजा करती। पिताजी थे तब तक माँ पूजा करती। पिताजी की मृत्यु

के बाद बहन पूजा करने लगी। जब बहन भी हमें छोड कर चली गयी तब पुरोहित जी ने आदेष दिया कि परिवार के सब से छोटे सदस्य के हाथों पूजा होनी चाहिये। इस प्रकार इस पूजा का भार मेरे ऊपर आ गया।

माँ पूजा करती थी। तब मेरे मन में नागदेवता का आकर्शण तो था परंतु इस से भी अधिक कुतूहल एक और प्रथा का था। सवा सेर दूध को खूब लौटा कर उस में षक्कर केषर और इलायची डाल कर एक संुदर बर्तन में भर कर तीसरी मंजिल के कमरे में रख दिया जाता दरवाजे पर चटखनी लगा दी जाती। दूसरे दिन सुबह बर्तन खाली मिलता तब उसे मांजा जाता। मेरे मन में हमेषा जिज्ञासा उठती कि यह दूध कौन पी जाता होगा। मैने कई बार माँ से पूछा भी लेकिन उसने सुना अनसुना कर दिया। बालकों के लिए जिज्ञासा के अंसतुश्ट रह जाने जैसे दारूण दुख और कोई नही होता। लेकिन बुजुर्ग लोग इस बात को षायद ही समझ पाते है।

कई बार मैने निष्चय किया कि चुपचाप ऊपर जा कर देखूंगा कि दूध कौन पी जाता हैं परंतु नागपंचमी आती और मंै भूल जाता। लेकिन जिस साल से मैं पूजा करने लगा उस समय मरी उम्र पंद्रह सोलह वर्श की हो चुकी थी। मैं हाईस्कूल मेंे पढ़ता था। पंचमी के दिन नियमानुसार छगन महाराज आये चंदन घिसा गया। पतली दातुन की कूंची तैयार हुई और चंदन से नागदेवता का चित्र बना। पूजा कर के मैनें साश्टांग प्रणाम किया। माँ ने कहा कि परीक्षा में पास होने का आषीर्वाद मांग ले। आधुनिकता के अभिमान-वष मंैने मुंह से तो कुछ नही कहा, पर अंतर ने यही बात कही। माँ नियमानुसार दूध रख आयी। इस बार मै कुतूहल को न रोक सका। माँ से पूछा ही बैठा कि यह दूध कौन पी जाता है।

माँ ने सोेचा कि लड़का अब समझदार हो गया है। अब डरेगा नही। कहने मेंे कोई हर्ज नही। स्नेह से बोली ''बेटा अपने परिवार के रखवाले नागदेवता है। हर साल वे हमारी रक्षा करने के लिए आते है। हम अपनी श्रद्धानुसार उनकी पूजा अर्चाना करते है। और उन्हें दूध पिलाते हैं। ''

' ' क्या माँ! तू भी क्या पुराने जमाने की पोंगापंथी की बातों में विष्वास करती है। सांप भी कहीं दूध पीता होगा। बिल्ली पी जाती होगी। '' मुझे तब तक नये जमाने के अविष्वास की हवा लग चुकी थी।

माँ! चैंक पड़ी। दुखी हो कर बोली, ''नही बेटा ऐसा नही कहते। वे तो हमारी कुल परंपरा के देवता है।'

माँ की भावना देख कर में चुप हो गया। विवाद कर के उसका मन दुखाने की मेरी इच्छा नहीं हुई। मै उठ कर चला गया। पर जाते जाते नागदेवता के प्रसाद के पांच बतासों में से दो उड़ा लिये।

षाम हुई। मेरा कुतूहल षांत नही हुआ था। मैं इस बात की थाह पाने का निष्चय कर चुका था। किषोरवस्था के आंरभिक वर्शो में कुतूहल और जिज्ञासा इतने प्रबल हो तो इस में आष्चर्य की क्या बात। मैं दिन रहते ही ऊपर के कमरे का चक्कर लगा आया। दरवाजा बंद था। चटखनी खोलकर कर चोर की तरह भीतर गया। दूध वैसा ही रखा था। मैंने धीरे से एक खिड़की भीतर से खोल दी और रात को आकर देखने का निष्चय किया। दरवाजा खोलने के झंझट में कही माँ आ जाय और पकड़ा जाऊॅ, इस डर से खिड़की खोल दी थी ताकि बाहर से ही देख सकूं।

रात हुई। दस बजे होंगे। घर में सब सो गये थे। माँ भी घर के खिड़की दरवाजे ठीक से बंद कर के निष्चिंत सो रही थी। मैदान साफ देख कर मैं दबे पाॅवों ऊपर पहुॅचा। टाॅर्च पहले से ही साथ रख ली थी। तीसरी मंजिल तक पहुॅचते-पहुॅचते दिल धड़कने लगा। एक भय था कि माँ कहीं जाग गयी तो नाराज होगी और दूसरा अज्ञात भय था नाग की कल्पित मूर्ति का। लेकिन भय का मुकबला न कर सके तो बालक की जिज्ञासा कैसी! मै ऊपर पहुॅच गया। षाम को खोली हुई खिड़की में से टार्च की रोषनी कमरे में डाली। जो देखा उसे देख कर डर के मारे आॅखें फट गयी। षरीर में रोमांच हो आया और पांव काॅपने लगे। एक बड़ा भारी प्रचंड नाग कूडे पर बैठा हुआ दूध पी रहा था। प्रकाष पड़ते हुये उसने फन ऊपर किया और दो-तीन बार हिलाया। गले पर सुंदर

आंखों जैसी आकृति थी। टार्च जैसे अपने आप बुझ गयी और मैं भागा। आकर बिस्तर पर पड़ा पर नींद किसी तरह नही आयी। डर के मारे बुरा हाल था। अंत मेंे माँ के बिस्तर पर गया और ओढ़ावन सरका कर उसके अंक में जा छिपा । माँ चैंक कर जाग गयी। मुझे काॅपता देख कर उसके मन में न मालूम कैसी कैसी अमंगल षंकाएॅ उठी होगी। माँ ने पूछा, ''क्यों बेटा इतना काॅप क्यों रहा है। क्या हुआ? कोई सपना-वपना देखा क्या ?

' 'नही माँ।' ' मेरी कंपकंपी चलती रही।

' ' तो क्या हुआ? कह दे बेटा। मैं नाराज नहीं होऊगी। माँ ने मुझे छाती से लगा लिया और पीठ पर हाथ फेरने लगी।

' ' माँ .....'' मैं सिर्फ इतना ही कह सका। और फिर मै रो पड़ा।

माँ को लगा कि लड़के ने सचमुच ही कोई भयानक स्वप्न देखा है। मुझे थपकते हुए वह स्नेह से बोली '' क्या हुआ बेटा? बता दे। कोई डरावना सपना देखा ? नागदेवता सपने में आये थे।

' ' माँ मैने नागदेवता को देखा। ''
' ' सपने में?''
' ' नही माँ। ''
' ' तब ?''
' ' ऊपर के कमरे मेंे।' '
' ' तू वहाॅ गया ही क्यों था ?''
' ' नगदेवता को देखने। ''

' ' तो इस में डरने की क्या बात है? अच्छा ही हुआ। तुझे नागदेवता के दर्षन हो गयेे। यह तो तेरा सौभाग्य है बेटा। अब तेरा बाल भी बांका नही होगा। तेरा कल्याण होगा। चल, अब यहीं सो जा।' '

माँ के अंक में छिप कर नींद कब आ गयी यह मालूम ही नही पड़ा।

10
मंगलसूत्र
पिताजी की अचानक मृत्यु के बाद माँ की उदासी का पार नहीं रहा। उसके मुख पर कभी मुस्कराहट आती भी तो विशाद की गहरी छाया से घिरी हुई। उसके कार्यो में उसके बर्ताव में और हमारे प्रति उसके वात्सल्य में भी आलंबन मानो उदासी का ही रहता।

मुझे बचपन से ही माँ का गला बहुत प्रिय था। माँ वैसे ही अत्यंत संुदर और सौम्य थी। उसके हृदय की निर्मलता का लावण्य चेहरे पर ऐसा षोभा देता कि देखा ही कीजिये। लेकिन सब से अधिक मुझे उकसा गला पंसद था। उसकी गरदन से लिपट कर स्नेह करते में कभी अधाता ही नहीं था। पाठषाला में कुछ अपराध हो गया हो, किसी लड़के से झगड़ा हुआ हो या पिताजी ने डांटा हो, माँ के स्नेह की आवयष्यकता पड़ते ही मै उसके गले से लिपट जाता। मंगलसूत्र से षोभित उस सुराहीदार गरदन को चूमना मेरे बाल जीवन का सर्वोच्च सुख था। बदले में माँ भी पेट भर कर वात्सल्य का पान कराती।

पिताजी की मृत्यु के बाद माँ का उदास चेहरा श्रीहीन लगने लगा और मंगलसूत्र के अभाव में उसकी सूनी गरदन तो बहुत ही अषोभन दिखाई देती। विधवा होते ही माँ कारूण्य की प्रतिमा और छत्र बिनाकी अनाथिनी दिखाई देने लगी थी। मेरी नजर जब भी माँ के चेहरे पर पड़ती कुछ नीचे उतर कर सूने गले पर भी जाती

और मेरे मुंह से अनायास ही निःष्वास निकल जाता। इस दुख को सहन करने बाला में अकेला नहीं था। पार्वती बुआ भी थी। बुआ खुद बेहद सुंदर थी। पर माँ के सौदर्य की तो वे निस्सीम उपासक थी। एक रोज की बात मुझे बराबर याद है। बुआ माँ और मैं अकेले बैठे थे। पिताजी के संस्मरणों की दावत हो रही थी। अचानक बुआ की नजर माँ की सूनी गरदन पर पड़ी। उन से रहा नही गया। बोली ''भाभी गले में एक माला तो डाल ले। तेरी सुनी गर्दन मुझ से दिखी नहीं जाती। फिर स्वाभाविक रूप से उनकी बाॅहें माँ के गले में जा पहुंची। माँ ने बात टालने के लिए पल्ला इस तरह ओढ़ लिया कि गले की चारूता ढंक गयी। वह कुछ बोली नही; पर और भी उदास हो गयी। मुझे माँ प्रिय थी; उसका सौदंर्य प्रिय था। उसकी आंखोेंं में डूब कर तो मै दुनिया को भूल जाता था। लेकिन उसके गले से लिपट कर प्यार करना तो मेरे जीवन का परम ऐष्वर्य था। अब यह रीती गरदन मुझे रूला रूला देती और उसके विगत सुहाग की याद दिला कर पिताजी के संस्मरणों की मनोयात्रा करा देती।

धनतेरस के दिन हमारे यहां धन की पूजा होती थी। पिताजी जीवित थे तब भी माँ पूजा मुझे से ही करवाती थी। पिताजी के जाने के बाद भी यही प्रथा चलती रही। पर पिताजी की मृत्यु के बाद पूजा में हुआ एक परिवर्तन मेरी नजरों से छिपा न रहा। धन और आभूशणों की पूजा समाप्त होते ही माँ एक छोटी से रेषमी पोटली में से अपना मंगलसूत्र निकालती। उसे पहले दूध से और फिर पानी से धो कर उसकी पूजा करती। फिर उसे रेषम में लपेट कर चांदी की एक छोटी सी डिबिया में रख देती। धनतेरस आती और चली जाती। यह क्रम वर्शानुवर्श चलता रहा। धीरे धीरे वह मंगलसूत्र मेरी नजरों से माँ के जितना ही प्रिय हो गया।

सन 1921 में पाँडीचेरी से लौटा तब सब से बडा़ आष्वासन माँ का मुस्कराता हुआ चेहरा था। मेरे जाने से उसे जो दुख हुआ था। उसे उसने मेरे लौटने की खुषी में वहा दिया। हम सुखी थी। लौट कर मैनें नव गुजरात साप्ताहिक के सहायक संपादक का पद स्वीकार कर लिया था। माँ को इस से बहुत आंनद हुआ। लेकिन इस काम के कारण मुझे सुबह दोपहर षाम किसी भी समय दूर दूर के चक्कर लगाने पड़ते थे। गरमी के दिन थे। बैसाख महीना। गरमी कहे कि इसी साल पडूगीं। लू ऐसी चले कि सिर चकरा जाय। एक दिन ऐसी जलती दोपहर में दो बजे में भूखा प्यासा घर पहुचां माँ भी बिना खाये पिये मेरी चिंता करती व मरीे राह देखती हुई बैठी थी। मै आया तब उसका चेहरा मुरझा रहा था। हमने भोजन किया। मै कुछ देर सुस्ताने के लिए लेट गया। उठा तब पूरा षरीर बुखार से जल रहा था। माँ घबरा गयी। अनेक प्रकार के घरेलू उपचार किये पर बुखार नही उतरा। आखिर डाक्टर को बुलाना पड़ा। उन्होंने तुरंत अस्पताल ले जाने की राय दी। बीमारी लंबी और कश्टसाध्य प्रमाणित हुई। कई सप्ताह बिस्तर पर पड़ा रहा। ईष्वर की कृपा और माँ के आषीर्वाद से दो महीने बाद चलने फिरने काबिल हुआ।

उसके बाद की धनतेरस के दिन माँ पूजा करवाने बैठी। पूजा मै पांच रूपये थे पर आभूशण एक भी नही था। मुझे आष्चर्य हुआ। धन की पूजा के बाद माँ ने नियमानसुार मंगलसूत्र की पूजा की। बाद में मैने माँ से पूछा तब मालूम हुआ कि मेरे पंाडीचेरी के लंबे निवास के दरमियान माँ ने जेवर बेच बेच कर घर चलाया था। मेरा सिर लज्जा से झुक गया। मै वहां सुदूर पांडीचेरी में बैठा आत्मसाधना कर रहा था। और यहां माँ अपना लहू सींच-सींच कर जीवन साधना कर रही थी। उस दिन माँ के रीते गले से लिपट कर मै खूब रोया।

जाड़ा बीत गया और फिर गरमी आयी । मेरी एक साइकिल लेने की उत्कट इच्छा थी। लेकिन इतने रूपये कहंा से आते। एक रोज रात को हम बैठे हुए बातें कर रहे थे कि मै साइकिल का जिक्र कर बैठा। साइकिल के बिना मुझे कितनी तकलीफ होती है यह जान कर माँ का जी भर आया। दूसरे दिन दोपहर को फिर मुझे देर हो गयी। माँ हमेषा की तरह भूखी प्यासी बैठी मेरी राह देख रही थी। उसने परोसा। हमने खाना खाया। माँ को आजकल एक ही चिंता लगी रहती थी। कि मै कहीं फिर बीमार न पड़ जाऊ। खाना खा कर मै काम पर जाने की निकला कि माँ ने पूछा '' बेटा अगर साइकिल हो, तो तेरी मेहनत कुद कम हो जाय, है न ?'' मैने जाते जाते

हॅस कर कहा। हाॅ माँ हो तो जाय। पर संतों की वाणी है न:' सकल पदारथ है जग माही .... । '' माँ को जब भी हॅसाना होता, मै यह करम हीन नर पावत नाही' वाली उक्ति दोहरा देता था। मैने सोचा बात समाप्त हो गयी; और मै दफ्तर चला गया।

षाम को मैं घर आया तब बरामदे में एक नयी साइकिल दिखाई दी। मैंने सोचा कि कोई मिलने आया होगा। मेरी आवाज सुनते ही माँ भागी-भागी बाहर आयी! उसके मुख पर एक अवर्णनीय आनंद छा रहा था। इधर कई वर्शो से उसके चेहरे पर इतनी प्रफुल्लता दिखाई नही दी थी। बोली, ' किषन तेरी साइकिल आ गयी।' ' आनंद और आष्चर्य की मिश्र भावना से अभिभूत मैं कुछ पूछूं उसे से पहले ही अपने मनोहारी स्मित से मुझे सिंचित कर के माँ ने कहा, ''गोपलदास काका के यहाॅ से खरीदी है। क्यों पसंद है न? गोपालदास कह रहे थे कि आजकल सब लडके इसी कंपनी की गाड़ी पंसद करते है। क्यों अच्छी है न? मैं लडखड़ाती जबान से सिर्फ इतना ही कह पाया,'' बहुत अच्छी है माँ। ...... पर अभी इसकी उतनी जरूरत नहीं थी। मैं और कुछ कहूँ उसे पहले ही माँ कह उठी, ''अरे पगले घुमा कर तो देख। देखू तो सही तुझे चलाना भी आता है या नहीं। नयी साइकिल पर बैठ कर मैंने गली में ही चक्कर लगाया तब माँ के चेहरे पर स्वर्गीय आनंद छा गया।

उसके बाद की धनतेरस के दिन हम पूजा करने बैठे। माँ ने मुझसे पाॅच रूपयों की पूजा करवाई। पर मंगलसूत्र की पूजा नही की। मैने पूछा , ''माँ आज तुम्हें पूजा नहीं करनी ?'' माँ हंस कर बोली, अब जरूरत नही बेटा। मेरी पूजा पूरी हो चुकी। '' मेरा हृदय धक से रह गया। मैं सब समझ गया! बोला, माँ तुमने मंगलसूत्र बेच कर मेरे लिए साइकिल खरीदी? मेरे उतरे हुए चेहरे को हाथों में ले कर माँ ने कहा, ''बेटा तू साइकिल पर बैठेगा। मैं देखूगीं। तुझे आराम रहेगा। मेरे लिए यही मंगलसूत्र की पूजा है।' ' मैं न तो कुछ बोल सका न रो सका। सिर्फ माँ के गले से लिपट गया।

दूसरे दिन मैंने एक मित्र के एक सौ दस रूपये कर्ज लिये। रूपये लेकर मै गोपालदास काका के घर गया। वे घर पर नहीं थे। पर गुलाब काकी थी। वे बाहर आयी तब उनके गले में मैनें माँ का मगलसूत्र देखा। मैं सिटपिटा गया। रूपये जेब में ही रह गये और मै काका का कुषल समाचार पूछ कर चुपचाप चला आया। घर आ कर माँ से कहा:'' गया था तुम्हारा मंगलसूत्र लेने। पर उसे गुलाब काकी के गले में देख कर कुछ कह न सका।' ' माँ हंस कर बोली:'' उनका सुहाग अखंड रहे बेटा। मुझे अब उसकी क्या जरूरत है ?''

आज भी जब कभी साइकिल को हाथ लगाता हूॅ तो माँ का सौभ्य चेहरा आंखों के सामने झलक जाता है। और उसकी याद हृदय को स्पर्ष कर जाती है। उसके बाद साइकिल तो अनेक बदल गयी ; पर माँ का वह चेहरा नही बदला।

11

अपाहिज अंतनिश्ठा

बहुत वर्श पहले की बात है। आष्विन महीना था, नवरात्रि के दिन। अश्टमी के रोज सुबह मैं घूमने निकला था। वर्शा के भीगे हुए दिनों के बाद षरद की भोर बडी सुहावनी लग रही थी। वातावरण में ताजगी थी। चैडी सड़क के दोनों ओर के वृक्ष मेरे परिचित थे। उन में भी गोल-चक्कर के पास के एक नीम के साथ तो मेरा विषिश्ट संबंध था। मेरा यह अनुभव रहा कि संतों की तरह वृक्षों का समागम भी गहन मानसिक षांति प्रदान करने वाला होता है।

इस अनुभव में आनंद और रोमांच का संचार करने वाले थे जीवन भगत। भगत प्रज्ञाचक्षु थे। मेरे परिचित नीम के नीचे उनका आसन था। किसी के भी पांवों की आहट सुनाई देती ही 'भगवान तुम्हारा भला करे' यह एक ही वाक्य उनके मुख से निकलता। बहुत से राही सुना-अनसुना कर के चले जाते। कोई एक नज़र उस ओर देख कर आगे बढ़ जाता। कोई सहानुभूति की दृश्टि डाल कर चल देता, तो किसी विरल अंतःकरण में समभाव उत्पन्न

होने पर भगत की फैली हुई अंजलि में धेला-पैसा पड़ता। रोज़ के आने जाने वाले कई लोगों को भगत उनकी आवाज से पहचान लेते थे। कुछ लोगों के पांवों की आहट भी उनकी पहचानी हुई थी। उनका वे दूर से ही स्वागत करते।

मेरी नज़र में जीवन भगत सिर्फ अंधे भिक्षुक ही नहीं थे। किसी छोटी कहानी का उपादान बन सकने वाले करूणाप्रेरक पात्र भी नहीं थे। मुझे वह जीवन-रहस्य का पार पाने की कोषिष कररने वाले जिज्ञासु जीवनयात्री ही मालूम देते। इसके लिए मेरे पास कोई प्रमाण नहीं था। यह सिर्फ मेरी भावना थी। पर अंतःकरण की स्वयं-स्फूर्त भावना सर्वदा प्रमाण की अपेक्षा नहीं रखती।

आज सुबह भी उन्होंने मेरी आहट पहचान ली। समस्त मुखमंडल को निव्र्याज स्मित से संस्कारित कर के भगत ने मेरा स्वागत किया। मैं भी पेड़ के तने को टेक कर उनके सामने खडा़ रहा। आज मैं और दिनों से कुछ जल्दी ही घूमने निकल आया था। नीम के नीचे भगत के मिलने की अपेक्षा नहीं थी क्योंकि वे असकर नौ बजे के आसपास आते थे। किसी अनजाने झरने की तरह वे न जाने कहां से आते थे और न मालूम कहां चले जाते थे। अतः कुछ आष्यर्य से मैंने पूछा, ''क्यों भगत, आज कुछ जल्दी?''

' 'हाँ बापू, आज नवरात्रि की अश्टमी है। पवागढ़ जाने वाले यात्रासंघ इसी रास्ते से निकलेंगें। इसलिए जल्दी आ गया हूॅ।' ' भगत के चेहरे पर स्मित छा गया।

' 'भगत, आप मुझसे बापू न कहा करें। आपकी उम्र और ज्ञान को देखते हुए तो मुझे आप से बापू कहना चाहिये,'' मैंने नर्मता से कहा।

' 'ज्ञान और समझदारी से क्या होता है? और जीवन जीने की जानकारी न हो, तो उम्र भी किस काम की बापू?'' भगत की आवाज़ में अनुभवजन्य वेदना की झंकार थी।
' 'फिर भी, भगत, आप मुझे भाई ही कहा करें।' ' मैंने बिनती की।

' 'तुम्हें उस से खुषी होती हो, तो भाई कहूंगा।' ' अत्यंत स्वाभाविकता से भगत में मेरी बात मान ली। मुझे इस से आनंद हुआ। इस आनंद से अंतर के द्वार खुल गये। अतः मैंने कुछ आत्मीयता से पूछा, ''भगत, घर पर रोटी-पानी कौन बनाता है? घरवाली है?''

इस सवाल ने भगत के मुख पर का स्मित पोंछ डाला। मुझे इस से रंज भी हुआ और संकोच भी। मानों मेरे चेहरे के भावों को पढ़ लिया हो, इस तरह भगत बोले, ''भैया, पंद्रह बरस हुए, वह तो मुझे छोड़कर भगवान के दरबार में चली गयी। जिंदा थी तब तक हाथ पकड़ कर मुझे भी मज़दूरी करने ले जाती थी। दोनों साथ काम कर के पेट भर लेते थे। पर उसके जाने के बाद सब गड़बडा़ गया। बेसहारा अंधे को कोई मजूरी के लिए भी नहीं रखता। इसलिए भगवान के नाम पर भरोसा रख कर पंद्रह वर्श से इसी नीम के नीचे बैठता हूं। कोई राज़ीखुषी से कुछ दे सकता है तो उन्हीं के नाम पर ले लेता हँ्ू। दसेक साल से तो तुम भी देख रहे हो। भाई, जाने वाली तो सती थी। उस की याद कर के दिन पूरे कर रहा हँॅ्ू।' '

इतना कहते-कहते भगत की आंखों से आंसू टपकने लगे। उन्होंने उन्हें पोंछा भी नहीं। उस अकिंचन सदाचारी का मुंह आंसुओं से भीग कर षील के प्रकाष से दमकने लगा। हम दोनों ही मौन रहे। इतने में अंबा माता के संघ की झांझ-नगाडों् की आवाज़ ने हमारा ध्यान खीचा।

' 'भाई, संघ पास आ रहा है।' ' भगत ने अब आंसू पोंछ डाले।

संघ का जुलूस गुज़रने लगा। सब से आगे ढोली था। षहनाई उसका साथ दे रही थी। उनके पीछे माता का रथ था। मूर्ति के गले में फूलों का हार था और हाथों में फूलों के गजरे। ललाट पर कुंकुम। कुछ लोग ज़जीरें पकड़ कर रथ को खींच रहे थे। और, रथ के पीछे था भक्तों का समुदाय। सब लोग उच्चरव से माताजी के भजन-स्तवन गा रहे थे। नगाडे का ताल रहस्यमयता का वातावरण उत्पन्न कर रहा था। स्त्रियां माताजी के जवारे हाथों में लिए नवरात्रि के गीत गाती हुई जा रही थी।

ठीक हमारे सामने आते ही रथ चलाने वाले रथी के षरीर में देवी का संचार हुआ। वह हंुकार भरता हुआ सिर धुनने लगा। उसके लंबे बाल उलझ कर चारों ओर बिखर रहे थे। आंखें लाल हो रही थी। हाथ की जंज़ीर से वह अपनी ही पीठ पर कोडे लगाने लगा। ढोल की आवाज़ बढी। षहनाई के सुर अधिक तीव्र हुए। डमरू डमडमा उठे। रथी और भी जोर से पीठ पर संाकल के प्रहार करने लगा। इतने में 'जय हो माता भवनी की! छया, अंबामाता, दया!' कहती हुई कुछ स्त्रियां आगे आयी। माता के रथ के सामने आंचल पसार कर क्षमा के लिए गिड़गिड़ाने लगी। रथी ने प्रहार करना बंद किया। स्त्रियां आगे बढ़ गयी।' '
इतने में भगत ने कहा, ''भाई, मुझे रथ के पास ले चलो।' '

मैं उन्हें हाथ पकड़ कर रथ के पास ले गया। भगन ने साश्टांग प्रणिपात किया। रथ के मार्ग की रज सिर पर चढा़ई। फिर जेब में से सवा रूपाया निकाल कर रथी को दिया और कहा, ''भैया, कल दुर्गानवमी के दिन मेरी मणि के नाम से माताजी को प्रसाद चढा़ देना। तुम्हारा पुण्य होगा भैया। मेरा इतना काम याद से कर देना।' ' मुझ से बोले, ''चलो भाई।' ' मैं उन्हें हाथ पकड कर नीम तले ले आया। पावगढ़ का संघ आगे बढ़ गया। मैं अवाक् हो गया।

भगत ने कहा, ''भाई, हर साल नवरात्रि की अश्टमी को मैं उस सती के नाम से सवा रूपये का प्रसाद संघ के साथ पावागढ़ भेज देता हूं। खुद तो जा नहीं सकता। भैया, वह तो सती थी। सो चली गयी।' ' भगत के मुख पर स्मृति की रेखाएं उभर आयी। उन में से स्मित फूटा औश्र उनका पूरा मुखमंडल आनंद से प्रफुल्लित हो उठा।

उन्हें उस सुख में छोड़ कर मैं वापस लौटा। पर हृदय पर मानों कोई कोडे बरसा रहा था। मैं अपने आपको अंतनिश्ठा का परम उपासक समझता था। परंतु आज मालूम हुआ कि वह निश्ठा अपंग थी। अपाहिज थी। आज भगत को देखत ही मै सोचने लगा था कि आज वह इसलिए जल्दी आये है कि पावागढ़ जाने वाले संघ के यात्रियों से रोज की अपेक्षा दो-चार पैसे अधिक मिल जायेंगे। परंतु उनके जल्दी जाने का कारण तो था प्रिय पत्नी की स्मृति में संघ के द्वारा माताजी को सवा रूपये का प्रसाद भेजने की अंतरेच्छा। मैंने अपनी आंखों से देखा और हृदय से अनुभव किया कि उसके फलीभूत होने पर भगत की स्नेहभावना किस कदर धन्य हो उठी थी। मैं अपने हीन विचार के कारण लज्जित हो उठा।

विचार आया कि मनुश्य को अपनी सन्निश्ठा का भी कैसा भव्य अहंकार हो सकता है! और उसके प्रवाह में बह कर वह दूसरे के हेतुओं को किस हद तक गलत समझ सकता है।

12
अहंकारी स्वभाव
(1) अखाडे की याद
मैं तब बारह-तेरह वर्श का था। पुराणी बंधुओं ने षुरू की गई व्यायाम की प्रवृत्ति तब प्रचलित होकर लोकप्रिय हो चुकी थी। बडा़ेदा, भडौच, नड़ियाद और अहमदाबाद के मुख्य अखाडे उस समय केवल व्यायाम के केन्द्र ही नहीं बल्कि जीवन विकास के प्रयोगमंदिर माने जाने लगे थे। स्वर्गीय महाराज सयाजीवराव के बडौ़दा में उस समय व्यायाम के और भी कई केन्द्र थे। उन में से मणिकराव जी की जुम्मादादा व्यायामषाला और नारायण

गुरू की तालीम अब तक चल रही है। लेकिन उस समय उनकी रौनक कुछ अलग ही थी। उनके उपरान्त दुर्गा पहलवान और वज्रमुश्टियों के अखाडे भी मषहूर थे। परंतु यह सारे स्थान केवल षरीर कमाने के केन्द्र माने जाते थे जब कि पुराण्यिों के अखाडे में षरीर-निर्माण के उपरान्त मानसिक विकास, चरित्रषुद्धि और आत्मा की संस्कारिता के पोशण की ओर भी पर्याप्त ध्यान दिया जाता था। इसीलिए, आज इतने वर्शों बाद भी जब उस अखाडे की याद करता हूँ तो ऐसा लगता है कि अखाडे की मिट्टी में आकार पाने वाले चरित्र ने ही समस्त जीवन की बुनियाद बनायी है। मातृभूमि या मानवता की सेवा करने का जब-जब मौका मिला है तब इसी चरित्रषीलता ने अपने ओज के बल पर उन प्रसंगों को सफल बनाये है। और जब हीनता या दुर्बलता के कारण मन उलझन में पडा़ है, प्राण थरथराये हैं या अंतनिश्ठा विचलित हुई है, तब इसी मिट्टी द्वारा निर्मित षील के सामथ्र्य ने ही अधोगति के मार्ग को रोका है, धैर्य का मूल्य स्थापित किया है और विनम्रता का पोशण किया है। इस षील के रसायन के बल पर ही अंतरात्मा विशण्ण होने से बची है और अभियान मर्यादा छोड़ कर इतराया नहीं है।

परंतु अहंकार ने हमेषा ही अछूता छोड़ दिया हो, सो बात नहीं। स्मृति की गठरिया खोल कर बैठता हूँ तब संस्मरण की एक रेषमी धज्जी हाथ में अपने पर मन प्रसन्न हो उठता है। उस रोज बुधवार था। डंड, बैठक, मुगदर, लाठी इत्यादि व्यायाम पूरे कर के मैं कुष्ती के लिए अखाडे में उतरा। पुराणी बंधुओं में से सब से बडे अंबु- भाई खुद कुष्ती करवात थे। रमणलाल नामक एक लड़का भी कुष्ती के लिए बैठा था। मुझे इस लड़के के प्रति कुछ दुर्भाव था। इसके अलावा उसके पसीने से बदबू आती थी, अतः उसके साथ कुष्ती लड़ना मैं प्रायः टाय जाता था। मेरा यह भाव चतुर अंबुभाई के छिपा नहीं रहा था। अतः जिस रोज़ वे खुद कुष्ती करवाने वाहले हों, मैं जान बूझ कर अन्य व्यायाम में देर लगाता ताकि रमणलाल की बारी पूरी हो जाय। या फिर उस दिन मैं कुष्ती लड़ना ही टाल जाता। परंतु उस रोज़ कुछ ऐसा योग बैंठा कि मैं और रमणलाल अन्य व्यायाम पूरे करके एक साथ कुष्ती के लिए आये। मेरा हृदय धड़कने लगा। म नही मन हनुमानजी से प्रार्थना करने लगा कि इस लड़के के साथ कुष्ती न लड़नी पडे। लेकिन अंबुभाई ने जान-बूझ कर मुझे उसी के साथ अखाडे उतारा। मैं बेहद चिढचिडा़या। अभिमान आहत हुआ। अतः पूरी ताकत एकत्रित कर के रमणलाल को चार-पांच बार पछाड़ दिया। अंतिम दो बार तो इतने जोर से पटका कि फिर कभी मुझ से कुष्ती लड़ने की जुरअत ही न करे। अंबुभाई की पैनी दृश्टि मेरे इस खुनसीपन को भाँप गयी।

थोडी़ देर में कुष्ती पूरी हुई और बुधवारी का आरंभ हुआ। यह व्यायामक का एक विषिश्ट प्रकार थ जो सिर्फ बुधवार को होता था। एक बडा़ और बलिश्ठ लड़का अखाडे में घुटनों के बल झुक जाता और उसकी कमर पकड़ कर दूसरा लड़का उसकी पीठ और गरदन पर जोर से प्रहार करता रहता। दूसरे लड़के की कमर पकड़ कर तीसरा लड़का प्रहार करता और इस तरह तीस-चाली तक की कतार जुड़ जाती थी। मार सहन न हो सके, तो अगला लड़का जोर लगा कर माने वाले की पकड़ में से छूट सकता था। लेकिन हय अंबुभाई की आज्ञा से ही हो सकता था! डस रोज़ अंबुभाई ने मेरे आगे एक अन्यंत बलवान लड़के का और पीछे रमणलाल का क्रम लगाया। अगला लड़का चाहता तो क्षणार्ध में मेरी पकड़ से छूट सकता था। पर अंबुभाई की आज्ञा नहीं हुई। पूरी ताकत से किये गये मेरे प्रहारों का उस पर कोई प्रभाव ही नही पड़ रहा था। इधर रमणलाल मेरा भृरकुस निकाले दे रहा था मानो कुष्ती की हार का बैर निकाल रहा हो। मेरी इतनी पिटाई हुई कि आंखों में आंसू आने की तैयारी हो गयी। मेरी भीगी आंखों को एक क्षण के लिए अपनी दृश्टि से बेध कर अंबुभाई ने अगले लड़के को छूट नाने की आज्ञा दे दी। उसके छूटते ही मैं ताकत लगा कर रमणलाल के बंध से मुक्त हो गया। लेकिन तब तक गरदन लाल हो चुकी थी और पीठ की तो खासी मरम्मत हो चुकी थी।

बस, अहंकार ने पूरी ताकत से बगावत की घोशणा कर दी। हृदय में खलबली मच गयी। परम आदणीय और पितातुल्य गुरू अंबुभाई के प्रति एक प्रकार की अश्रद्धा और विरक्ति उत्पन्न हुई। रमणलाल के प्रति नो भयानक विद्वेश जगा। लेकिन दूसरी ओर, आहत अभिमान की सीमा में उस पार से कोई पुकार रहा था कि दूसरे की

और दुर्भाव, ईश्या या अभिमान से देखना हीनता की निषानी है, उदारता का लक्षण नहीं। अंत में इसी भावना की विजय हुई। श्रद्धा पुनस्थापित हुई। हीनता को उलांघने का वह पहला प्रयत्न सजीव बन कर बाद के जीवन में आने वाली अल्पता के सामने अनेक बार ढाल बन कर खडा़ रहा।

2) भजन-मंडली में

एक बार मुहल्ले के रणछोड़ भाई के यहां भजन था। रणछोड़ काका हर गुरूपूर्णिमा को भजन करवाते थे। इस उत्सव को वे बडी़ धूम-धाम से मनाते। निरांत गुरूद्‌वारे के महंत मगनदास जी महाराज उनके गुरू थे। गुरूपूर्णिमा के भजन में वे भी पधारते। समारंभ के अध्यक्ष के नाते गद्दी पर बिराजते। उनकी उपस्थिति से समारहो की षोभा और गौरव में वृद्धि होती। मगनदास महाराज पिताजी के गुरूबंधु थे। अतः मेरे प्रति उनके मन में षुरू से ही सदभावना और ममता थी। पिताजी जीवित थे तब एकादषी और पूर्णिमा के दिन उनके मठ में होने वाले भजन में मैं मृदंग बजाया करता था। पिजाजी की मृत्यु के बाद कुछ तो अंग्ररेजी षिक्षा के प्रभव से और कुछ अपने समाज-सुधारक विचारों के कारण मैं अपने आपको सामान्य जनों में भिन्न बडा़ आदमी समझने लगा था। सभाओं में व्याख्यान देने के मौके भी आते रहते थे। बडप्पन की भावना इन से और भी बढी़। षीघ्र ही मैं अपने आपको छोटा-मोटा नेता मानने लगा और अहंकार ने अपनी लीला दिखाना षुरू कर दिया। इसका पहला प्रभाव यह पडा़ कि पांचेक साल से मैंने रणछोड़काका के भजन में जाना बंद कर दिया था। भजन में षरीक होने से मेरी प्रतिश्ठा को धक्का जो लगता था। बहुत समय से मैं मगनदास जी मजाराज से मिला भी नहीं था। गुरूद्‌वारे जाने की ग्राम्यता आधुनिकता की ओर झुकने वाले मेरे मन को पसंद नहीं थी। मेरे जीवन के इस परिवर्तन से मुझ से भी ज्यादा माँ परिचित थी।

प्रस्तुत गुरूपूर्णिमा को भजन का आरंभ हो चुका था। माँ ने अत्यंत प्रेम से मुझ से वहां जाने का आग्रह किया। लेकिन उसकी उपेक्षा कर के मैं कोई उपन्यास पढ़ने में मषगूल हो गया। करीब साढे दस बजे मगनदास जी ने खुद रणछोड़काका को भेज कर मुझे बुलवाया। माँ ने अन्यंत गद्‌गद कंठ से फिर इसरार किया जिसकी अवहेलना करना संभव नहीं था। अतः मैं गया। पहले मैं जब भी भजन में या मंदिर में जाता तब मगनदास जी महाराज का चरण-स्पर्ष करता था। आज सिर्फ नमस्कार कर के एक ओर बैठ गया। महाराज ने कुषल-समाचार पूछा। फिर भन का प्रारंभ हुआ। झांझ की झनकार , करताल की खकार और तालियो के ताल से वातावरण षीघ्र ही लयबद्ध हो गया। संगीत की राई भर की जानकारी न होने वाले लोग भी तालियां बजा कर लाल देने लगे। मैं चुपचाप सुनता रहा। समां ऐसा बंधा कि ताली बजा कर ताल में सहभगी होने की इच्छा कई बार हुई, पर मन में बैठे हुए अभिमानी सुधारक ने उसकी पूर्ति नहीं होने दी। वह भन पूरा होते ही महाराज ने मुझ से एक भजन गाने का अनुरोध किया। मैंने आदरपूर्वक इनकार कर दिया। फिर उन्होंने मुझ से ढोलक बाने को कहा। यह प्रस्ताव तो और भी अपमानजनक था। मैंने गंभीरतापूर्वक फिर अस्वीकार कर दिया। महाराज हंस पडे। दूसरा भजन षुरू होने से पहले उन्होंने एक दृश्टांत दिया जिसका लक्ष्य स्पश्ट रूप से मैं था। दृश्टांत मुझे याद नहीं पर इतना याद है कि अन्योक्ति का तीर मेरे हृदय को बेध कर आरपार निकल गया। अभिमान सिर्फ आहत ही नहीं हुआ, चारो कोने चित्त हो गया। एक क्षण के लिए तो उठ कर चल देने की इच्छा हुई। परन्तु मगनदास महाराज ने वत्सल स्वर में कहा, ‘‘बेटा, ढोलक हाथ में लो। यह मत भूलों कि तम भक्त-षिरोमणि गोविंदसिंह के लड़के हो।’ ’ मैंने ढोलक संभाल ली। किसी ने भजन का आरंभ किया। बोल थे, ‘‘मुझ को क्या तू ढंूढे बंदे, मैं तो तेरे पास में।’ ’ भजन की गति बढी़, करताल की खनक एकाग्र हुई औश्र ढोलक के सुबद्ध ताल की लय बंध गयी। भजन पूरा हुआ। आरती हुई, प्रसाद बंटा। जाग्रत अहंकार भन के समपर्ण -भाव में कभी का तिरोहित हो चुका था। आते समय मैं ठंूठ की तरह बैठ गया था। पर जाते समय मैंने मगनदास जी का चरणस्पर्ष किया।

(3) आहत अभिमान

अंबुभाई पुराणी के प्रति स्नेह और श्रद्धा बचपन के जितने ही पुराने हैं। वे जब सन 1922-23 के आसपास पांडीचेरी जा कर योगी अरविंद के आश्रम में रहने लगे तब अखाडे के हम जैसे पुराने षिक्षार्थियों के मन में

आष्चर्य और कुतूहल की भावना उत्पन्न हुई कि प्रवृत्ति-मार्ग का यह कर्मठ कर्मयोगी निवृत्ति को कैसा अपना बैठा। इस कुतूहल की परिणति सहृदय जिज्ञासा में हुई तब तक श्री अरविंद और उनकी योग-साधना के प्रति मेरी अभिमुखता स्पश्ट हो चकी थी। पांडीचेरी जाने वालों को पलायनवादी कह कर उनकी टीका करने वाला मैं खुद पांडीचेरी जा का अरविंद-आश्रम में रहने लगा था।

साधना के क्षेत्र में मुझे अभी कुछ भी अनुभव नहीं हुआ था और योग की तो प्ारंभिक जानकारी भी नहीं थी। परंतु उत्कट अभीप्सा का दीपक जल चुका था और निश्ठा होती तो धीरे-धीरे सब समझ में आ जायगा ऐसी श्रद्धा दृढ हो चुकी थी। अरविंद-आश्रम के वे आरंभिक दिन थे। साधकों की संख्या अत्यंत सीमित थी। श्री माताजी का सत्संग सुलभ था। आश्रम की भोजन-व्यवस्था आंधिक रूप से मेरे जिम्में होने के कारण उनसे मिलने के प्रसंग बारंबार आते रहते थे। सप्ताह में एक बार उनके साथ्ज्ञ ध्यान करने का समय भी निष्चित था बाहय संपर्क तो आरंभ से ही प्याप्त था, धीरे-धीरे आंतरिक निकटता भी स्थापित होती गयी।

उन दिनों श्री अरविंद और श्रीमाताजी का सब काम साधक ही करते थे। उनके कमरों की सफाई, कपडे धोनना, इस्तिरी करना, भोजन बनाना आदि सारे काम साकधों ने स्वेच्छ से आपस में बांट लिये थे। सिर्फ एक काम ऐसा था जो आश्रम का सदस्य न होने वाला बाहरी आदमी करता था। वह था उनके कमोड की सफाई। रोज मेहतर आ कर कमोड साफ कर जाता था। मुझे रसोई के काम को लेकर प्रायः रोज ही श्रीमताजी से मिलना पड़ता था। सुबह उन से मिलने जाने का समय और भंगे के आने का समय लगभग एक ही था। कई बार हमारा सीढ़ियों पर आमना-सामना हो जाता था।

कुछ दिनों बाद मेरे मन में एक विचार सूझा। सोचा कि श्री अरविंद का सब काम आश्रमवासी ही करते है। सिर्फ यही एक काम है जो बाहर का आदमी करता है। क्या मैं यह नहीं कर सकता? मैंने जल्दबाजी नहीं की। मन में इस विचार के उत्पन्न होने के बाद मैंने उसे स्थिर होने दिया। जल्दबाजी से कोई भी निर्णय करने का मेरा स्वभाव ही नहीं है। अंत में निष्चय किया कि भंगी का काम मुझे सौंप देने की श्री अरविंद से प्रार्थना की जाय। इसी अनुसार पत्र लिख कर मैंने श्रीमाताजी के द्वारा उनके पास भेज दिया। मन में विष्वास था कि यह काम अवष्यक मिल जायगा और इस बहाने श्री अरविंद के सान्निध्य में मैं कुछ अधिक रह सकूंगा।

तीन-चार दिन बाद श्रीमाताजी ने श्रीअरविंद का उत्तर ला दिया। उन्होंने भंगी का काम मेरे जिम्में करने से स्पश्ट इनकार कर दिया था। कारण बातते हुए असंदिग्ध रूप में कहा था कि मुझे वह काम सौंपा जाय तो मैं्रं अपने आपको अन्य साधकों से कुछ श्रेश्ठ और साधना के मार्ग में आगे बढा़ हुआ समझने लगूंगा। मेरा सूक्ष्म अहंकार पोशित होगा और भ्रम में पड़ कर मेरे पथभ्रश्ट हो जाने की संभावना रहेगी।

श्रीअरविंद के इस उत्तर ने मेरे अभिमान पर कुठराघात किया। आहत अहंकार ने बच्च्छू के डंक की तहर मुझे तिलमिला दिया। इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप् मेरे मन में योग और साधना की पूरी प्रक्रिया के विरूद्ध विद्रोह जगा औश्र आश्रम छोड़कर चले जाने की इच्छा हुई। कुछ दिनां तक ध्यान में भी चित् नहीं लगा। अहंकार की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है। अपने मार्ग में आने वाली हर रूकावट को वह भले-बुरे का विचार किये बिना मटियामेट कर देना चाहता है।

परंतु धीरे-धीरे इस आघात का प्रभाव कम होता गया। अंतर्दर्षन ज्यों-ज्यों व्यापक होता गया त्यां-त्यों श्री अरविंद की आज्ञा की सार्थकता समझ में आने लगी। अहंकार भी कैसा विलक्षण तत्व है। भक्ति और सेवा का कैसा छमावेष वह धारण कर सकता है! अंतरात्मा जाग्रत न हो तो अहम् कैसा अनाचार फैला सकता है यह बात स्पश्ट हुई। और यह भी स्पश्ट हो गया कि अंतरात्मा की जागृति से अहम् को काबू में रखने का नाम ही तो साधना है।

जीवन का दंभ

1. सत्यनाराण्य की आरती

तब मेरी उम्र आठ-दस साल की होगी। उस समय जब कभी मुहल्ले में या आसपास सत्यनारायण की कथा होती तो मेरी उपस्थिति अनिवार्य मानी जाती थी। इसका एक कारण तो यह था कि मैं षंख बजाना बहुत अच्छा जानता था। प्रत्येक अध्याय के अंत में और आरती के समय होने वाली षंखध्वनि पूरे प्रसंग की षोभा बन जाती थी। इस सेवा के लिए मुझे एक भाग मेरा औश्र एक भाग षंख का, यों दुगुना प्रासद मिलता। परन्तु इस कारण के उपरान्त एक दूसर कारण भी था।

कथा के बाद आरती की थाली लेकर भक्त समुदाय में घुमाने का काम भी प्रायः मुझे ही सौंपा जाता था। लोग कपूर की लौ पर नीराजन कर के आरती लेते और एक-एक पैसा थाली में डालते। जिसके घर पर कथा हुई हो वह स्वयं और उसके निकट के सगे-संबंधी दो-दो पैसे या क्वचित् इकन्नी भी डालते। इकन्नी डालने वाले की ओर सब का ध्यान आकर्शित हो ऐसा वह जमाना था। वास्तव में उस समय के एक आने की कीमत आज के रूपये से कही अधिक थी। आरती की थाली घूमती-घूमती बाहर बरामदों पर बैठे हुए लोगों तक भी पहंुचती और अंत में उसे कथाकार बाह्मण के हवाले कर दिया जाता।

एक बार मुहल्ले के तत्था धोबी के यहां कथा थी। कथा पूरी हाने पर मैं नियमानुसार आरती की थाली लेकर घुमाने निकला। कमरे में बैठे हुए श्रोताओं ने घूम कर बारह बरामदे की आरे गया। सामने से काषी काकाी की आवाज़ आयी, बेटा, आरती यहां भी लाना। वे कुछ दूर के बरामदे पर बैठी थी। मैं थाली वहंा ले गया। इतने में पडो़स के मकान में रहने वाले चिम्मन महाराज का लड़का मंगू मेरे पास आया और थाली में पडी़ हुई इकन्नी चुपचाप अपनी जेब में डाल देने की या उठा कर उसे दे देने की अनमोल राय मेरे कान में देने लगा। मैंने उसकी बात नहीं मानी और थाली सुरक्षित पुजारी के पास पहुंचा दी। दूसरे दिन खेलते समय उसने बिना कारण मुझ से झगडा़ मोल लेकर अपना रोश प्रकट किया। इस झगडे के दरमियान मुझे मालूम हुआ कि कई बार मंगू या उसके मित्रों में से कोई आरती की थाली भक्तगणों में घुमाने के बहाने बाहर ले जाते थे और चुपचाप कुछ पैसं उडा़ लेते थे। कभी -कभी इकन्नी डालने का दिखावा कर के तीन पैसे खुले आम उठा लेते थे। एक बार यह चोरी पकडी़ गयी थी और तब से थाली घुमाने का काम मेरे जिम्में हुआ था। इस भेद की जानकारी तो मुझे दो-तीन वर्श बाद हुई। लेकिन उस प्रसंग ने जीवन के आरंभ काल में ही दंभ का नग्न स्वरूप प्रकट कर के मेरे बालमानस पर विशाद की गहरी छाया डाल दी।

2. ठाकुरजी ने दीपक का घी

यह बात मैं कुछ समझदार हो चुका था तब की है। पिताजी के एक परिचित थ। सैठ नौतमषाह। जाति से वैष्य थे और अपने आपको परम वैशणव मानते थे। सिर्फ मानते ही नहीं, दूसरों से मनवाते भी थे। करोबार था ब्याजबट्टे का। उनका व्यवहार अधिकांष में भंगी, चमार, पासी, बाधरी इत्यादि नीची जाति के लोगों के ही साथ था। ब्याज का दर खाल खींच लेने वाला रखते थे। एक रूपये का एक महीने का ब्याज एक आना। पहले महीनें का ब्याज रकम देते समय पेषगी काट लेते थे। रूपया वसूल करने में अकसर कठिनाई पड़ती थी। पर इसका हल उन्होंने एक छावार मुसलमान को नोकर रख कर कर लिया था। यह मुसलमान उनकी बग्घी भी हांकता और आवष्यकता पड़ने पर भंगीवाडे या बाघरीवाडे में जाकर सेठ के कर्जदार को कोडे फटकार कर रूपया भ्ज्ञी वसूल कर लाता। सेठजी के घर पर सेवा -पूजा का आयोजन दर्षनीय होता था। उनकी स्त्री वल्लभ-संप्रदाय की कंठी बांध कर मरजाद ले चुकी थी। उनके कोई संतान नहीं थी। अतः सेठजी अपने बडे भाई के लड़के को अपने पास रख कर उसका लालन-पालन करते थे। उसे गोद लेने की भी बात चली थी लेकिन दत्तक विधान हुआ नहीं था। दरअसल सेठजी ने अब तक संतान की आषा छोडभ्ृ नहीं थी।

एक रोज़ मैं पिताजी के साथ उनके घर गया। कुछ ऐसा याद है कि कोर्ट-कचहरी के किसी मामले में उनकी राय लेती थी। हम बैठे थे कि एक बाघरी जैसा दिखाई देने वाला आदमी एक कनस्तर में कोई दस सेर जितना घी ले कर आया। घी में से नाक फाड़ देने वाली दुर्गंध आ रही थी।सेठजी ने घीरखवा लिया। कुछ ही देर में पूरा कमरा बदबू से भर गया। मैंने पूछा, ''नौतम काका, यह दुर्गंध वाला घी क्यों खरीद रहे हो?'' बिना किसी संकोच के, स्मित कर के उन्होंने उत्तर दिया, बेटा, ठाकुरजी की पूजा के लिए है यह घी। खाने का घी तो हम सीधे गांव से मंगवाते है। तेरी काका मरजारी वैश्णव। चैबीसों घंटे दीपक जलते रहते है। अच्छा घी जलाये तो दिवाला निकल जाय। घरबार बेचना पडे।' ' उत्तर सुन कर लगा कि वह बनिया सिर्फ दरिद्र और अज्ञानी लोगों को ही नहीं ठगता, बल्कि खुद भगवान भी इसके चुंगल से नहीं बचे। पाखंड के इस प्रदर्षन से मेरा अबूझ मन विशण्ण हो उठा।

3. भिखारी की प्रवचना

हम बडौदा रहते थे। पिताजी की मृत्यु को दसेक साल हुए होंगे। मैं पढ़-लिख कर नौकरी करने लगा था। गांधीजी के सत्याग्रह और असहयोग के दिन थे वे। खादी नहीं पहनने वाले कांग्रेस के विरोधी है ऐसी भावना बल पकड़ रही थी। धीरे-धीरे खादी पहनने वाले खादी न पहनने वालों के प्रति दुर्भाव, अभिमान और तिरस्कार की दृश्टि से देखने लगे। गांधीजी की अहिंसा ने बलि लेना षुरू कर दिया। उस समय तक मैं खादी पहनता था। पर खादी के साथ-साथ गांधीजी के जिन सिद्धातों को जीवन के तानेबाने में बुन लेने की आवष्यकता थी उनका मेरे जीवन में अभाव था। उस समय मेरी परिस्थितियां ही ऐसी थी कि उनके सारे सिद्धातों को जीवन में उतारना मेरे लिए संभव नहीं था। कुछ तो इस कारण से और कुछ खादीधारियों की तानाषाही से तंग आ कर मैंने खादी पहनने का दंभ छोड़ दिया था। फिर भी अनेक खादी-धारी मेरे मित्र थे। एक रोज एक नैश्ठिक खादीधारी सत्याग्रही मित्र मेरे यहां मेहमान बन कर ठहरे।

दूसरे दिन षाम को हम घूमने निकले। चलते-चलते हम घुड़ दौड के मैदान तक पहुंच गये। रास्ता निर्जन था। घूमने-फिरने वाले सैलानी या इधर-उधर के गांवों में जाने वाले ग्रामीणों के सिवा षायद ही कोई इस तरफ आता था। रास्ते में एक पेड़ के नीचे एक अंधा भिखारी हाथ पसारे बैठा रहता था। जब किसी के आने की आहट होती वह सिर्फ एक ही षब्द बोकर चुप हो जाता, 'हे राम' । कोई दयालु आदमी एकाध पैसा उसकी खुली अंजलि में डाल देता तब भी वह एक ही षब्द कहता, 'हे राम' । पहले 'हे राम' में याचना होती थी। दूसरे में आषीर्वाद। मेरी नज़रों में वह सिर्फ भिखारी ही नहीं था- एक असहाय मनुश्य भी था। इसी से उसके प्रति कुछ सद्भावना उत्पन्न हो गयी थी। जब भी मैं वहां से निकलता, उसके पास दो घडी खडा रहता कुछ बातचीत करता और कुछ दे कर चला आता। फिर तो वह मुझे पांवों की आहट से ही पचहानने लगा व दूर से ही स्वागत करता।

खादीधारी मित्र के साथ समाज की साधारण नैतिकता के विशय में बातें हो रही थी।वे बडी उग्रता से मुनश्यमात्र की बुनियादी अच्छाई का प्रतिपादन कर रहे थे। चलते-चलते हम उस वृक्ष तक पहुंचे तब स्वाभाविक तौर पर मेरे पांव रूक गये। आज वह भिखारी अंजलि पसारे नहीं बैठा था बल्कि सामने एक चिथडा फैला रखा थ जिस पर दो-तीन पैसे पडे थे। मेरी पदध्वनि सुनते ही वह बोला, 'हे राम' । परंतु आज के इस 'हे राम' में न किसी प्रकार की अपेक्षा थी न आषीर्वाद। थी सिर्फ एक प्रकार की उदासीनता- एक कहरी विशण्णता। इस अनपेक्षित स्वर ने मेरी जिज्ञासा जागृत की। मैंने पूछा, ''क्यों भगत, कैसे हो? आज यह कपडज्ज़ क्यों बिछा रखा है?'' मरे प्रष्न से उसकी व्यथित आत्मा अकुला उठी। बोला, ''भाई, कल इस रास्ते से एक साहब गुजरे। मुझे से कहने लगे कि उनके पास बंधा रूपया है। अगर रेजगारी हो, तो वे मुझे एक आना देना चाहते है। आजकल इकन्नी कौन देता है, भैया? सो मैंने पंद्रह आने गिन दिये। घर जा कर लड़की ने देखा, तो रूपया खोटा था। अब जमाने की नीयत यहां तक बिगड़ चुकी है। ऐसी दुनिया के सामने हाथ फैलाने को जी नहीं करता। इसलिए आज से कपडा बिछा दिया है। रामजी रखवाले है।' '

इस बात से मेरे मन पर ऐसा आघात हुआ मानो किसी ने हथौडा़ दे मारा हो। मैं कुछ बोल न सका। पर खादीधारीमित्र बोल उठे, ''भगत जी, यह दुनिया ऐसे ही चलेगी। राम और कृश्ण आये तब भी यह ऐसी ही थी। फिर बुद्ध और महावीर आये तब भी लोग ऐसे ही थे। अब गांधीजी आये है और चले भी जायेगें, पर दुनिया तो एसी ही रहेगी।' ' खादीधारी मित्र का यों गिरगिट की तरह रंग पलटना मुझे अखर गया। अभी कुछ देर परहले मनुश्य की बुनियादी नैतिकता की दुहाई देने वाले सदाचार के ठेकेदार उसके पतन को इतना स्वाभाविक कैसे मान बैठे। मैं फिर भी चुपचाप रहा। भिखारी ने कहा, ''हां साहब, अगर हम बिगड़ना ही चाहें, तो भगवान भी हमें कैसे सुधार सकता है?''

' 'लो भगत।' ' मैंने जेब में से कुछ पैसे निकाल कर उसे दिये। भगत ने हाथ फैला दिया। मैंने कहा, ''भगत, भिक्षा मांगनी है, तो हाथ पसारे ही रखने में सार है।' ' भगत ने उत्तर में सिर्फ 'हे राम' कहा। इस आवाज में कोरा आषीर्वाद नहीं था बल्कि एक नयी आषा और पुनप्रतिश्ठित होने वाली श्रद्धा की गंूज भी थी।

4. फ्रीमॅसन

उस रोज़ हमारे फ्रीमॅसन्स लाॅज की सभा थी। किसी नये सदस्य की दीक्षा देने का समारोह था। लाॅज का ध्येय वाक्य था। 'सत्य, सौंदर्य और सहयोग' । रात को दीक्षा समारंभ समाप्त होने के बाद सत्य, सौन्दर्य और सहयोग पर विद्वान वक्ताओं के व्याख्यान हुए। उसके बाद प्रीतिभोज।

सामान्यतः फ्रीमॅसन बनने वाला व्यक्ति समाज के उच्च और बुद्धिजीवि वर्ग से आता है। विषिश्ट प्रकार के उच्चस्तरीय नैतिक और अध्यात्मिक सिद्धांतों का स्वीकार करने के बाद ही कोई फ्रीमॅसन बन सकता है। अतः लाॅज के सदस्यों का मानसिक और नैतिक विकास साधारण जनों की अपेक्षा उच्च कोटि का हो यह स्थिति स्वाभाविक ही नहीं बल्कि अनिवार्य मानी जाय तो आष्चर्य की कोई बात नहीं। फिर भी, सभी फ्रीमॅसन व्यवहारिक दुनिया में या अपने वैयक्तिक जीवन में इन उच्च आदषांे का पलन करते हो ऐसा नहीं लगता। उस रात को भोज के बाद जो घटना हुई उसमें इसी बात को प्रमाणित किया।

लाॅज की प्रथा के अनुसार भोज पूरा होते ही मंत्री महाषय ने चंदा इकट्ठा करने के लिए दानपत्र घमया। पेटी बंद थी। सिर्फ ऊपर सिक्के डालने के लिए लंबा सा छिद्र बना हुआ था। प्रत्येक सदस्यने अपनी इच्छानुसार रूपया, या अधिक कुछ डाला। यह रूपया गरीबों की सहायता करने वाले किसी कोश में जमा होता था। बाद में मंत्री ने पेटी खोल कर रूपये गिन और घोशणा की, ''दस रूपये बारह आने जमा हुए है, जिसमें दो रूपये खोट है।' ' लोगों में एकाध क्षण के लिए कुछ उपहासात्मक खुसुरफुसुर हुई, पर षीघ्र ही तालियां बजी और सभा विसर्जित हो गयी।

पहले तो मुझे षंका हुई कि किसी ने गतली से खोटे सिक्के डाल दिये होंगें। लेकिन मंत्री से पूछने पर मालूम हुआ कि ऐसा तो अकसर ही होता रहता है। यह गलती या योगायोग की बात नहीं थी बल्कि जानबूझ कर, ज्ञानपूर्वक की हुई प्रवंचना थी। मेरा मन विचारों में डूब गया। समाज में चले वाली रोजमर्रा की साधारण धोकेधडी़ से यह बात कही अधिक भयानक थी। यह तो आत्मप्रवंचना थी। आत्मा का गला घोट देने वाली आत्म-प्रतारणा। और वह अपने आपको जनसाधारण से ऊँचा और अलग मानने वाले एक सुषिक्षित और बुद्धिवादी कहलाने वाल उच्चभ्रू लोागे द्वारा!

मन विशण्ण हो गया। पर उपाय क्या है? कौन सुनेगा? इस सापेक्षतावाद के जमाने में जहां बुद्धि की वेष्यावृत्ति एक सूक्ष्म और समर्थ षक्ति के रूप में विचर रही हो, वहां ऐसे पाप तो क्र्या, इन से अनेक गुने बडे महापातकों का समर्थन करने के लिए व्यवहार और स्वार्थ ही नहीं, न्याय और तर्क भी हाथ बांधे खडे रहेंगे।

5. मंत्री महोदय

देश के विभाजन की कीमत चुका कर हमें राजनीतिक स्वतंत्रता मिली। उसने पहली आहुति ली उस स्वातंत्र्य के सूत्राधार और अहिंसा के उपासक गांधीजी की। ऐसे इस विचित्र देष में अभी कुछ रोज पहले ही एक घटना हुई। समाचारपत्रों में बात छपी और फिर विस्गृति के गर्भ ने समा गयी। विंध्य प्रदेष के उद्योग और पूर्ति मंत्री ठाकुर षिवप्रसाद सिंह पचीस हजार रूपये की रिष्वत लेने के अपराध में मंत्रीपद से हटा दिये गये थे। वैसे यह कोई अभूतपूर्व या अनहोनी बात नहीं थी। बेईमानी और भ्रश्टाचार की पकडा़ई न देने वाली या प्रकट न होने वाली जो अनेक घटनाएं होती रहती है। उन में से ही यह एक पकडा़ई न देने वाली और प्रकट हो जाने वाली घटना थी।
लेकिन इस प्रसंग से मन में जो भावना जगी वह यह िकइस देष का पतन कोई दो-चार दिन में या झटपट नहीं हुआ। इसके रोग की जडे बहुत पुरानी और गहरी उतरी है। जैसे-जैसे बुद्धि का विकास होता गया वैसे-वैसे इस बौद्धिक महामारी का भी प्रसार होता गया है। दूसरों की प्रवंचना कर के पकडा़ई में न आना यह प्रषंसनीय गुण है ऐसा मान कर ही हम रूक नहीं गये। बल्कि कुछ और आगे गढ़ कर हमने यह सिद्धांत भी स्थापित किया कि जीवन के सब मूल्यों और महत्ताओं का सिरमौर है धन, और धन की षक्ति से सब कुछ खरीदा जा सकता है। इस मानवताषून्य मान्यता को विरोधाभाश कर के हम निकले है, महत्ता खरीदने के लिए। किसी व्यक्ति के अज्ञान को क्षमा किया जा सकता है। लेकिन अज्ञान का अभिमान भयानक चीज़ है। यह व्यक्ति को ही नहीं, उसके आसपास के समाज को भी भयंकर क्षति पहंुचाता है। सत्य की ऐसी विृति, अहिंसा की ऐसी प्रतारणा, और सेवा की ऐसी स्वार्थी जडो़ को नश्ट करने के लिए गांधीजी ने प्रयत्न किया, लेकिन उन्हें उखाड़ फेंकने से पहले ही वे चल दिये।

प्रष्न यह है कि आज हम उन जडो़ं को कहीं और भी गहरी तो नहीं उतार रहे? हम अधोगति को कहीं प्रगति या उत्क्रांति नो नहीं मान बैठे?

14
तुम्हरे कारन . . .
साल ठीठ से याद नहीं है। षायत 1928 या 29 हो। लेकिन तारीख थी 21 फरवरी। पांडभ्चेरी में श्रीमताजी के जन्मदिन का महोत्सव था। श्रीअरविंद आश्रम का वातावरण सुबह से ही षांत पर उत्साहमय था। सब काम नियमित रूप से ही रहा था। फिर भी, साधकों के प्रत्येक कार्य में आज कुछ विषेश उमंग थी, कुछ उपलब्धि थी, कुछ आनंद था।

ठीक नौ बजे दर्षन षुरू हुए। श्रीअरविंद के निवासस्थान के नीचे एक फलक पर दर्षकों की क्रमानुसार सूची लगी हुई थी। उसी क्रम से सब को एक के बाद एक दर्षन करने जाना था। उस जमाने में दर्षनार्थियों की संख्या आज की तरह चार अंकों में नहीं पहुंचती थी। अतः श्री अरविंद और श्रीमाताजी से मिलने का सब को पर्याप्त समय मिलता था। मेरा नाथ चवालीसवां या पैंतालीसवां था। हर साल की तरह मैं पुश्पहार इत्यादि लेकर समय से बहुत पहले आ कर सीढ़ियों के पास एक कोने में बैठ गया था। आलुकता भरी षांति और मौन को भेद कर तानपूरे की अस्पश्ट पर मधुर भंकार वातावरण में छा रही थी। समझ में न आने वाली पर अनुभव की जा सकने वाली सुरावलि कहीं से छाया की तरह बहती हुई आ रही थी। मैं दो-तीन साल से दर्षन के लिए आता था। पर यह अनुभव बिलकुल नया था। मालूम नहीं कौन गा रहा था। मेरा ध्यान योगी अरविंद और श्रीमाताजी की तेजस्वी और आत्मस्थ मुखमुद्रा में लीन हो रहा था। कभी वह उनके चरणों में झुक पड़ता तो कभी उनके गहन, गंभीर और करूणामय नेत्रों के आसपास चक्कर काटने लगता। आष्चर्य की बात यह थी कि संगीत के यह सुर ध्सन मंे बाधा रूप् बनने के बजाय उसे समाधिस्थ होने में सहायता पहुंचा रहे थे।

और फिर मुझे एक अनोखी अनुभूति हुई। ऐसा लगता मानो मैं हिमालय की तलहटी में किसी बौद्ध मठ की छत पर खडा़ हूँ। पौ फट रही है। प्रकाष के अस्पश्ट प्रकाष में देवी कांचनजंघा बर्फ का आंचल ओढे सो रही है। इतने में ऊशा का आगमन हुआ। हिमषिखरों के पीछे से एक अग्निगोलक ऊपर चढ़ता हुआ दिखाई दिया। एक किन्नर

सामने की पहाडी़ पर खडा़ अपनी वीणा पर प्रभातकालीन रागिनी अलाप रहा था। मानों कांचनजंघा को जगाने का प्रयत्न कर रहा है। ऊपर चढ़ते हुए सूर्यबिंब का पीलापन कम होता गया और तपे हुए सोने का सा सिंदूरी रंग क्रमषः उजला और तीव्र होता गया। अचानक उसने अपनी किरणबलि का विस्तार किया। सोती हुई कांचनजंघा से टकरा कर किरणें तरह-तरह के जीवनरंग धारण करने लगी। इस अनिबंध रंगावलि के दर्षन से मैं अवाक् हो उठा। क्या वाणी को मूक बना देना ही सौंदर्य की चरम उपलब्धि है? सूर्य किरणों के स्पर्ष से खिल उठने वाले कमल की तरह कांचनजंघा अंगडा़ई ले कर उठ बैठी। सूर्य की दीप्ति से समस्त गिरिमाला प्रकाषित हो उठी। ज्यों-ज्यों प्रकाष उग्र होता गया त्यों-त्यों बर्फ गलती गयी और कोहरे में छिपे हुए षिखर एक-एक कर के उजागर होते गये। प्रकाष की यह वर्णलीला निरखते-निरखते दोपहर ढल गयी और संध्या का आगमन हुआ।

प्रभात और मध्याह्न के प्रकाष के सांध्य प्रकाष बिलकुल भिन्न प्रकार का होता है। सुबह और दोपहर को तो तेज के उद्भवस्थान भगवान भास्कर दृश्टि के समक्ष विराजमान होते है। पर ढलते हुए सूरज के दर्षन नहीं होते। सिर्फ प्रकाष दिखाई देतरा रहता है। उदय के समय अंषुमाली जो रंगलीला दिखलाते है उस से बिलकुल भिन्न प्रकार की कला वह अस्ताचल को जाते हुए प्रकट करते है। उदयबेला के रंगों की ताजगी उन में नहीं होती। होता है अस्त का करूण विशाद। इस प्रकाष में आलेखित कांचनजंघा की उस आकृति ने मुझे आष्चर्यविभोर कर दिया। ऐसा लगा कि भगवान महादेव ध्यानस्थ बैठे है। बायें पाष्र्व में भगवती पार्वती विराजमान है। वह गायक किन्नर दौडा़ और अपनी वीणा उनके चरणों में रख कर उसने पार्वती-परमेष्वर को साश्टांग प्रणाम किया।

‘ ‘चलिये भाई, आपकी बारी आ गयी’ ’ कह कर एक साधक ने मुझो सावधान किया। समाधि टूटी।... तो यह नादबह्मा की सृश्टि थी! जल्दी से पुश्पहार संभाल कर मैं ऊपर गया। दर्षन हुए। कुछ क्षणों पहले समाधि में देखी हुई मूर्ति यही थी ऐसा आभाश हुआ। श्रीअरविंद के चरणों में सिर झुक गया। बंद आंखों के पट पर वही षिव-पार्वती का आकृति अंकित हो गयी। आंखें खोल कर देखा तो लगा कि उस आभास का ही यह प्रत्यक्ष अनुभव था।

वपस लौटते समय कुतूहल को न रोक सका। जानना चाहा कि समाधिस्थ कर देने वाले वे सुर किसके थे। झांक कर देखा। बाहर के बडे कमरे में गोद में तानपूरा रखे थी, दिलीपकुमार रॉय आंखे मंूद कर गा रहे थे।
तुम्हरे कारन सब जग छड़िया,
अब मोहे काहे तरसावो......।

15
स्थित और अश्रु
1928 का साल था। कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर हिवर्ट वयाख्यान देते जाते समय ीअरविंद से मिलने पांडीचेरी पधारे थे। मैंने तब तक कविन्द्र के दर्षन नहीं किये थे। उनकी कविता के संबंध में बहुत कुछ सुना था, पढा़ भी था। मानवता का पुरूशरूप् कितना सुदर्षन हो सकता है इसका अंदाज कवीन्द्र को प्रथम बार देख्ने पर ही हुआ।

कविता की कल्पनामूर्तियों और स्पप्न-प्रतिमाओं की कल्पना में तब तक नारीरूप में ही कर सका था। कवियों, कलाकारों, पंडितों और विचारकों की सृश्टि में कविता की अभिव्यक्ति नारीदेह में ही हुई है ऐसी मेरी श्रद्धाभरी मान्यता थी। लेकिन कविन्द्र के दर्षन कर के मुझे एक अदभुत सत्यक का साक्षात्कार हुआ। ऐसा लगा मानो सौन्दर्य की सजह सुकुमारता ने पुरूशदेह में अवतार ले कर अपने आपको अधिक अभिराम रूप में व्यक्त किया हो। कविता का माधुर्य, लावण्ड और चारूता ही जौसे मूर्त हो उठ हों। समूची आर्य संस्कृति मानो पुरूशदेह धारण कर के विष्व को मुग्ध करने आयी हो।

श्री अरविंद से मिलने कवीन्द्र ऊपर गये तब उनका षुभ्रधवल दाढीमूंछ की केषावबल में छिपे हुए प्रवाल जैसे उज्जवल होंठों पर स्मित आंखमिचैनी खेल रहा था। आंखों में बालसुलभ निर्दोशता स्फूर्ति के साथ अठखेलियां कर रही थी।

पर मिलने के बाद कविवर नीचे आये तब उनके नेत्र सुधीर और गंभीर थे। पुतलियों के पीछे की धवल-कोमल सेज पर गहन करूणा सो रही थी। दोनों होठ स्मित को लील कर अपराधी की तरह एक दूसरे को भींचे हुए थे। आंखों में रोऊं-रोऊं करने वाली कविता सुबक रही थी। वे बोल उठे, ''आज मैंने सिद्ध मानवता का साक्षात्कार किया। बरसों पहले मैंने श्रीअरविंद को काव्यांजलि से प्रणाम किया था। आज उस अंजलि को अधिक विनम्र बना कर साक्षात् प्रणान किया।' '

कविवर आश्रम से विदा ही गये।

उसके बाद सात साल बीत गये। सन 1928 में मैं षान्तिनिकेतन छोड रहा था। जाने से पहले गुरूदेव को प्रणाम करने गया। प्रफुल्ल प्रातःकाल था। ष्यामली के आंगन में अपनी प्रिय आरामकुसरी पर बैठे कवि स्वाध्याय कर रहे थे। मैं चरणरज ले कर सामने बैठ गया। कुछ देर बाद गुरूदेव बोले, ''जा रहे हो, पर षान्तिनिकेतन को भूल तो नहीं जाआगे?'' मैं मौन ही रहा। कवि के चेहरे पर किसी अकथनीय विशाद की छाया थी। मुझे सन 1928 का प्रसंग और कवीन्द्र की मुद्रा याद आ गये। कुछ संकोचपूर्वक पूछा,

' 'गुरूदेव, मेरी एक समस्या है।' '

' 'तो जाने से पहले उसका समाधान कर लो।' '

' 'सन 1928 में हिबर्ट व्याख्यान देने जाते समय आप श्रीअरविंद से मिलने पाॅडीचेरी पधारे थे।' '

यह सुनते ही गुरूदेव आरामकुसरी में कुछ तन कर बैठ गये।

' 'श्रीअरविंद से मिलने गये तब आप प्रफुल्ल थे, मुस्करा रहे थे। पर मिल कर लौटते समय आपकी आंखें आंसुओं से नम थी। यह रहस्य बरसों से मेरे मन में समस्या बन कर पडा़ हुआ था।' '

यह सुनते ही विशाद की छाया बिखर गयी। समस्त मुखमंडल किसी अकथ्य आनंद से प्लावित हो गया। उत्साहपूर्वक गुरूदेव बोले।

' 'वह मेरे जीवन का धन्य प्रसंग था। तुमने मेरे अंतःकरण की सब से मूल्यवान प्रतिति को स्पर्ष किया है। मैं जब श्रीअरविंद से मिलने ऊपर जा रहा था तब बरसों से बिछडे हुए अपने एक बंधु से मिलने के उत्साह में अंतःकरण हंस रहा था। आनंद समा नहीं रहा था। जाकर उन से लिपट जाने को मैं इतना उत्सुक हो रहा था कि उसका वर्णन नहीं कर सकता। लेकिन ऊपर जा कर देखने पर मेरा उत्साह षांत हो गया। आनंद मूक हो गया। सामने मेरे प्रिय बंधु के स्थान पर एक भव्य विभूति विराजमान थी। गले लगा लेने को बढे हुए हाथों ने अनायास ही प्रणाम किया। जो स्वाभाविक था, वही हुआ। वही कर्तव्य भी था! वपस लौटा तब अहंभाव तिरोहित हो चुका था। चेहरे पर इसी का विशाद छाया हुआ था, पर अंतर्मन में छिपा हुआ कवि तो हंसता ही रहा था।' '

गुरूदेव फिर धीरगंभार हो गये। उनकी षांति और मौन को रंचमात्र भी विचलित किये बिना उनकी चरणरज ले कर मैं विदा हो गया।

16

प्रेमचंद और प्रसाद

बनारस की स्मरणयात्रा करते समय वहां का एक प्रसंग याद आये बिना नहीं रहता। षांतिनिकेतन से लौटत समय भदंत आनंद कौसल्यायन से मिलने में काषी गया था। उनके साथ सारनाथ घूम कर प्रमचंदजी से मिलने गया। अक्टूबर महीना था। षांति निकेतन में मनाये गये वर्शामंगल के उत्सव की याद मन में जाता थी। संभव

हो तो षाम को गंगा में नाव पर घूने की इच्छा मैंने प्रेमचंदजी के सामने व्यक्त की। वे षिवरानीदेवी से कह कर तुरंत मेरे साथ चल दिये और मुझे ले पहंुचे श्री जयषंकर प्रसाद के घर। कामायनी के कवि के विशय में मेरे मन में अपार कुतूहल था। उनके राजसी स्वभाव के बारे में भी निराला, महादेवी वर्मा और षांतिप्रिय जी द्विवेदी से बहुत बातें हो चुकी थी। हम पहंुचे तब वे आंगन में नंगे बदन सिर्फ एक गमछा लपेटे पलथी मार कर जमे हुए थे। पान की दावत हो रही थी। प्रेमचंदजी ने मेरा परिचय कराकर मेरी इच्छा उन से कही। उन्होंने तुरंत एक सेवक को बुला कर गंगाकिनारे सब तैयारी करने की सूचना दी। कुछ देर बाद हम इक्के में बैठकर निकले। घाट पर नाव तैयार थी। सेवक भांग घोट रहा था। हमारे बैठते ही नाव चल दी। प्रेमचंदजी और प्रसादजीके वार्तालाप का विस्तार वैविध्यपूर्ण था। उसके मोड़ और अंत कभी षांत होते थे तो कभी आवेषपूर्ण। कभी सूर, तुलसी और कबीर की चर्चा चलती तो कभी बिहारी, मतिराम और पद्माकर की। कभी बात सुमित्रानंदन पंत और महादेवी वर्मा तक पहुंच जाती। नाव चली जा रही थी। भांग तैयार हुई। गंगाजल में छनी इस हरियाली बूटी का प्रसादजी ने 'षिवसंहिता' कह कर गौरव किया। पहले तो मुझे पीने में संकोच हुआ। पर दो-दो अंग्रेजों की इच्छा का अनादर करना संभव नहीं था। प्रेमचंदजी ने विष्वास दिलाया कि बनारसी मिठाई और समोसों का रंग इस गंगाजल विजया की परत पर ही जम सकेगा। षीघ्र ही उनके इस विधान का प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। इतने में प्रसादजी ने पूछा:

' 'आपने मेरी किताबें पढी़ हैं?''

' 'जी, हाँ।' '

' 'बात सरलता से समझ में आती है?''

' 'कुछ आती है, कुछ नहीं आती।' ' मैंने कुछ संकोच से कहा।

' 'प्रेमचंदजी का सहित्य भी पढा़ होगा' ' तीसरा सवाल हुआ।

' 'जी, हां।' '

' 'इनकी बात आसानी से समझ में आती है?''

' 'हाँ, वह तुरंत हृदय में उतर जाती है।' ' मैं कहने को तो कह बैठा, पर फिर कुछ संकोच महसूस हुआ। प्रसादजी ठहाका मार कर हंस पडे। बोले।

' 'बस, भैया हम दोनों के बीच यही भेद है। मुझे कहानी है मानव हृदय की गूढ़ मर्मकथ। लेकिन मेरी बात पाठक के हृदय में भटकती रहती है, जब कि प्रेमचंद जी की बात अपना वक्तव्य कह कर सीधी हृदय के मर्म में समा जाती है।' '

कुछ देर के मौन के बाद प्रेमचंदजी बोले, ''लेकिन प्रसादजी, आपकी सी कल्पना की उडा़न मैं कहा से लाऊँ?''

' 'प्रेमचंदजी, आपकी संवेदना की सरलता प्राप्त कर सके तो धन्य हो जाऊँ।' ' प्रसादजी के चेहरे पर उनका स्वाभाविक, सौम्य स्मित खेलने लगा।

' 'इसीलिए तो हिंदी साहित्य को प्रेमचंद और प्रसाद, दोनों की आवष्यकता है। वे दोनों प्रतिस्पर्धी नहीं, एक दूसरे के पूरक है, परम मित्र है।' ' प्रेमचंद जी अपने स्वभाव के अनुसार खिलखिला कर हंस पडे और मेरे हाथ पर लाली बजायी।

ठन दो हमान साहित्यकारों का निव्र्याज स्नेह और निष्छल स्वभाव देख कर मैं मुग्ध हो गया।
नव वापस लौटी। प्रसादजी मुझे और प्रेमचंदजी को काषी विद्यापीठ पर उतार कर घर चले गये।

17
गंगा के घाट पर

एक दिन प्रेमचंदजी, प्रसाद और मैं मणिकर्णिका घाट से नाव में बैठने जा रहे थे कि पास में ही कही से मृदंग पर सधे हुए हाथ की थाप सुनाई दी। मैंने बिनती की कि कुछ देर रूक कर सुना जाय। हम घाट पर वापस लौटे और जिस ओर से मृदंग की ध्वनि आ रही थी वहां पहंुचे। देखा कि एक साधु महाराज धुरपद पर हाथ आजमा

रहे थे। धीरे-धीरे व नये -नये तोडे बजाने लगे। तोडे के बोल जिस आसानी, सफाई और आत्मविष्वास से निकल रहे थे उसने इस वादक की कलासिद्धि के प्रति हमारे हृदय से आदरभाव जगाया। वह अपना तालप्रभुत्व प्रगट करता जा रहा था और हम अधिकाधिक मुग्ध होते जा रहे थे।

इतने में बहंगी के दोनों ओर पिटारियां लटकाये और भगवा साफा लपेटे हुए एक संपेरा वहां आ पहुचा। उसके पांवों में घुघरू बंधे हुए थे। हाथ में बीन थी। कंधे का बोझ नीचे रख कर उसने मृदंग के ताल के साथ अपने पांवांे का ताल बैठाया। फिर गालों में हवा भर कर पूंगी में स्वर फंूके। किसी के निमंत्रण या सम्मति की उस फक्कड़राम को क्या परवाह! सधु की आंखों में भी मस्ती का रंग चढा़। मृदंग में से नये-नये तोडे निकलत गये और सपेरा ताल का आग्रज बंधु मान कर उसी अनुसार बीन बजाने लगा। षीघ्र ही साधु और सपेरे की यह जुगलबंदी जम गयी। सुनने वालों की भीड़ लग गयी। ताल पूरी जवानी पर था।

इतने में न मालूम कैंसे, पिटारी का ढक्कन हटा कर एक काला सांप बाहर निकल आया और फन उठा कर झूमने लगा। चारों ओर कोलाहल मच गया। भीड़ में भगदड़ पड़ गयी। सपेरे ने हाथ जोड़ कर बिनती की, ‘‘महाराज, पखबाज बंद कीजिये। ये देवता भी बाहर निकल आये।’ ’ मृदंग बजना बंद हुआ। संपेरे ने नाग को काबू में किया। साधु के चेहरे पर प्रसन्नता प्रस्वेद बन कर बह रही थी।

‘ ‘वाह, महाराज, वाह। गजब कर दिया आपने। नागदेवता को मोहित कर लिया’ ’ संपेरे ने साधु की चरणरज ली। उसके गले में लिपटे हुए सांप ने भी फन ऊँचा कर के मानो साधु को प्रणाम किया।

सस्मित मुख से साधु ने कहा, ‘‘भाई, इस में तुम्हारा भ्ज्ञी तो साथ था। गजब की बीन बजाते हो।’ ’

वे दोनों एक-दूसरे को हाथ जोड़ते रहे।

लोक-कलाकारों की इस परस्पर कद्रदानी से मुग्ध हो कर हम नाव मे जा बैठे। ताल-सुर की ध्वनि कानों में बहुत देर तक गूंजती रही।

18

सन्मार्ग के यात्री

1934 के बैषाख की एक सांय को इलाहाबाद स्टेषन पर उतरा। आचार्य नरेन्द्रदेव का श्री मोहनलाल गौतम के नाम दिया हुआ पत्र पास था। मुझे आषा नहीं थी। कि स्टेषन पर कोई लेने आयेगा। पर तीसरे दरजे के फाटक पर टिकट दे रहा था कि किसी ने कंधे पर हाथ रख कर पूछाः ’’आचार्य नरेन्द्रदेव के यहां से आप ही आये हैं। न?’’ इस पूच्छा में मैत्री की हलकी सी मिठास थी। ’’आप...... मोहनलाल गौतम है?’’ मेरे इस सुखद आष्चर्य का उŸार उन्होंने स्मित से दिया।

रात को भोजन कर के हम सरदार नर्मदाप्रसाद सिहं से मिलने गये। उनके यहां हिंदी की सुप्रसिद्ध कवित्रयी श्री भगवतीचरण वर्मा, श्री बच्चन और श्री नरेन्द्र षर्मा से मिलना था। सरदार नर्मदाप्रसाद ंिसंह खुद भी बडे आकर्शक व्यक्ति है। काला, पहाड़ी, कद्वावर षरीर; बुंदेली के लहजे से मिश्रित जोषीली भाशा और लपलपाती हुई सुर्ख राजपूती आंखें उनके व्यक्तिव को एक निराला ही रूप प्रदान करती है। उन दिनों वे इलाहाबाद जिला कांग्रेस के अध्यक्ष थे। मूल रीवाॅ रिसायत के जागीरदार थे। स्वतंत्रता के बाद विंध्यप्रदेष के महसूल-मंत्री भी रहे थे।

उन्होेंने हमारे लिए यमुना में नौकांविहार की व्यवस्था की थी। बैसाख षुक्ल चतुर्दषी की रात थी। सामने त्रिवेणी संगम के क्षितिज पर चंद्र आकाषारोहण कर रहा था। षुभ्र चांदनी ने जमना के ष्माम प्रवाह को एक तेजमार्ग में परिणत कर दिया था। प्रवाह की मर्मरध्वनि उŸाम काव्य की तरह जीवन और सिर्फ जीवन का

संकेत कर रही थी। नाव किनारा छोडकर प्रवाह के बीच बहने लगी। जमना के पाट पर बिखरी हुई चांदनी की षोभा देखने में सब डूबे हुए थे। कि बच्चनजी की गीतमा ुधरी ने मौन तोड़ा। त्रिवेणी संगम जा कर वापस आने तक बच्चन नरेन्द्र और भगवती बाबू के काव्य का हृनदयहारी स्रोत बहता रहा। षांत, निस्तब्ध रात्रि; निर्मल, सौभ्य ज्योत्सना; यमुनारानी का मनोहारी सौदंर्य और जीवन के गायक कवियों की दिलदारी ने उस रात को चिरस्मरणीय बना दिया।

रात को घर आ कर छत पर सोये तब मोहनलाल गौतम जैसे राजनीतिज्ञ पुरूश के अंतःकरण से भी जीवन के उन धन्य क्षणों के बारे में सुख की आष्चर्यमुग्ध प्रतिध्वनि निकलती रही।

उन दिनों में षांतिनिकेतन में आष्चर्य क्षितिमोहन सेन के मार्गदर्षन में कबीर विशयक कुछ षोध कर रहा था। दादू और राधास्वामी संप्रदाय की साधना कबीर के निपुण संप्रदाय से किस हद तक मेल खाती है इस संबंध में कुछ जानकारी प्राप्त करनी थी। मैने भाई मोहनलाल से यह बात कही। यह भी बताया कि इसके लिए मै राधास्वामियों के प्रधान केन्द्र आगरा और दादूपंथियों के स्थान नारायणा भी जाना चाहता था। बनारस में कबीरचैरा की वंषपर ागत गददी के महंत से बाबू संपूर्णानंदजी ने परिचय करवा ही दिया था। मोहनलाल जी ने तुरंत कहा कि इसके लिए बाबू पुरूशोŸ ामदास जी टंडन से मिलना चाहिये। वे स्वयं राधास्वामी है और संप्रदाय में उनकी प्रतिशठा और स्थान अत्यंत ऊंचे है। आगरा के लिए पत्र तो मिल ही जायगा; पर वे खुद भी महत्वपूर्ण जानकारी दे सके े ंगे।

मोहनलाल गौतम स्वर्गीय लाला लाजपतराय द्वारा स्थापित लोकसेवक समाज के सदस्य थे। टंडन जी उसके अध्यक्ष थे। राजनीतिक दृश्टि से गौतम कांग्रेसी समाजवादी थे जब कि टंडन जी हिंदू महासभा की ओर झुके हुए थे। फिर भी दोनों में प्रगाढ़स्नेह था। गौतम जी के मन में टंडन जी के प्रति अपार श्रँद्धा और आदर की भावना थी यह हमारी छोटी से मुलाकात में भी मै देख पाया।

दूसरे दिन हम टंडन जी ने मिलने गये। उनकी तबीयत ठीक नहीं थी फिर भी हम से बडे प्रेमभाव से मिले। मोहनलाल ने हमारा परिचय करवाया। मुलाकात का हेतु भी बताया। वे बहुत खुष हुए। उनके स्वास्थ्य के संबंध में दो एक प्रष्न कुछ कर मैने विशय का आंरभ कर दिया:-

’ ’ राधास्वामी षब्द का अर्थ और संप्रदाय की साधना के स्वरूप के विशय में कुछ जानना चाहता हू ॅ।’ ’
टंडन जी बिस्तर पर बैठ गये। उनकी आंखें चमकने लगी। बोले, मोहनलाल आज मेहमान के साथ यहीं भोजन करना। में भी कुछ फल-वल खा लूंगा।’ ’ मोहनलाल तो जैसे उन्हीं के परिवार के सदस्य थे। भीतर जा कर भोजन व्यवस्था की सूचना दे आये।

’ ’ तुम्हारा प्रष्न मुझे पसंद आया। तुमने मूल बात को स्पर्ष किया। यह अच्छा ही किया।’ ’ तकिये का सहारा ले कर वे कुछ और स्वस्थता से बैठे। फिर दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए बोलेः ’’नदी के उद्‌गम तक पहुंचना हो तो प्रवाह से उलटी दिषा में जाना पड़ता है। गंगोत्री जाने के लिए यहां से काषी की ओर नही, उŸ ार में हरिद्‌वार की और जाना चाहिये। मूल को प्राप्त करने के लिए धारा से उलटी यात्रा आवष्यक है। इस रहस्य को व्यक्त करने के लिए हमने ’धारा’ षब्द का उलटा रूप ’धारा’ संप्रदाय के नाम के रूप में स्वीकृत किया। राधा प्रतीक है प्रकृति का । अतः अपने स्वामी परमपुरूश को प्राप्त करने के लिए साधक को अपने हृदय की ओर वापस जाना चाहिये। इस साधना की धारा अंतःकरण से बाहर की ओर नहीं बल्कि वाहर से अंतप्रदेष की ओर बह कर आत्मस्थ होती है। राधास्वामी षब्द का यही अर्थ है और अंतर्यात्रा ही इस साधना का चरम रहस्य है।’ ’ कहते-कहते टंडनजी चेतना अंतमुख हो गयी। दृश्टि अंतःकरण की ओर मुडी और एक क्षण के लिए उनके नेत्र मुंद गये।

इसके बाद और भी बहुत बातें हुई। संस्कृति से लगा कर संसार के क्षणजीवी स्वार्थो तक अनेक विशयों की चर्चा हुई। लेकिन आदमी पकड़ाई में आ गया। टंडनजी राजनीतिज्ञ, समाज-सुधारक या साहित्यकार नही लगे। वे तो अपने आपको प्राप्त करने लिए जीवन की धरती का कठोर कुरूक्षेत्र पार कर के अतंर्यात्रा करने वाले सन्मार्ग के यात्री ही अधिक मालूम दिये।

19

सृजन महोत्सव

बहुत वर्श पहले की बात है। बैसाख महीना था उस आग बरसाती गरमी में श्री नंदलाल बोस षांतिनिकेतन रो बड़ौदा आये थे। साथ में उनके षिश्य कलाकारों का समुदाय था। सयाजीराव महाराज के कीर्तिमंदिर की पूर्व की दीवार पर भिŸिाचित्र का निर्माण करना था। कीर्तिमंदिर के पिछवाड़े एक छोटे से कमरे में वे ठहरे हुए थें।

हमें मालूम हुआ उसके दूसरे रोज डाक्टर मुस्तफा अली और मै उनसे मिलने गये। रंगीन तबीयत और गुलाबी स्वभाव के डाक्टर अली ने नंदबाबू जैसे गंभीर स्वभाव वाले आदमी को भी खिलखिला कर हँसा दिया। हम नंदबाबू के साथ ही कीर्तिमंदिर की ऊपर की मंजिल पर गये। पूर्व की दीवार पर काली लकीरों से चित्र का स्थान और विस्तार निष्चित कर लिया गया था। नंदबाबू ने दीवार की और ताकते हुए अपनी योजना बतायी। मीराबाई की जीवनकथा का आलेखन करना तय हुआ था। हमसे बातें करते करते वह समाधि में डूब गये। कुछ देर बाद दो चार षिश्यों को बुला कर कुछ सूचनाएं दी ओर हमारी उपस्थिति से बेखबर अपने काम में लग गये।

एक सप्ताह बाद डाक्टर अली और में फिर नंदलाल बाबू से मिलने गये । सामान्यतः नंदबाबू किसी को ऊपर नही ले जाते थे। पर हमें उन्होेंने इस नियम के अपवाद रूप माना था। ऊपर जा कर देखा तो काली रेखाओं के बीच रंगों के धब्बे उभर आये थे। अभी किसी आकृति का रेखाकंन नही हुआ था। सिर्फ रंगों का उपादान जुटा था। अली ने मुझसे कहा, ''तुमने नंदबाबू की आंखें देखी? उनमें उनके चित्रों की सारी आकृत्रियां प्रतिर्विवित हो रही है। उनके अंतर को जो दर्षन हुआ है। उसको छाया उनकी आंखों में पड़ रही है। अगले सप्ताह षायद उन्हें मूर्त स्वरूप मिल जायगा।' ' हमारी इस बातचीत के दौरान नंदबाबू बाहर की दुनिया से वेखबर कूंची लिये अपने काम में डूबे रहे थे।

आठ-दस रोज बाद हम फिर कीर्तिमंदिर पहुंचे । नियमानुसार चाय का प्याला पिलाकर वे हमें ऊपर ले गये। हमने आष्चर्यमुग्ध हो कर देखा कि दीवार धीरे धीरे जीवित हो रही थी। आकृतियों की रंेखाएं बंध चुकी थी। रंग अधिकाधिक विषद होते जा रहे थे। कलाकार का दर्षन आकार धारण कर रहा था। सृजनप्रतिभा पल्लवित हो रही थी। हम मुग्ध हो कर दीवार पर साकार होते जीवन को देखते रहे। नंदबाबू की तूलिका पामर मनुश्याकृतियों को परम आत्मश्री से विभूशित कर रही थी। हम घर जाने के लिए निकले तब कभी चुप न रहने वाले डाक्टर अली रास्ते भर मौन रहे और किसी विचार में डूब रहे।

नंदबाबू से मिलने का आनंद हमेषा वर्णनातीत होता है। वाणी द्वारा तो वे बहुत कम बातें व्यक्त करते है। उनकी अधिकांष बातेें मौन के माध्यम से ही होती है। उस समय अभिव्यक्ति का मुख्य वाहन होती है। उनकी आंखें। उस दिन सुबह हम पहंुचे तब से अत्यंत षांत थे। समाधिस्थ थे यह कहूं तो भी अतिषयोक्ति नही होगी। बैठे थे वे इस धरती पर, पर दृश्टि उनकी दूर अगम्य में रम रही थी। हमें किसी षिश्य ने चाय पिलायी और हम ऊपर पहुंचे। उकन सृजनसमाधि फिर भी अटृट रही । ऊपर जा कर आंखों ने नये आष्चर्य के दर्षन किये। आकृतियों में प्राण दिखाई देने लगे थे। रंग और रेखाओं का द्वैत तिरोहित हो गया था! छोनों ने मिलकर एक नयी लय का निर्माण किया था। और इस लय में प्रकट हो रहा था लावण्य। ऐसा लगा मानो '' मै तो दरद दिवानी, मेरो दरद न जाने कोय . ... ''गाती हुई मीरा मूर्त हो उठी हो। जड़ दीवार के कणकण में से यही ध्वनि उमड़ रही थी। यही धुन एकाग्र हो रही थी। कलाकार के हृदय की लगन और तल्लीनता देखने वाले को अवाक कर देती है। मंदिर आकाष धरती प्रकाष छाया सब का आलेखन अत्यंत कलामय ढंग से हुआ था। सब मिल कर मीरा की आर्तता का साथ दे रहे थे। नंदबाबू अपनी तूलिका से चित्र को अंतिम रूप दे रहे थे।

यह अंतिम दर्षन था। अपूर्व था वह अनुभव। प्रथम दर्षन के समय संगमरमर जैसे सफेद पत्थर की दीवार मात्र्र थी। फिर उस पर रेखाएं उभरी; रंगों का सिंचन हुआ; कलाकार की उंगलियां धूमीं और अंतमें जीवन प्रकट हुआ।

जीवन के प्रकटीकरण और सर्जन का कैसा भव्य महोत्सव! और कलाकार के अस्तित्व का सौन्दर्य के प्रकटीकरण में कैसा धन्य विसर्जन !

20
मस्त षिल्पी
षंातिनिकेतन के कलाभवन के आंगन में षरद की चांदनी बिखर रही थी। ठीक याद नही, पर या तो चतुर्दषी थी या पूर्णिमा । दस बजे थे। वैतालिक लौट गये थे। संगीत की छाया में पूरा आश्रम विश्राम कर रहा था। हम एक मित्र से मिल कर विद्याभवन की ओर लौट रहे थे। कि कलाभवन के प्रंगण में तीन-चार विद्यार्थियों को लालटेन लिये खड़े हुए देखा। पास ही कीचड़ जैसा दिखाई देने वाला गीली मिट्टी का ढेर पडा था। और रामकिंकर बाबू बाॅहें चढ़ा कर खडे थे। पहले तो कुछ समझ में नही आया पर मालूम पड़ने पर वहां से हटने का मन नही हुआ। रामबाबू की अनुमति ले कर हमने वहीं अडडा जमाया। रामबाबू और उनक ेषिल्पभवन के विद्यार्थियों ने मिलकर तख्तों का एक चबूतरा तैयार किया था। उस पर रातों रात भगवान बुद्ध की प्रतिमा बनानी थी। हाथों के सिवा किसी के पास और कोई औजार नहीं था। रामबाबू ने गरिका एक बड़ा सा लौंदा हाथों में लिया और उसकी चिकनाई और गीलेपन का अंदाज लगाया। बांस की खपच्चियों के कुछ टुकड़े पास ही पड़े थे। काम षुरू हुआ। लड़के गीली मिटृी के बडे-बडे पिंड उठाउठा कर रखते जा रहे थे और रामबाबू के कुषल हाथ उन्हें आकार में ढालते जा रहे थे। कुछ देर तक तो मिटृी के ढेर के सिवा कुछ दिखाई नही दिया। लेकिन धीरे-धीरे षिल्पी की अंगुलियों ने मानवदेह के विभिन्न अंगों को आकार दिया। पहले पलथी मारे हुए पांव दिखाई दिये, फिर पेट और छाती का भाग स्पश्ट हुआ, दोनों हाथों का आकार अलग निकल आया। और अंतमें एक घड़े जैसे पिंड में सिर की रचना हुई। ऊशा के आगमन ने प्रकाष फैलाया और चांदनी क्लांत होकर बिदा हुई तब तक तो उस प्रयोग वीर षिल्पी ने मूर्ति के हांेठ, आंखेेंं, नाक, कान ललाट इत्यादि सारे अंगों की रचना कर ली थी। प्रभात के सूर्य की कोमल किरणें मूर्ति पर पड़ी, तब उकसा रूप स्पश्ट हो चुका था। इतना ही नही मुख के भाव भी अंकित हो चुके थे। भगवान तथागत की पूर्वाभिमूख प्रतिमा अनुकंपायम आषीर्वाद की वर्शा कर रही थी। पास ही रामबाबू खड़े थे। वे बालकों जैसी उत्कंठा और सरलता से मूर्ति को देखे जा रहे थ; बस देखे ही जा रहे थे।

मस्त रामबाबू का मूर्तिविधान वाकई अद्भूत था। उनकी सृजनषाक्ति और कलादृश्टि के विशय में मतभेद हो ही नही सकता। पर बुद्ध के मूर्तिविधान के बाद दो-तीन दिन तक रामबाबू की मस्ती पर विशाद छाया रहा। तीन चार दिन बाद हमने आष्चर्यमुग्ध हो कर देखा कि कलाभवन के प्रांगण में बुद्ध प्रतिमा के सामने की सुजाता की प्रतिमा खड़ी थी। चेहरे पर अभीप्सां और आर्तता के भाव इतने मुखर हो उठे थे मानो अभी बुद्ध में समा कर अपने अस्तित्वको विलीन कर देना चाहती हो। समर्पण की मानो जीम हुई सुराबलि-आत्मनिवेदन की मानो बोलती हुई प्रतिमा।

षिल्पी के हृदय की अब खरी पहचान हुई।उनकी प्रतिभा ने ध्यानस्थ बुद्ध का निर्माण किया; पर इससे उन्हें संतोश नही हुआ। अपने सर्वस्व का समर्पण कर देने वाली सुजाता के निर्माण से ही उन्हें षांति मिली।
रामबाबू अब फिर मस्त दिखाई देने लगे । उनकी चाल में वही लापरवाही आ गयी; उनकी आंखें फिर वेलौस हो उठी; उनकी अंतरात्माफिर से प्रसन्न हो गयी।

सृश्टा कलाकार कितना बड़ा षहंषाह होता है। इसका अनुभव रामकिंकर बाबू को देखने के बाद ही हुआ।

21
नन्नू उस्ताद

हर वर्श भाद्रपद में गणपति की प्रतिश्ठा के आठवें रोज सोमनाथ के घर संगीतोत्सव होता था। बड़ौदा में गणेषोत्सव का महत्व महाराश्ट्र के जितना ही माना जाता है और पूना-बम्बई की तरह धूमधाम से मनाया जाता है। सोमनाथ मेरे मित्र होने के अलावा गुरूभाई भी थे। हम दोनों बक्षी उस्ताद के षिश्य थे। बक्षी उस्ताद की गुरूपरंपरा पखावज के सुप्रसिद्ध मर्मज्ञ उस्ताद नसीरखां के घराने की मानी जाती है। सोमनाथ के यहां प्रतिवर्श गणेषोत्सव की संगीत मजजिस में उच्च कोटि के कलाकार षरीक होते थे। इसकी सफलता का सारा श्रेय बक्षी उस्ताद को ही था। उनके प्रति स्नेह और सम्मान की भावना से प्रेरित हो कर बडे बडे गुणी कलाकार बिना मनुहार करवाये संगीतोत्सव में सम्मिलित होते थे। सोमनाथ के यहां के इस उत्सव के लिए षैकीन लोग बरस भर तरसते रहते थे। रात को दस बजे षुरू होने वाली महफिल अकसर सुबह पौ फटने पर ही पूरी होती थी।

रात के बारह बजे थे। महफिल जम चुकी थी। स्वामी बल्लभदास जी ने अभी अभी केदार समाप्त किया था। उनके कठंमाधुर्य की मोहिनी से प्रभावित श्रोतागण स्वरों के सुरूर में मस्त हो चुके थे े। केदार द्वारा निर्मित आर्तभावना से वातावरण आर्द्र हो उठा था। इतने मे ंबक्षी उस्ताद ने इषारा किया। एक पीले साफेवाले दुवले पतले आदमी ने सितार गोद में जमा कर मुख्य तार पर शड्ज छेड़ा। मींड में संगम का पूरा सप्तक नाच उठा। हम कुछ वेखबर बैठे थे। ये अलौकिक स्वर सुने तो सब चैकन्ने हो गये । आंखों में आष्चर्य भर गया, कान खडे हो गये और हृदय किसी अनजान जिज्ञासा से जाग्रत हो उठा। सितार में से भीमपलासी की सुरावली प्रकटी। मानो अभिलाशा मोहिनी रूप धारण कर के महफिल में नाचने लगी हो। उस्ताद के मुख से अनायास ही वाह वाह की दाद निकल आयी। सितारिये ने गर्दन झुका कर आंखों से ही इस सदभावना को षिरोधार्य किया। भीमपलासी विलसती गयी। कभी ऐसा लगता मानो कोई लावण्यप्रथा सुंदरी कोमल कंठ से मधुर गुंजन कर रही हो। कभी ऐसा आभास होता मानो किसी अतल गहराई में से किसी किन्नरी का स्वर बहता हुआ आ रहा हो। संवेदनषील हृदयों को ऐसा लगा मानो उन्हींकी प्रियतमा की आर्त पुकार गं ूज रही हो। आंखे करूणाजल से रिक्त हो गयीं। धीरे-धीरे नींड की अद्भूत सुरावली को संभाल कर गत बाहर निकली। तबले का साथ षुरू हुआ। एक के बाद एक अंतरे वातावरण में गूंजने लगे। हर एक की लीला अलगः प्रत्येक की फिरत अलग; हरेक का विलास अलग। सितारनवीस ने कुषलता से सुरों को समेटा तब वातावरण अनुकंपा से तरबतर हो चुका था।

कौन है यह अद्भूत सितार वादक? बक्षी उस्ताद ने उठ कर उसकी उंगलियाॅ चूम ली' ' वाह नन्नू उस्ताद वांह! उनके मुख से सराहना निकल पड़ी। तिरछा, पीला साफा; गेहूआॅ रंग; रंगीन, अलस और मदमाती आंखें, क्षीण काया, षरबती मलमल का अंगरखा। नाम नन्नू मियाॅ उर्फ नन्नू उस्ताद । फूल के से कोमल स्पर्ष वाली उनकी उंगलियां सितार के परदों पर घुमते हुए ऐसी लग रही थी मानो वे सुरों से निर्मित गुलछड़ी की कलियाॅ हों।

दुसरे दिन सोमनाथ को साथ ले कर मै नन्नु उस्ताद के घर गया। सोमनाथ न परिचय कराया। मै बक्षी उस्ताद का षागिर्द हूॅ यह जानने पर उन्हौंने बातचीत का आरंभ ही अत्यंत स्नेह से किया। मै उन्हें आग्रहपूर्वक अपने घर ले गया। सितार उनके चरणों में रख दिया और मुझे षिश्य के रूप में स्वीकार करने की प्रार्थना की। सिर पर हाथ रख कर उन्होंने आषीर्वाद दिया। यमन-कल्याण से तालीम का आरंभ हुआ। रोज रियाज होने लगा। उस्ताद गत बजाते तब मै तबले पर साथ देता। फिर उसी गत को मै बजाने का प्रयत्न करता और वे ठका देते। महीने के अंत में उस्ताद की मुंहमांगी गुरूदक्षिणा अर्पित की।

इसी प्रकार समय बीतने लगा। षीध्र ही उस्ताद की मदमाती आंखों को रहस्य मालूम हो गया। उन्हें अफ्रीम और षराब दोनों का षौक था। सुबह अफ्रीम और रात को षराब । जन्मजात कलाकार और फक्कड़ाना स्वभाव। अतः मुफलिसी तो जैसे धुट्टी में ही पिलाई हुई थी। धीरे - धीरे उस्ताद के साथ का संबंध धनिश्ठ होता गया। ज्यों ज्यों घनिश्ठता बढ़ती गयी त्यों त्यों उनके जीवन का निकट से परिचय होने लगा। गुरूभक्ति की पगपग पर कठोर परीक्षा होने लगी। गतों का अभ्यास यमन से बढ़ कर भैरवी तक पहुंचा ।

एक दिन सुबह उस्ताद ने गारा कान्हड़ा की गत छेड़ी। ऐसा लगा जैसे कोई विलासिनी प्रमदा आनंद का गुलाल बिखेरती आ रही हो। वातावरण मं कंदर्प के गुप्त अस्त्र घुमने लगे। जिंदगी को भंव में डाल देने वाली मस्त यौवनाएॅ रास करने लगी। समग्र अस्तिस्व को आकुल व्याकुल कर देने वाली किसी वासवदŸाा की

उपस्थिति का तो अनुभव हो रहा था पर स्पर्ष का नहीं। लेकिन एकाएक न मालूम क्या हुआ कि खुमारी का ऐसा अद्भूत अनुभव करवा कर उस्ताद खड़े हो गये और नयी गत सिखाये बिना ही चले गये।
इसके बाद कई दिन तक वे दिखाई नही दिये। एक दिन सुबह मै उनके घर पहुंचा। मियाॅ बीमार थेे। घर को हालत देख कर स्तब्ध रह गया। चीज बस्त, सरोसामनान कुछ भी नहीं। एक फटी हुई गुदढ़ी पर वे सो रहे थे। षरीर बुखार सेे जल रहा था। मै वापस घर आ गया। एक खटियां गद्दी तकिया ओढावन, पानी का घडा, लोटा, गिलास इत्यादि ले कर उस्ताद के यहां पहुंचा। उन्हें ठीक से सुला कर डाक्टर को बुला लाया। नियमित दवा दी। चार दिन बाद बुखार उतरा। खाट पर बैठने लगे। दो तीन दिन में तबीयत और सुधर गयी। एक दिन सितार लाने की आज्ञा हुई। मै और सोमनाथ सितार और तबला डग्गा ले कर पहुंच गये। उस्ताद के मुख पर आनंद की आभा छा गयी। सितार मिलाया। सोमनाथ ने तबला मिलाया। मींड में से जोगिया के सुर प्रगट हुए। देखते देखते दिल गमगीन हो उठा। वातावरण भारी हो उठा मानो कोई मातम छा गया हो। विशाद के भंवर में से बाहर निकलने के लिए आनंद छटपटाने लगा; आक्रद करने लगा। जैसे जैसे यह आक्रंद अधिकाधिक करूण होता गया वैसे वैसे उस्ताद के मुख के भाव अधिकाधिक निर्मल सौभ्य और निरपेक्ष होते गये। इसका रहस्य समझ मंे नही आया। दिलदारी और गमख्वारी की ऐसी गहरी दोस्ती कभी देखी नही थी। तार को खींच कर मींड में से उस्ताद न गम की आखिरी आह छोड़नी चाही कि तार टूट गया। उन्होंने सितार एक ओर रख दिया। तबला बंद हो गया। हंस कर बोले ''एक रोज हमारी जिंदगी का तार भी ऐसे ही टूट जायेगा।' ' इस हास्य में आषा का उत्साह नही था। थी सिर्फ ग्रम की हस्ती... या हस्ती का ग्रम। इसके बाद नन्नू उस्ताद का स्वास्थ्य गिरता ही गया। तालीम का सिलसिला भी टूट गया। मेल मुलाकात के मौके उŸारोŸार कम होते गये।
वर्शो बाद की बात है। एक दिन खबर मिली की उनकी हालत खराब है। वह मकान उन्होंने छोड़ दिया था। मस्जिद में निवास था। मै सुबह सुबह पहुंचा। उनका षागिर्द नंद सितार पर रामकली बजा रहा था। उस्ताद फटे हुए वोरिये पर बादषाही अदा से लेटे हुए थे। आंखों में उदासी थी। लेकिन होंठों पर वह स्मित बन कर ही उतरती थी। इतने में नंद ने रामकली समाप्त की। उस्ताद की गहरी आवाज सुनाई दीः ''नंदा सिंधभैरवी छेडो, बेटा।' ' उस्ताद की आज्ञा पाते ही नंद ने मींड में सिंधभैरवी की सुरावली छेड़ी। मींड की खींच में एक परदे पर से नंद की उंगली सरक गयी। सुर मींड में से छटका और उसमें विसंवादिता आ गयी। उस्ताद को जैसे तीर चुभा। बिस्तर पर बैठ गये। मैंने संभाला। षाम के खाने का भी इंतजाम न कर पाने वाला यह औलिया सुरों की दुनिया में मामली से बेसुरेपन को भी बरदाष्त न कर सका। नंद के हाथों से सितार ले कर उन्होंने खुद सिंधभैरवी छेड़ी। उस्ताद की तो उंगलियाॅ ही मानो जमे हुए सुरों की बनी हुई थी। छूते ही निर्जीव तारों में प्राण पल्लवित हो उठे। कई रागरागनियों से उस्ताद को बेहद प्रेम था। लेकिन निधभैरवी तो उनकी प्राणप्रिया लाडली रागिनी थी। उस्ताद उसके पीछे दीवाने थे। उसे छेड़ कर खुद ही झुमने लगते । आज भी वही हुआ।
वह प्रसंग भुलाया नही जा सकता। स्मृति के साथ ऐसा जुड़ गया है। कि इषारा मिलते ही जाग्रत हो उठता हैं। उस्ताद जब किसी सिंधभैरवी छेडते तब उसके स्वरों द्वारा जीवनव्यापी गम का ही गौरव गाते। कभी विशाद से प्यार करते तो कभी उदासी का आवाहन करते। और इन सारे तत्वों के साथ ऐसा संवादी संबंध साधते कि खुद भी उनमें का एक तŸव बन जाते - सूक्ष्म सुरभित और सौंदर्यमय।
लेकिन उस दिन उन्होंने सिर्फ उदासी को ही निमंत्रित नही किया; बल्कि उदासी के मूर्तिमंत्र अवतार जैसी मृत्यु का आवाहन किया। एक तो मस्जिद। पास ही कब्रिस्तान। कजा, कफन और कयामत की लीलाभूमि। उसमें फिर मौत की सवारी का आगमन। भीशणता में कोई कसर नहीं रही। जिंदगी ऐसी निर्जीव हो उठी मानो किसी ने मूठ मार दी हो। आंखें होंठ और हृदय सब एकसाथ बंद हो गये। जीवनपंछी ने स्तब्ध हो कर पंख समेट लिये। उस्ताद की आंखें उलट गयी। हाथ से सितार छुट गया। षरीर पर लुुढ़क गया। प्राणपखंरू ने आखिरी सलाम किया और सुरों का वह षिल्पी अपने देष को चला गया।

बहुत वर्श पहले की बात है। साल याद नहीं है। याद है सिर्फ ऋतु क्यांेकि उसका वातावरण स्मृति में अब तक जीवित है। श्री कृश्णमूर्ति बड़ौदा पधारे थे। बड़ौदा के नागरिक जीवन का नियम था कि जब कोई प्रसिद्ध महापुरूश षहर में आते तो उनका व्याख्यान अकसर षाम को ही होता और स्थान के रूप में प्रायः न्यायमंदिर या बड़ौदा कालेज के सभामंडप को पसंद किया जाता। परंतु कृश्णमूर्ति जी कि लिए सयम और स्थान दोनों बदल दिये गये थे। समय सुबह आठ, साढे-आठ का समय और स्थान था कमेठी बाग में सफेद बंगले के सामने का लतामंडप। स्व0 महाराज सयाजीराव ने स्वेच्छा से सभा का अध्यक्षपद स्वीकार किया था। सभास्थान को सादगी और सुरूचिपूर्ण कलात्मक ढंग से सजाया गया था। पूरे वातावरण में बसंत की षोभा और प्रसत्रता छायी हुई थी। वृक्ष नवपल्लवित हो रहे थे। लताएं विकसित हो रही थी। और पुरूश नवजीवन में हंस रहे थे। बंसत ऋतु की वृक्षराजि महक रही थी। प्रकृति की इस उल्लसित और सुरमित वातावरण में सभा समाप्त हुई। व्याख्यान और वातावरण दोनों के प्रभाव से मुग्ध श्रोतागण परस्पर बातें कर रहे थे। इतने में कृश्णमूर्ति जी के साथ आने वाले लोगों में से किसी ने पूछा कि बड़ौदा निवासी ने बेझिझक उŸार दिया; ’’बड़ौदा में दर्षनीय और महान पुरूश सिर्फ दो है। उनमें से एक, महारज सयाजीराव के दर्षन आप कर चुके । दूसरे है उस्ताद फैयाज खाॅं।’ ’

सभा के अध्यक्षपद से महाराजा सयाजीराव ने जो जीवनस्पर्षी व सौंदर्यदर्षी भाशण किया, उससे कृश्णमर्ति जी और उनके साथी बहुत प्रभावित हुए थे। परंतु उस रात को राजमहल में उस्ताद फैयाज खाॅ का संगीत सुन कर तो वे मुग्ध और मस्त हो गये । सुबह उनका मन महका थाः रात को हृदय रंग गया। आज उस्ताद फैजाख खाॅ की अनुपस्थिति में जब जब उनकी याद ताजा होती है। तब-तब उस दिन की स्मृति सब से पहले जाग्रत होती है। आज उन दोनों दर्षनीय और माननीय महापुरूशों के बिना दरिद्र और श्रीहीन लगता है।

(2) संगीतसूर्य का उद्य

जिंदगी में महफिलें को अनेक देखी है। अख्तरीबाइर्, फैजावादी, ईदन मुरव्वती, ममीलाबाई कानपुरी, महबूबजान, दिलषाद बेगम, सहारनपुरी अस्मत मुरादाबादी और षमषाद बेगम के ठुमरी-दादरी और गजल-कव्वालियां अदा की मस्ती के साथ सुनी है। सिद्धेष्वरी, विद्याधरी, षैलकुमारी अंजनी, मेनका, रोषन, आरा, राजेष्वरी, मीरा वाडकर, सुषीला टेब्बे, केसरवाई केरकर, गगुंवाई हनगल और हीराबाई बड़ादेकर की विभिन्न घरानों की अनोखी तमीज और ताजगी भरी खानदानी गायकी का आनंद भी भर कर लूटा है। पंडित आंेकारनाथ जी, उस्ताद विलायत हुसेन खाॅ, महम्मद खाॅ, दिलावर हुसैन खाॅ, बब्दुल करीब खाॅ, गजनाननराव जोषी और मास्टर कृशणाराव जैसे पक्के गवैयों को भी हृदय तृप्त होने तक सुना है। परंतु एक महफिल मेरे मुग्ध अंतःकरण पर ऐसी अंकित हो गयी है। कि आज भी उसकी स्मृति रंगीन ख्वाब का सा खुषनुमा माहौल जमा जाती है।

यह बात उपयुक्त घटना से भी कई साल पहले की है। बड़ौदा में पानी दरवाजे के बाहर एक मजार के पास विषाल षामियाने में महफिल जमी थी। जहां तक याद है, उस रोज बड़ौदा के आद्य संगीत विधायक उस्ताद मौलाबक्ष की मृत्युतिथि थी। उन दिनों बड़ौदा संगीतकला के उपासकों का नैहर माना जाता था। चारों दिषाओं में उसके गौरव की दीप्ति फैली हुई थी। इस उत्सव में बडौदा के ख्यातनाम गायक-गायिकाओं के अलावा पूरे भारतवर्श के प्रसिद्ध गवैये भी तषरीफ लाये थे। रात को दस बजे आरंभ हुई महफिल सुबह छः बजे मुष्किल से पूरी हुई थी। मजलिस में तमाषवीन श्रोताओं की उपस्थिति नही के बराबर थी। अधिकांष संख्या कलाकारों और निमंत्रित संगीतरसिकों की ही थी। महफिल की आत्मा थी उस्ताद मौलाबक्ष के प्रति आदर की भावना। अतः प्रत्येक कलाकर के योगदान में अपनी सर्वश्रेश्ठ उपलब्धि प्रकट करने की उत्कट अभिलाशा थी।

उस्ताद फैयाज खाॅ को मैने जीवन में पहली बार इसी महफिल में देखा और सुना। दरबारी के आलाप से उन्होंने गाने का आरंभ किया था। उस समय उनकी उम्र चालीस से भी कम रही होगी। सुरमे से रंगी आंखों में विषुद्ध मस्ती छलक रही थी। सुदर्षन और तीखे नक्ष के चेहरे पर पौरूश की आभा थी। तहजीब की हिना से पूरा व्यक्तिव महक रहा था। मैने सुना था कि बहुुत सी गायिकाएं उनके पीछे पागल रहती थी। सुन कर आष्चर्य

नही हुआ। सच्ची गाने वाली हो, तो उसे बरबस पागल होना ही पडे ऐसा रमिक और मनारम उनका व्यक्तित्व था।

खाॅ साहवने दरवारी का आलाप लेकर अपने रंगीले घराने की गायकी का आरोपण इतने उच्च स्तर पर किया कि बाद के गवैयों का रंग जमना मुष्किल हो गया। बहुत से तो बिलकुल निश्प्रथ हो गये और कुछ ने उस ऊंचाई को दूर से छूने में ही अपने आपको धन्य माना। जो उसे छू सके उन्होेने खुदा का षुक्र माना। खाॅ साहब ने भैरवी से महफिल का समापन किया तब पूरे वातावरण में मूतिमंत विशाद को मौन छा गया। परंतु संवदेनषील ह्रदयों को इस से वैचैनी के बजाय करार ही मिला। अनके गवैये खाॅ साहब के गले से लिपट गये। कई गायिकाओं ने बाइज्ज्त मुजरा किया। मेरे मुग्ध मन में ऐसी अनुभूति हुई कि बड़ौदा के आकाष में संगीतसूर्य का उदय हो चुका है। 'आफताबें मौसीकी' का दरबारी खिताब तो उन्हें बहुत बाद में मिला ।

3) कीमियागर

स्वर्गीय महाराजा सयाजीराव गायकवाड के जन्मोत्सव का सप्ताह का सप्ताह चल रहा था। एक दिन षाम को मोतीबाग के मैदान में उपवन सम्मेलन था। मेहमानों के मनोरंजन के लिए विविध प्रकार की व्यवस्था थी। बेटर की लड़ाई से लगा कर ईदनजान की संगीत महफिल तक के लिए अलग अलग षामियानें बनाये गये थे। ईदन की गजल कब्वाली तो मषहूर थी ही, साथ ही वह ख्याल गायन की भी अप्रतिम जानकार थी। हम उसी षामियानें में खड़े थे। आध घंटे से ऊपर हो गया, पर मजलिस जम नही रही थी। इतने में महाराज सयाजीराव अपने दो चार खास मेहमानों के साथ आ पहुंचे। साजिन्दे सावधान हो गये। ईदन भी चैकन्नी हो गयी। आलाप लेकर उसने विलंबित में भीमपलासी छेड़ी। रूप, यौवन और कंठ का इस गायिका में अत्यंत अभिराम त्रिवेणीसंगम हुआ था। और इस मणिकांचन योग से वह अनभिज्ञ नहीं थी। समयानुसार अपने तरकष के हर मीर को उपयोग करना वह अच्छी तरह से जानती थी। उकसी रसीली आदाओं और रंगीली चितवनों में उसके चाहने वालों के सपनों पर छा जाने की ताकत थी।

फिर भी न जाने क्यों आज ईदन के कंठ की रौनक जम नहीं रही थी। इतने में उस्ताद फैजाय खाॅ षामियाने में तषरीफ लाये। मानो किसी की तलाष में निकली हुई ईदन की नजर को खाॅ साहब की आंखों में आश्रय मिल गया और देखते देखते उसके कंठ पर जैसे माधुर्य का मोरपंख धूम गया। भीमपलासी लहरा उठी। खाॅ साहब की वाह-वाह में व्यक्त कद्रदानी को ईदन ने झुक कर मुजरा किया। देखते देखते मजलिस का मिजाज बदल गया। नयी फिरत उठी, गहरा दर्द जगा, आर्तता ने आकुल होकर पुकार की और समां बंध गया। ईधन का मुजरा स्वीकार करके महाराज ने धूम कर देखा तो दृश्टि उस्ताद पर पड़ी। खाॅ साहब ने वहीं से झुक कर सलाम किया। महफिल के बदले हुए रंग का कारण महाराज की समझ में आ गया। कुछ देर बाद खाॅ साहब के कंधे पर हाथ रख कर इस जादूगरी की कद्र करते हुए वे चले गये । मेरे पास ही कर्नल षिवराजसिंह खड़े थे। वे बोल उठे,'' क्या बात है! उस्ताद वाकई कीमियागर है।' '

4) मेहमाॅनवाज

श्री नंदलाल बोस षांतिनिकेतन से बड़ौदा पधारे थे। कीर्तिमंदिर के भिŸिाचित्रों की रचना करने के लिए। साथ में उनका षिश्य-समुदाय था। नंनबाबू की उस्ताद फैयाजखाॅ का गाना सुनने की इच्छा हुई। उन्होंने डाक्टर अली के यहां कहलवाया। अली और मै खाॅ साहब से मिले। नंदलाल बाबू की इच्छा थी कि खाॅ साहब को उनके दौलतखाने पर जा कर सुना जाय। हमने उसी के अनुसार बिनती की। लेकिन उस्ताद नहीं माने। उनकी राय हुई कि नंदबाबू जहां ठहरे है वहीं जा कर सुनाया जाय। नंदबाबू सच्चे कलाकार थे। उनका कहना हुआ कि इतने बड़े संगीतकार को अपनी कुटिया में कैसे बुलाया जांय। यह तो अविनय होगा। हमें ही उनके यहाॅ जाना चाहिये। दूसरी और खाॅ साहब अपनी बात पर अटल थे। उनका कहना था कि ''नंनबाबू निर्गत ख्याति के कलाकार है। इसके अलावा वे हमारे मेहमान है उन्हें गाना सुनने के लिए घर आना पडे, तो यह हमारे लिए जिल्लत की बात होगी। मै खुद सामने हो कर उन्हें गाना सुनाने जाऊॅ इसीमें मेरी षोभा है।' '

ऐसा लगा कि ये दोनों कलाकार इसी प्रकार तकल्लुक बरतते रहे तो गाना होगा ही नहीं। डाक्टर अली और मैने मिल कर खाॅ साहब को बहुत समझया। आखिर बडी मुष्किल से वे राजी हुए। फिर हमस ब उन्हीेके यहाॅ

गये। वह महफिल मुझे हमेषा याद रहेगी। षतरंगी पर सफेद चाॅदनियों की बिछायत थी। मसनदों के पास मोगरे के फूलों के ढेर लगे हुए थे। खाॅ साहब खुषमिजाज थे। उस रात परज, भटिया और बागेष्वरी के नितांत अभिनव रूप सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। ये राग मै पहले भी उनसे सुन चूका था। परंतु उस रात को उन्होंने कलाविलास दिखाया उसका ठाठ ही कुछ निराला था। इस फन की तुलना इनायत खाॅ के सितार की मींड से ही की जा सकती है। अपने अद्भूत कंठ से खाॅ साहब जिस मींड को जन्म दे सकते थे। वह कला उनकी अलौकिक और निजी सिद्धि थी जो उनके साथ ही लुप्त हो गयी।

5) संवेदना की मस्त षिल्पी

एक बार आकाषवाणी के बड़ौदा स्टेषन के प्रधान संचालक श्री पराषर ने योजना बनायी कि खाॅ साहब एक ही बैठक में मल्हार के चारों रूप पेष करें। साथ ही प्रत्येक स्वरूप का विषिश्ट वातावरण निर्मित किया जायं और उसके सौदर्य और संवेदना का मर्म स्पश्ट करने वाली व्याख्या भी प्रस्तुत की जाय। बड़ौदा रेडियो के कलाकारों को वाद्यवृन्द इस कार्य में खाॅ साहब का अनुगामी और सहायक रहे।

मल्हार के चारों स्वरूपों का विवेचन और व्याख्या करने की जिम्मेदारी मेरे ऊपर डाली गयी थी। अतः खाॅ साहब के साथ इस विशय की बड़ी रसभरी चर्चा करने का मौका मिला। उस्ताद ने भी मल्हार राग की षक्ति और प्रभाव के संबंध में दिल खोल कर जानकारी दी। उनके विभिन्न रूपों की तरजें गा कर वातावरण निर्मिर्ति की रूपरेखा बांध दी। मल्हार में अनके कलाकारों से सुन चुका था। पर उस रोज आकाषवाणी पर खाॅ साहब के कंठ से उसकी अभिव्यक्ति सुन कर आत्मा प्रसन्न हो गयी। सावन महीना था और उस रात को वर्शा भी हो रही थी। इस योगायोग ने नाद की मोहिनी की ओर भी अधिक प्रभावषाली बना दिया।
आरंभ में मेघमल्हार की सुरावली हृदय की धड़कनों के साथ ताल देती हुई प्रकट हुई। पावसऋतु में नवेली दुलहिन के अंतर में पिया की याद जाग्रत हो रही है। पर पिया घर पर नही है। मेघा गरज रहा है। काली धनघोर घटाएं डरावनी बन कर चढ़ आयी है। रैन अंधेरी है। बिजली लपक रही है। जिया पी-पी की रट लगा रहा है। मिलन की आतुरता प्राणों को आकुल कर रही है। चेतना बाबरी हो उठी है। ऐसी कारी अंधियारी रात में भी दुलहिन पियामिलन का दृढ़निष्चय करती है।
.... और सुरावली पलटा लेती है। मियाॅ मलहार के तड़पन भरे विवष सुरों से दुलहिन के हृदय की एक ही सर्वोपरि भावना व्यक्त होती है। पियामिलन। उसने निष्चय तो किया पिया से मिलने का। परंतु बिजली की चमक में और भी काली दिखाई देने वाली बदरी अनेकधार आंसुओं से रो रही हो ऐसा भास होता है। मेंह गरज गरज कर बरस रहा है। इस मूसलाधार वर्शा में विकट अंधकार में और मध्यरात्रि के सन्नाटे में जियरा पियामिलन के लिए और भी अधिक तरसता है। सन्नाटे और षांति को बेध कर पपीहा पी-पी की रट लगा रहा है। तड़पन असहय हो उठने पर अभिसारिका दुलहिन निकल पड़ती है। प्रियतम से मिलने के लिए।
षीध्र ही सुरमल्हार के सुरों का फुहारा छुट पड़ता है। मेंह बरसे जा रहा है। कभी मूसलाधार तो कभी रिमझिम - रिमझिम । ईषान कोण में बारबार बिजली चमक रही है। किसी की भी परवाह किये बिना, किसी से भी डरे बिना अभिसारिका चली जा रही है-पिया से मिलने। उनकी हृदय में एक ही कामना है अंतर में एक ही आतुरता है, अपने अंतरदेवता में समा जाने की । आर्लिगन की यह उत्सुकता उसे बल देती है। पपीहा साथ देता है। दुलहिन की छतियाॅ धड़क रही है; बैचैनी पीडा दे रही है;। फिर भी वह आगे बढ़ती जा रही है। एक ही धुन है उसके मन में; एक ही ध्येय है उसके सामने -पियामिलन।
इतने में 'बलमा बहार आयी' के बोलों में गौड़-मल्हार की सुरावली प्रकट होती है। वर्शा रूक गयी है। बादल बिखर गयी है। अंधकार कम हो गया है। दाे चार तारे भी टिमटिमाने लगे है। दुलहिन के हृदय में आषा का संचार हुआ है। कि अब पिया से मिलना हो सकेगा। आतुरताका षमन होगा। प्राणों की वेवसी का ज्वार उतरेगा। मन को चैन मिलेगा और मिलन की सेज पर अंतरात्मा को स्वर्गसुख का अनुभव होगा। इतने में कोयल कुक उठती है, मयूर केका कर उठते है, पपीहा पुकारने लगता है, और सामने से आर रहे बालम! छुलहिन प्रियतम से

मिलती है। हृदय खुषी से झूम उठता है। पावस की बहार में साजन सजनी का अद्भूत मिलन होता है। गौड़मल्हार के सुरों की खुमारी में मस्त हो कर दोनों षीघ्र ही आनंदजन्य मूच्छा में डूब जाते है।

मल्हार के चारों रूप प्रस्तुत कर के उस्ताद ने अपने अंतर को तो संवेदना के ज्वारभाटे में डुबोया ही, मेरे अंतरजगत् में भी मल्हार की बहार झलका दी। संवेदना के इस मस्त षिल्पी को मै झुक कर प्रणाम करू उससे पहले ही उन्होंने मुझे सीने से लगा लिया।

6) सुरसमाधि

सुरों के आफताब माने जाने वाले उस्ताद फैयाजखाॅ को सुनने का सौभाग्य अनेक बार मिला है। गायकवाड़ दरबार की मजलिसोंमें, कीर्तिमंदिर में, संगीत परिशदों में, आकाषवाणी पर, और अंतरंग मित्रों की महफिलों में। पर ग्रीश्म की ऊश्मा से बिहरती एक बहुत पुरानी रात में खाॅ साहब को सुनकर तो मानो आखिरी अरमान पूरे हो गये । उस समय उन्हें यक्ष्मा का राजरोग नही हुआ था। उनकी सांस षाक्ति और सुरों में ताजगी थी, रौनक थ्ी, बहार थी, लगभग दस बजे उस्ताद ने धमार का आलाप षुरू किया। धमार खाॅ साहब के घराने की अपनी गायकी है। अतः उसमें आलाप के आरोह-अबरोह की अनुपम आभा तो थी हीः सुरों की मोहिनी भी थी। धूमार का आलाप पूरा होते-होते उनकी आवाज जिगर की गहराइयों से जा मिली थी। और कंठ की मिठास पूर्णतः महक उठी थी। अतः उन्होंने जब दरबारी के स्वर छेड़े तब वातावरण देखते देखते मुखरित हो उठा। धमार के आलाप से जो वातावरण बंध चुका था। उसका ध्यान की एकाग्रता से मिलन हुआ। मानो कोई सिद्ध योगीन्द्र गंभीर स्वर से षिव की आराधना कर रहा होः उसके अंतरपध की एक एक पखुडी देवता पर समर्पित हो रही हो। इस आवाहन में धीरे धीरे अभीप्सा के अनल का संचार हुआ। संगीत की सरहदों का सूबेदार तानपूरा सावधान था ही। सांरगी आज्ञंकित दासी की तरह सुरावली का अनुसरण कर रही थी। तबला किचित् भी झांेका दिये बिना दरबारी की पालको को कंधों पर उठा कर कदम-ब-कदम आगे बढ रहा था। स्वरों का प्रपात पूरी हस्ती को तरबतर कर रहा था।

तरंतु ध्यान के तप से देवता प्रसन्न नही हुए। अतः खाॅ साहब के कंठ में से आरजू भरी भीमपालसी प्रकट हुई। प्रीति से लचकती छलकती भीमपालसी की मादक सुरावली ने दरबारी की ध्यानस्थ तपस्या भंग कर दी। उसके स्थान पर उसने आर्तता की स्थापना की। मानःलज्जा सम्मोहन और भ्ंावावेष की ऐसी रससिक्त विभावना जगायी कि कोई इंद्रिपंजित् योगी भी विवष हो जाय। आंखों की और अंगों की अदावनरी जीवन में बहुत देखी थी। पर सुरों की अदा जीवन में पहली बार देखी। भीमपालसी की सुरावली लुप्त होते होते अंतर की व्याकुलता पूरे वातावरण मेेें छा गयी। खाॅ साहब खुद भी उदास हो गये। आंखों ग्रमगीन हो उठी।

जब यह ग्रमगीनी असहास हो उठी तब उस्ताद ने भैरवी की षरण ली। प्रायः महफिलों में श्रोता फरमाइष करते है। पर इस मजलिस में सब कुछ कलाकार की मरजी पर छोड़ दिया गया था। अतः खाॅ साहब को अंतसंवेदना के अनुरूप ही उनका संगीत रूप धारण कर रहा था। आधी रात बीत गयी और ज्यों-ज्यों सवेरा पास आने लगा त्यों-त्यों भैरवी अधिकाधिक जमती गयी। भैरवी के हृदय को मधुर बैचेनी से भर देने की अद्भूत षाक्ति होती है। उसी का परिचय मिलने लगा। कवि लोग जिसे बेचैनी का माधुर्य कहते है। कुछ उसी प्रकार की अनुभूति हृदय की गहराइयों में उतरती गयी।

यह गहरे उतरने की प्रक्रिया एकदम सिद्ध नही हुई थी। पहले धमार आलापते हुए षांत साधक, फिर दरबारी छेडते छेडते ध्यानस्थ हो उठने वाले कलायोगी फिर भीमपालसी के पीछे दौड़ने वाले पागल प्रेमी अंत में भैरवी में पराकाश्ठा की आनंदसमाधि का अनुभव करने वाले अलौकिक मर्मज्ञ यो अलग-अलग रूपों में बिहर कर ही कलाकार अंतिम आत्मानंद में स्थित हुआ।

सर्जन का आनंद जब सौदर्यसाधना के विविध सोपान चढ कर आत्मस्थ होता है तब मनुश्य पामर संग्राहक मात्र न रह कर परम सृप्टा बन जाता है। और उतने समय के लिए आत्मश्री का अप्रतिम अधिकारी हो उठता है।

मैं उन दिनों महाराजा पन्ना का निजी सचिव था। हमारे युवराज की बारात नेपाल जा रही थी। फागुन के दिन थे। बसंत के आरंभ में गु्लाबी ठंड पड़ रही थी। सारा आयोजन षही ठाठ का था। सजी हुई स्पेषल टेªेन थी। सलूनों मे राजा-महाराजा विराजमान थे। पहले दर्जे के डब्बों में उनके दीवान, सचिव, रहस्य-मंत्री, अंगरक्षक आदि थे। दूसरे दर्जे में छोटे-मोटे अफसरों की कलाकारों का समुदाय था और नौकरचाकरों का जमावडा़ तीरसे दर्जे में था। इलाहबाद से गाडी की षोभा और भी बढ़ गयी। पूरी गाडी़ अषोक के पत्तों और विविधरंगी फूलों के तोरणों से सजाई गयी। दिल्ली, लखनऊ, कानपूर और कलकत्ते से निमंत्रित किय हए गवैयों, गायिकाओं, नर्तकों, नर्तकियों, विदूशकों, जादूगरों और फोटोग्राफरों का काफिला यहीं से हमारे साथ हुआ। साढेबारह बजे गाडी़ इलाहाबाद से छूटी और दिन ढलने से पहले ही हम बनारस पहुंच गये। यहां छावनी स्टेषन पर गाडी़ बदलनी थी। बडी़ लाइन की गाडी़ छोड़ कर छोटी लाइन की गाडी़ में बैठना था। मीटरगेज गाडी़ में भी पूरी व्यवस्था उसी प्रकार की थी। इंतजाम ऐसा किया गया था कि दोनों गाड़ियां एक ही प्लेटफार्म के दोनों ओर आमने-सामने खडी़ रहें ताकि सवारियों और सामान का अदल-बदल आसानी से किया जा सके। बारात में राजा-महाराजा तो सिर्फ चैदह थे। लेकिन बाकी का लवाजिमा बहुत लंबा-चैडा़ था। सब मिला कर तीन-चार सौ लोग होंगें। पर सामान और सरंजाम हजार आदिमियों से भी अधिक का था।
बनारस स्टेषन पर तो मानों इंद्रपुरी उतर आयी ।रंग-बिरंगे साफे फहराने लगे। चूडी़दार पायजामा और लंबे अंगरेखे पहने, कमर में पेटी कसे और चित्र-विचित्र पगड़ियों से सजे चोबदार हाथ में चांदी-सोने के बल्लम लिये इधर-उधर घूमने लगे। अपनी-अपनी रियासत की विषिश्ट वर्दियां पहने अंगरक्षक पहरा देने लगे। वस्त्र परिधान की विभिन्नता का तो पार नहीं था। लंबी षेरवानी, चूडी़दार पायजामा और तिरछी टोपी, ब्रीचिस, जोधपुरी कोट और साफा, अत्याधुनिक अंगरेजी सूट, इत्यादि विभिन्न प्रकार की आकर्शक पोषाके पहने हुए जनसमुदाय ने प्लेटफार्म को किसी छोटे-मोट रजवाडे का रूप दे दिया।

गाड़ियों का अदल-बदल हमें एक घंटे में पूरा करना था। दोनों गाड़ियां मेनलाइन के मुख्य प्लेटफार्म को रोके खडी़ थी। राजस्थानी, बुंदेली, हिंदी, गुजराती, बंगाली, बिहारी आदि विभिन्न भाशाओं की मिली-जुली आवाजे एक विचित्र कोलाहल का रूप धारण करके मनोरंजन का सामान प्रस्तुत कर रही थी। इनते में प्रीतमगढ़ के महाराजा, की आज्ञा सुनाई दी। उन्होंने अपने सलून के सामने मुजरे की मांग की। इतने आला मेहमान की इच्छा की अवहेलना कैसे हो सकती थी? मेजबान महाराजा का हुक्म हुआ कि कानपुर वाली जमीलाबाई से मुजरे के लिए कहा जाय। तुरंत प्लेटफार्म पर ही बिछात हुई, दोनों और कनाते लगीं, सार्जिदे जमंे और बाईजीने गला खंखार कर गाना षुरू कर दिया। इतने सारे आयोजन में एक घंटे के बजाय ढाई घंटे लग गये। ठीक याद नहीं है, पर इस विलंब के लिए रेलवे को डेढ़ या दो हजार रूपये हरजाना देना पडा़ था।

दूसरे दिन सुबह हम मोतीहारी हो कर रक्सौल पहुंचे। भारतीय रेल का यह अंतिम स्टेषन है। यहां से नेपाल की हद षुरू होती है। नेपाल सरकार ने यहां से बीरगंज तक स्पेषल गाडी़ की व्यवस्था की थी। तीसरे पहर वीरगंज पहंुचे। यहां से आगे रेल नहीं जाती। अतः बारात के लिए मोटरे, बसे, ठेले इत्यादि मिल कर कोई दो सौ सावारियों का इंतजाम किया गया था। चाय-नाष्ते की व्यवस्था षाही स्तर की थी। फिर बारात भीमफेदी के लिए रवाना हुई। रात होने से पहले ही मह वहां पहुंच गय। वहां से सड़क नहीं थी।

रात को ठंड ने अपना रूप दिखाना षुरू किया। काठमंाडू जाते हुए बीच में तेरह हजार फुट की चढाई आती है। भीमफेदी तो फिर भी तलहटी में है। आगे ठंड का जोर कितना होगा इसका अंदाजा यही से लगने लगा। गढी़ के मैदान में सैकडा़ें तंबू और खेमे गाडे गये थे। पूरा दृष्य किसी सेना की छावनी जैसा लग रहा था। यहां से आगे की यात्रा पालकियों में और घोडो़ पर होने वाली थी। बडे-बडे षहसवार भी परास्त हो जाये ऐसी सीधी चढा़ई थी। नेपाल सरकार ने पहाडी़ चढा़ई के लिए विषेश रूप से प्रषिक्षित घोडो़ की व्यवस्था की थी। तीन चैथाई लोग पालकियों में, बाकी के घोडों पर और कुछ पैदल, इस प्रकार विभाजित हो कर दूसरे दिन सुबह हमारा काफिला आगे बढा़।

भीमफेदी प्रकृतिमाता का एक सुरभ्य बालक है। पहडी चढाइ्इअ यहीं से षुरू होने के कारण यह स्थान हिमगिरी की गोद में बैठे हुए किसी छोटे से बालक जैसा दिखाई देता है। सामने फैली हुई पर्वतमालाओं को पार करते ही काठमांडू पहंुच जायेगें, इस विचार से कुछ स्फूर्ति आयी। चिसपा गढी तक चढाई बहुत कठिन नहीं थी। चिस्पा सुरक्षा की दृश्टि से नेपाल का महत्वपूर्ण केन्द्र है। अतः यहां सेना और सुरक्षा के अन्य साधनों की व्यवस्था बडे पैमाने पर की गयी है। यही से पहाडों ने अपना अतिविषाल रौद्र रूप दिखाना षुरू किया। अनेक स्थानों पर रास्ता संकारी-सी पगडंडी का रूप धारण करने लगा। एक तरह आसमान को छूने वाली विस्तृत पत्थर की दीवार और दूसरी ओर हजारों फुट गहरी खाई। पांव फिसलने का अर्थ था पांच-सात लोगों की अनिवार्य मृत्यु। पालकी में बैठी षाही सवारी भी साथ में! चढाई इतनी खडी कि दुर्बल मन वालों का तो देख कर ही हौसला पस्त हो जाय।

एकाएक बादल घिर आये और धुआंधार वर्शा होने लगी। मुष्किल रास्ता और भी खतरनाक हो उठा। लेकिन प्रकृति के इंद्रजाल का अंत नहीं। देखते-देखते बादल छंट गये। सूरज की उश्मा ने लोगों को ढाढ़स बंधाया। दो घंटे बाद फिर यात्रा षुरू हुई। दस हजार फुट की ऊंचाई पर पहुंचने पर तो प्रकृति ने मानो अपनी संपूर्ण समृद्धि बिखेर दी, अपना पूरा सौंदर्य छितरा दिया। हिमगिरी के षिखर से षुरू होने वाला इंद्रधनुश सामने की वादी में उतर रहा था। उसकी आभा से पूरा आकाष रंगीन दिखाई दे रहा था। अभी-अभी हुई मुसलाधार वर्शा से स्नात प्रकृतिसुदरी कुछ सहमी हुई सी दिखाई दे रही थी। आषंका हो रही थी कि कही फिर बारिष न आ जाय। पर रात होने से पहले ही हम सकुषल काठमांडू पहंुच गये।

हमारे महाराज साहब को रास्ते भर चिंता रही थी कि इतने राज-महाराजाओं और इतने लंबे-चैडे काफिले को व्यवस्था कैसे हो सकेगी। पर काठमांडू के एक ही सुरम्य और विषाल राजमहल में पूरी बारात कहां समा गयी। यह मालूम नहीं पडा। नौकरों के लिए तंबूओं की छावनी पड़ गयी। तीन सौ के करीब बरातियों की सेवा के लिए नेपाल के महाराजा ने कोई हजारेक नौकरों की व्यवस्था की थी। सौ से अधिक मोटरें रात-दिन खिदमत में हाजिर थी। इन सब पर निगरानी रखने वाले अफसर भी सौ से अधिक होगें। पूरी खातिरदारी षाही ढंग से हो रही थी। इंतजाम की चुस्ती और उदार हाथों से खर्ची जाने वाली संपत्ति को देख कर हमारे महाराजा भी विस्मित हो गये।

तीसरे दिन षाम को वरयात्रा निकली। काठमांडू के राजमार्गो पर समस्त उत्तरी भारत के राजा महाराजाओं के एष्वर्य का प्रदर्षन करने वाली यह बारात नेपाल के इतिहास में हर दृश्टि से अनूठी थी। बनारसी किमखाब के अचनक-षेरवानी, जरी के साफे, हीरे-मानिक और नीलम से झिलमिलाते कलगी-तुर्रे, इत्यादि रजवाडी ठाठ में सज्ज राजा-महाराजा, रंग-बिरंगी या सुनहरी पोषाकों में सजे मंत्री और सचिवगण तथा विभिन्न रियासतों की फौजी वर्दियां पहने अंगरक्षकों के दस्ते, सभी बारात की षान और षोभा में वृद्धि कर रहे थे। अतिषबाजी का तो अंत नहीं था। विभिन्न प्रकार के वाद्यों से पूरा नगर गूंज उठा। युवराज की सवारी का सोने के हौदे से सुषोभित हाथी हंसगति से चल रहा था। उसके दोनों कपालों पर मोर की आकृति चित्रित थी। मोर की आंखें हाथी की आंखों के साथ मिला दी गयी थी। अतः हाथी के कान हिलाने पर या आंखे झपकाने पर मोर जीवित मालूम देते थे। पूरा काठमांडू षहर बारात देखने के लिए राजमार्ग के दोनों ओर उमड़ पडा था।

बरात विवाह-मंडप में पहुंची। नेपाल का राजपरिवार स्वागत के लिए खडा था। नेपाली राजराणा उच्च सैनिक ओहदों की चित्र-विचित्र वर्दियों में सज्ज थे। सिर पर राजहंसों जैसे ष्वेत गुच्छों से सुषोभित षिरपेच थे। उनमें हीरे, मानिक, नीलस और मोती जडी कलगियां चमक रही थी। गले में तेजस्वी, आबदार मोतियों की मालाएं उनकी समृद्धि का ऐलान कर रही थी। बारात का स्वागत हुआ। वर को हाथी पर से उतार कर भीतर मंडप में ले जाया गया। राजाओं का परस्पर परिचय करवाया गया। सवारियां बिखर गयी। राजा-महाराजाओं और विषिश्ट मेहमानों को दरबार हाॅल के पास के विषाल और सुसज्जित दीवानखाने में ले जाया गया।

भारत के अनेक राजमहल देखे है। अनेक नरेषों की उदारता और समृद्धि भी देखी है। पर महाराजाओं के भी माहराजा लगने वाले नेपाली राजराणाओं का वैभव देख कर आंखे चकाचैंध हो गयी। ऐसा लगता था मानो संसार भर की सुंदर और सर्वश्रेश्ठ वस्तुएं ला कर यहा इकट्ठी की गयी हो। ऐष्वर्य! इतिहास और काव्य में पढ़ा हुआ यह षब्द। यहां जो कुछ देखा उससे उसका सही अर्थ समझ में आया। भोजन में, राग-रंग में, मनोरंजन में, कला-प्रदर्षन में, उत्सव में और खातिरदारी में, यहां जिस दिलदारी और उदारता का अनुभव हुआ वह वाकई अभूतपूर्व था।

भोजन के बाद मेहमानों के मनोरंजन के लिए अलग-अलग कमरों में अलग-अलग प्रकार की व्यवस्था की गयी थी। किसी कमरे में षैलकुमारी और सिद्धेष्वरी देवाी की खानदानी संगीत चल रहा था। किसी कमरे में अख्तरीबाई फैजाबादी और जीमलाबाई की गजल-कव्वाली सुनाई दे रही थी। किसी कमरें में एक रूपवान कत्थक ताल पर अपना प्रभुत्व दिखा रहा था। कहीं कोई कीमियागर तिलिस्म के खेल दिखा रहा था और कही भांड-विदूशक मेहमानों को हंसा कर उनका मनोरंजन कर रहे थे।

मध्य रात्रि के बाद कन्यापक्ष के मंडप में विवाह की आधी विधि पूरी हुई। गठबंधन और सप्तपदी की विधियां वरपक्ष के मंडप में होने वाली थी। दूल्हा दुलहिन के लेक कर अपने आवास की ओर चला। इस समय जुलूस की षान-षौकत षामसे आधी रह गयी थी। कन्या के महल के दरवाजे पर वर का हाथी आ कर खड़ा हुआ। आतिषबाजी आकाष को छूने लगी। बाजे पूरे जोष से बनजे लगे। परंतु दुलहिन की रत्नजड़ित सोने की पालकी अभी आयी नहीं थी। महाराजा ने मुझे पूछताछ करने के लिए भीतर भेजा। वहां जा कर जो कुछ देखा उससे आंखे धन्य हो गयीं और जो कुछ सुना उससे हृदय प्रसन्नता से नाच उठा।

नेपाल के राजकुल की प्रथा थी कि सप्तपदी के िलए जाने से पहले कन्या को अपनी सारी वैयक्तिक संपत्ति लुटा देनी चाहिए। यहां तक कि षरीर के कपडों़ में से भी वरपक्ष की ओर से आया हुआ जोड़ा पहन कर ही वह पीहर से विदा होती थी। नैहर अब उसके लिए अतीत की बात हो गयी। वर्तमान और भविश्य की बात है उसकी ससुराल। पूर्वाश्रम के सारे संबंधों और सारे संपर्को को यही छोड़ कर उसे परिणित जीवन में कदम रखना है। इन सारे रिष्तों से, यहा तक कि माता-पिता के नातों से भी स्वामी का स्थान ऊंचा है।

भीतर जाते ही देखा कि दरबार हाल के उस ओर से दुलहिन आ रही थी। दोनों और स्वजनों, कुटंुबियों, सखियों और सेवक-सेविकाओं की कतार लगी हुई थी। राजकुमारी रूप का भंडार थी, यौवन से पल्लवित सुकोमल वल्लरी। परंतु उसकी आंखों में समर्पण और न्योछावर के भावों की जो नम्रता थ्ज्ञी उसने उसके सौंदर्य को एक प्रकार की अलौकिकता प्रदान की थी। आगे-पीछे दास-दासी थाल पहुंचते-पहुंचते उसने सारे थाल खाली कर डाले। अपने सर्वस्व की भंेट दे देने में बिलकुल आगा-पीछा नहीं किया। अब उसके पास अपना कहा जा सके ऐसा कुछ भी नहीं बचा। सर्वाग से, संपूर्ण मन से वह अपने स्वामी की होने जा रही थी। बीते हुए कल को लुटा कर आने वाले कल का आलिंगन करने को वह उत्सुक थी। पालकी में बैठने से पहले उसने माता की गोद में मुंह छिपा कर अंतर का आवेग व्यक्त किया।

पिता की चरणरज ले कर हृदय भर लिया। बहनों और सखियों से गले मिली। सबके सामने उड़ती हुई नज़र से देखा। आंखों में भर-भर आने वाले आंसुओं को बडी़ मुष्किल से रोका और सोने की रत्नजड़ित पालकी में बैठ कर विदा हुई।

अब वह ‘अपनी’ मिट कर किसी पराये को अपना बनाने जा रही थी। अपने आपको अब उसे किसी अन्य में ढूंढना था। इस सारे अभियान में आनंद ही आदि कारण था और वहीं अंतिम परिणाम हो ऐसी अभिलाशा थी।

स्वामी में समा जाने के लिए उसने अपने अस्तित्व का विसर्जन कर दिया था। अहम का उत्सर्ग कर के नेपाल की कुललक्ष्मी आत्मविलोपन का अभिनव उत्सव मानाने के लिए पितृगृह से रवाना हुई।

24

आत्मनिवेदन

महाराजा नीलमनगर के बडे लड़के की बारात ले कर हम नेपाल गये थे। बारात में पंद्रह-सोलह अन्य महाराजा भी थे। अतः षान षौकत और ठाठ बाट की तो बात ही मत पुछिये। अन्य अनुरूप सजधज के उपरान्त आठ-दस उच्च कोटि की गानेवालियां भी साथ थी। जिन में काषाी की प्रसिद्ध गायिका षैलकुमारी का भी समावेष गया । काठमांडू के एक विषाल राजमहल में हमारे निवास की व्यवस्था की गयी थी। हमारी खातिर तवांजह षाही ढंग से हो रही थी। एक रात को महाराजाओं की मरजी हुई कि षैलकुमारी का गाना होना चाहिये। अनुचर दौडे पर खबर लाये कि बाई की तबीयत नासाज होने के कारण आने में असमर्थ है। महाराजाओं ने उनके बदले सिद्धेष्वरी को बुला लिया और महफिल जमी।

दूसरे रोज सुबह मै महाराजा साहब से इजाजत ले कर पशुपतिनाथ महादेव के दर्षन करने गया। इस यात्राधाम की महिमा पूरे भारत में फैली हुई हैं। इनके दर्षन के माहात्म्य के कारण षिवरात्रि के दिनों में नेपाल सरकार भारतीयों को काठमाडूं जाने की आम अनुमति दे देती है। समुद्र की सतह से छः हजार फुट की ऊँचाई पर स्थित इस षहर से मंदिर तीन चार मील दूर है। मोटर ज्यों-ज्यों मंदिर के पास पहुंचती गयी त्यों-त्यों उस दिषा में आने वाले संगीत के स्वर स्पश्ट होते गये। जा कर देखता हूं तो एक और भी मोटर खड़ी हुई थी। गायिका की आवाज तानपूरे की झनकार के साथ धुल कर पूरे वातावरण में गूंज रही थी। भीतर जा कर देखा। षैलकुमारी गा रही थी। साथ में कोई अनुचर या साजिदे भी नही थे। सिर्फ उनका निजी सेवक दूर बैठ हुआ था। गीले वाल कंधे पर बिखरे हुए थे। और गभर्ागृह की ओर मुख करके, कंधे पर तानपूरा टिकाये, मंुदी आंखों से बाईजी भगवान षिव के समझ आत्मनिर्भर कर रही थी। मै बिलकुल आहट किये बिना पीछे जा कर बैठ गया। कोई डेढ़ घंटे तक बाईजी प्षुपतिनाथ के समझ अंतःकरण खोलती रही। महफिलों में और आम जलसों में उन्हें अनके बार सुना था। पर आज के संगीत में तो प्रातःकाल की ताजगी और समर्पण की पवित्रता मिली हुई थी। इतना षुद्ध, सौम्य और प्रभावषाली संगीत सुन कर प्रसन्न हो गया। साधना पूरी करके उन्होंने तानपूरा एक ओर रख दिया और भगवान भूतनाथ के चरणों में साश्टांग प्रणिपात किया। कई क्षणों तक बाईजी भगवान के चरणों में पडी रही। उठ कर जलाधारी में से षिवलिंग पर टपकता पानी अंजलि में ले कर सिर पर चढ़ाया। वापस घूमते ही मै दिखाई दिया। मैने नमस्कार किया। तबीयत का हाल पूछा बाईजी ने बिना किसी संकोच के निःषंक भाव से उŸार दिया। कि तबीयत को कुछ नही हुआ। आज सुबह भगवान के चरणों में आ कर हृदय को तृप्त करना था। अतः पिछली रात अषुद्धि का अंतराय गवारा नही हुआ।

बिखरे हुए बालों का जूड़ा बांधा, भगवान के चरणों में फिर से प्रणाम किया और सेवक से तानपूरा उठवा कर बाईजी चली गयी।

25

अभिनव साक्षात्कार

फागुन महीना था। होली से कुछ रोज पहले मै लखनऊ से कलकŸाा जा रहा था। पहले दर्जे के हमारे डब्बे में सुमेरगढ़ के महाराजा किस स्टेषन से बैठे, यह याद नही। डब्बे में हम दो यात्री पहले से ही थे। मै और मेरे साथी कैप्टन जंगबहादुर सिहं। महाराजा सुमेरगढ़ के साथ थे उनके मित्र कर्नल गिरिराजसिहं । दोहपर ढल रही थी। पर संध्याछाया अभी उतरी नहीं थी। जंगबहादुर ने आदत के अनुसार षराब की बोतल निकाली । बडे करीने से प्याले सजाये। फिर सीट के नीचे से पिटारी खींच कर सोडे की बोतलें निकाली। बर्फ से भरा एक बडा थरमस निकाला।

सच्चे षराबी क लिए अकेले पीने से बढ़ कर कोई सजा नही और अंतरंग साथियों के साथ पीने जैसा आनंद नही। अतः उन्होने महाराजा सुमेरगढ़ और उनके मित्र को प्याले पेष किये। लेकिन उन दोनों ने जब सधन्यवाद इनकार कर दिया तब मेरे आष्चर्य की सीमा न रही। रजवाडे के लोग और षराब से परहेज। मेरी नजर में यह एक अचिंत्य और अप्रत्याषित बात थी। जंगबहादुर निराष हो गये। अब तो बनारस के बाद ही पीयेंगे ऐसा विचार करके उन्होने मन मना लिया।

लेकिन महाराजा सुमेरगढ़ ने न पीने का जो कारण बताया उसे सुन कर तो में आष्चर्य से स्तंभित हो गया। उन्होंने कहा, ''हम विद्याधरी देवी से गीतगोविंद सुनने बनारस जा रहे है। बडी मुष्किल से राजी हुई है। षराब पी कर आने वालों के सामने वे गीतगोविंद नही गाती। बोतल तो हमारे साथ भी है। पर अब कल बात। आज के दिन तौबा ही सही।' '

एक मषहूर गयिका के रूप में विद्याधरी देवी का नाम मै सुन चुका था। पर महफिलों में गानेवाली यह कलावती षराब पी कर आने वालों के सामने गाीतगोविंद नही गाती यह बात मेरे लिए बिलकुल नयी थी। इसेने मेरे मन में जिज्ञासा और कुतूहल उत्पन्न किया। धूपबŸाी में से उठने वाले धुएं के वतुलों की तरह उत्कंठा बढती गयी और निष्चय किया कि महाराजा सुमेरगढ़ को कोई आपŸिा न हो, तो मै भी उनके साथ जा कर विद्याधरी देवी का गाना सुंनू। एक दिन के लिए बनारस उतर जाऊंगा। मैने अपनी इच्छा महाराज के समक्ष नम्र बिनती के रूप में पेष की। उन्होंने सहर्श स्वीकार कर लिया। जंगबाहदुर के साथ तय हुआ कि वे उसी गाड़ी से कलकŸाा चले जायेेंं क्यांेकि हावडा स्टेषन पर नीलमनगर रियायत के लोग पूर्वव्यवस्थानुसार हमारी राह देखेगें। जंगबहादुर को सिर्फ इस बात का रंज हुआ कि अब षराब की लज्जत अकेले ही चखनी पड़ेगी जो लज्जत के सिवा और सब कुछ होगी। मैेने आष्वासन दिया कि बनारस या मिर्जापुर से कोई न कोई साथी जरूर मिल जायगा।

दिन ढलते हम बनारस पहुंच गये। सुमेरगढ़ के महाराजा के साथ सिर्फ एक ही साथी था बात भी आष्चर्यजनक थी। बनारस में राजासाहब की कोठी थी। स्टेषन पर मोटर हाजिर थी। विद्याधरी संबंधी बात से मै इतना आष्चर्यमुग्ध हो गया था कि सभ्यता के लिहाज से आवष्यक मानी जाय उतनी बातचीत भी न कर पाया। जो हो रहा था उसे देख रहा था और जो होने वाला था उसकी कल्पना कर रहा था।

छाऊँ-छाऊँ करने वाली संध्या आखिर छा गयी। फागुन षुद्ध द्वादषी के चन्द्र ने बंसत की उस रात्रि को अपनी मधुर ज्योत्सना से षुभ्र बना दिया था। भोजन इत्यादि से निवृŸा हो कर हम कोई दस बजे गंगा के घाट पर पहुंच गये। दो नावे तैयार थी। राजा महारजाओं के सुषोभित बजरों की सुंदरता का अंदाज मुझे था। लेकिन इस नाव को देख कर तो मन प्रसन्न हो गया। उसका आकार उसकी सजावट उसका रूप उसकी स्वच्छता सभी अत्यंत सुधड़ और सुंदर थे और उसके स्वामी के ऐष्वर्य की गवायी देते थे। पौर्वात्य ढंग से सजाये हुए किसी दीवानखाने में बैठे हो ऐसा आभास हो रहा था। लेकिन इस भावना को बहती हुई गंगा और छिटकी हुई चांदनी ने कल्पना के पंखों पर बैठा कर उड़ा दिया।

मै इस वातावरण की मोहकता का आस्वाद कर रहा था कि महाराजा के एक सेवक ने आकर कहा, ''सरकार छोटी नाव विद्याधरी को लाने के लिए भेजता हूं। अभी उनका गंगास्नान पूरा नही हुआ साजिदे सब आ गये है' ' ।

महाराजा ने सम्मति प्रदर्षित की। छोटी नाव धीरे-धीरे दूर चली गयी और करीब धंटे भर बाद लौटी। उसमें से उतर कर एक सौभ्य पर तेजस्विनी दिखाई देने वाली स्त्री हमारी नाव में आयी। सब ने उसका सम्मान किया। पीछे पीछे साजिदे भी आयी। दूसरे नाव में महाराजा के सेवकों का समुदाय था। छोटी नाव का मुख बड़ी नाव के सिरे को स्पर्ष कर रहा था। मध्यप्रवाह में आ कर दोनों नावों की आकृतियां गंगाजल पर इस प्रकार अंकित हो गयी मानो राजहंसों का जोड़ा जीवन यात्रा पर निकला हो। वह सुरम्य चित्र आज भी स्मृति पर ज्यों का त्यों अंकित है।

विद्याधरी देवी को नाम से और एक प्रतिभासम्पन्न कलावती के रूप में मै जानता था। अगर इस जानकारी से वेखबर होता तो इस स्त्री को मैने कोई योगिनी ही माना होता। वह स्वर्णचंपा के रंग की बिना किनारे की साडी पहने हुए थी। दोनों हाथों में मोगरे के गजरे, दाहिने हाथ में मोगरे का ही वाजूवंद गले में उन्हीं पुश्पों की माला और जूड़े में उन्हीं की वेणी। आयु में तो बाईजी आधी उम्र पार कर चुकी थी। पर देययश्टि किसी मध्या का गर्व हरण करे ऐसी सुडौल थी। इस प्रमल्भा को देख कर मुझे किसी षायर की एक पंक्ति याद आ गयी।

''खंडहर बता रहे है, इमारत बुलंद थी' ' ।

सांरगी से गूंज उठने वाली सुरावली ने मेरी दृश्टि को फिर से गंगालहरी पर केन्द्रित किया। फिर तो कान्हड़ा छिड़ गया और रंगदर्षी कुतूहल श्रतिमधुरता की गहराइयों में डूब गया। कान्हडे की अकथ्य मस्ती में जयदेव की कविता बहने लगी। बागेष्वरी और बिलावल के सुरवैभव ने भी जयदेव की भावसरिता को तरंगित किया और अंत में रामकली के आरोह अवरोह द्वारा आंदोलित वह कविता जब भैरवी में स्थित हो कर छंदसिद्ध सुरांगना बन गयी तब सारे विकारी भावों का षमन हो गया और अतःकरण ने एक अभिनव साक्षात्कार का अनुभव किया।

मौन फैला हुआ था। गंगालहरी पर चंद्र की उन्मादक ज्योत्सना छायी हुई थी। हंसयुगल जैसी नावें धीरे धीरे बह रही थी। संगीत अवकाष में विलीन हो गया था।

सिर्फ प्रवाह का कलकल नाद जीवित था; और कानों में जीवित थी उन स्वर्गीय सुरों की गूंज।

26

कलाकार की दिलदारी

सन् 1938 के दिसंबर में हम कलकŸाा गये थे। कलकŸो का दिसंबर अपने मादक मौसम और रंगीन वातावरण के लिए मषहूर है। उस समय वाइसरॉय का निवास भी वहीं था इसलिए अनके राजा महारजा वहां एकत्रित हुए थे। हम हमारे महाराजा के साथ ग्रांड ईस्टर्न होटल में ठहरे हुए थे। हमारे महाराजा को संगीत का सच्चा षौक था। अतः विभिन्न गायिकाएं व गवैये आते रहते थे। श्री मचीनदेव वर्मन और अख्तरीबाई फैजाबादी को पहली वार सुनने का कौका कई वर्श पहले कलकŸो में ही मिला था। अख्तरीबाई तो कभी कभी हमारे होटल में आ कर भी संगीत का स्वाद चखा जाती थी। गजल और ठुमरी-दादरी की गायकी में बेगम अख्तरीबाई का स्थान सदा से ऊंचा रहा है। उनकी आवाज में कुछ ऐसा दर्द समाया हुआ है। कि वे जब गालिब आरजू या बेहजाद की गजल गाती है तो कुंद से कुंद रसवृŸिा वाला मनृश्य भी रोमांच अनुभव करने लगता है। उनका संगीत सच्चे अर्थो में अभिजात और जीवनस्पर्षी है।

जब की यह बात है तब तो रूप और जीवन भी उनके अनुचर थे। चेहरे के नक्ष अत्यंत तीख सौभ्य पर सजीव आंखें; मूक पर मादक अदाएं और अभिजात विलास विस्तारन की उनकी अनोखी क्षमता के कारण वे सदा से एक अत्यंत आकर्शक दुर्लभ और महंगी कलावती रही है। वर्ताव की तहजीव और बातचीत की संस्कारिता भी उनकी अपनी अनूठी चीजें है। रसूम का निर्वाह अत्यंत मनोहर और गुप्तगू गजब की मीठी। व्यवहार में ऐसी चतुर और कुषल कि मर्यादा को कभी न लांधें और कोई लांधने की कोषिष करे तो उसे अत्यंत नजाकत और नफासत से रोक दें। उनका सब से बड़ा आकर्शण षायद यही था।

हम अनेक बार मिल चुके थे। महफिलों मै या महाराजा साहब की उपस्थिति में होने वाले मुजरों में। परंतु साधारण बातचीत के अलावा हमारा कोई खास संपर्क नही हुआ था। महफिल के किसी कोने में बैठ कर मै उन्हें बहुत एकाग्रता और समझने की आतुरता से सुना करता था यह उनकी पैनी दृश्टि ने षायद भांप लिया था। महाराजा का निजी सचिव होने के नाते उन्हें बतौर नजराने के हजारों रूप्ये देने के कई मौके आ चुके थे।

एक बार उनके मन में दिलदारी जाग्रत हुई। होटल से जाते समय उन्होंने ख्वाहिष जाहिर की कि मै उनके साथ नीचे मोटर तक चलूं। उनकी कला का मै कायल था ही। अतः चुपचाप नीचे गया। मोटर में बैठते-बैठते उन्होंने इच्छा प्रकट की कि मै कभी उनके घर आ कर उनका संगीत सुनूं। इससे उन्हें बेहद खुषी होगी। मैने सहर्श स्वीकार कर लिया।

निश्चित किये हुए दिन रात को नौ बजे में उनके निवास स्थान पर पहुंचा। उन्हें सचमुच हार्दिक आनंद हुआ। साजिन्दों को तैयार होने की सूचना दे कर उन्होेंने पान पेष किया। यह मेरे लिए सदा से अग्निपरीक्षा का क्षण रहा है। उनसे क्षमा मांगी कि पान तो मैने पूरी जिंदगी में नही खाया। उन्हें अत्यंत आष्चर्य हुआ पर मेरी मजबूरी को समझ गयी। साजिन्दों ने साज मिलाये और बेगम साहबा ने आलाप छेड़ा।
दो मिनट भी नही बीतें होंगे कि नीचे से खबर आयी कि नीलमनगर के महाराजा साहब पधारे है। हम दोनों को बेहद संकोच हुआ। कुछ भी कहियें मै इन्हीं महाराजा साहब का सचिव था। नाहक गलतफहमी होने की संभावना थी। लेकिन बाईजी ने तुरंत मार्ग निकाल लिया और मुझसे कहा कि मै कुछ देर के लिए उनके सोने के कमरे में बैठ जाऊं तब तक वे कुछ सुना-सुनू कर महाराजा साहब को बिदा कर देंगी। मै सोने के कमरे में जा कर बैठ गया। मै बाईजी का मेहमान था। उनकी स्थिति के अनुकूल होना मेरा फर्ज था।
मै अंदर बैठा बैठा इस विवषत पर विचार कर रहा था कि नीचे से फिर संदेष आया कि प्रतापगढ़ के महाराजा साहब तषरीफ आये है और बाईजी से मिलना चाहते है। अब हमारे महाराजा नीलमनगर की बुरी हालत हुई। यहां उन्हंे कोई देख लेे; यह उनकी षान के खिलाफ था। अतः वे वाईजी से बोले, ’’ मै बराबर के कमरे में बैठता हूं। उन्हें रवाना कर के मुझे बुला लेना।’ ’ बाई कुछ कहें उससे पहले ही दरबाजा खोल कर वे षयनकक्ष में आ गये। सामने आराम कुरसी पर मै बैठी हुआ था। बौखला कर खड़ा हुआ और नमस्कार किया। वाणी के बदले मौन और आंखों से ही बातचीत हुई। महाराज खिलाडी वृŸिा के रसिक जीव थे। परिस्थिति को भांप गये।

कुछ देर बाद वाईजी हम दोनों को बाहर दीवानखाने में ले आयी। अब संकोच को कोई कारण ही न रहा। उन्होेंने तबीयत से गाना षुरू किया। फिर तो ऐसा समाॅ बॅधा कि आधी रात बीते महफिल पूरी हुई। उस मनोहरी संगीत का स्त्रोत समाप्त हुआ तब यह कहना मुष्किल था कि हमें सुन कर अधिक तृप्ति मिली या उन्हें सुना कर। उन्होने अत्यंत सरलता पूर्वक महाराजा साहब से कहा कि मुझे कुछ सुनाने की उन्हें कई दिनों से इच्छा थी जो आज पूरी हुई। महाराज ने नजराने में पाॅच सौ रूपये देने की आज्ञा की । मैने रूप्ये नजर किये । बेगम साहबा ने इनकार कर दिया। बोली ’ ’ यह ाते संगीत के एक कद्रदाॅ को संगीतका के अदना उपासक की नाचीज भेंट है।’ ’ महाराजा भी मर्मज्ञ थे। बात का मतलब समझ गये।

जाते समय मैने सिर झुका कर स्वाभाविक ढंग से नमस्कार किया और कृतज्ञता प्रकट की। हजारों रूप्ये ले कर भी सामने वाले पर एहसान जताने वाली उस कलावती ने आंखों में कृतार्यता छलका कर बाश्रदब सलाम किया। राजामहाराजाओं के सामने भी न झुकने वाले मास्क को एक साधरण गुणग्राहक के सामने झुकते देख कर महाराजा साहब भी दंग रह गये।
इस घटना के बाद हम स्वामी और सचिव के बजाय एक दूसरे के मित्र बन गये। और बेगम साहिबा के साथ तो मेरा आजीवन धनिश्ठता का संबंध बंध गया।

27

राम दरबारी : एक अंतरकथा

मेरा मन रमता है स्मृति के साथ खेलने में, उससे अठखेलियां करने में, उसे दुलारने में। उकसा साथ मन को भाता है। संस्मरणों की जुगाली करने में उनमें फिर से जीने का आनंद आता है। आज रात का ऐसा ही मौका मिल गया। पुराने प्रसंगों की जी भर कर दावत हुई। गंगूबाई हनगल गा रही थी। दरबारी कान्हड़ा के सुर विलंबित में झूम रहे है। एकताल की धीमी, धडकती, ध्रव को संभालती लय मंथर गति से चल रही है। आवाज ने लय के साथ मिल कर गूंजना षुरू किया है। धीरे धीरे आवाज और अवकाष की सीमाएं धुंधली होती गयी। इस अभेद के अंक में करवट बदल कर स्मृति ने आंखे खोली।

(1)

1937 के साल का फरवरी महीना। बंसत की बहार थी। अबीर-गुलाल के बादल छा रहे थे। नीलमनगर में आनंदोत्सव जोरों पर था। युवराज का विवाह से झूम रहे थे। बारात में राजामहाराजाओं की षोभा होगी। अमीर-

उमरों का ठाठ होगा। दरबान चोबदार सेवा में रत रहेंगे। आट-चारण स्तुतिपाठ करेेंगे। नृत्य भुजरों की महफिलें होंगी। संगीत की तो सुरगंगा बहेगी। खुषी, उमंग और उदारता की सीमा न रहेगी। जिंदगी आनंद से भरपूर हो उठेगी।

हुंक्म हुआ। '' लखनऊ -बनारस-कलकŸाा से गानेवालियां बुलवाइये। .... आप खुद जाईये । .... सिद्धेष्वरी को होना नितांत आवष्यक है। .... षैलकुमारी के बिना भी काम नही चलेगा। .... जमीलाबाई को भी मना समझा कर लाना ही होगा। '' दूसरे रोज सुबह होते ही इस अभियान पर निकले। गायन और गायिकाओं के जानकार मकसूद मियाँ को साथ लिया। ऐसे मौकों पर मध्यस्थ और संदेषवाहक का होना अत्यंत जरूरी होता है। बिना मध्यस्थ के गायिका के घर सीधे पहुंच जाने में असभ्यता है। सामान्य सुनने वाले साधारण गाने वाली के घर जा पहुंचे, यह अलग बात है। इस में कोई हर्ज भी नहीं। पाँच-दस रूप्ये दिये, दो एक चीजें सुनी, पान खाया और उठ खड़े हुए। परंतु गायिका यदि खानदानी और मषहूर हो पुराना परिचय हों, निमंत्रण देने के निष्चित संकेत हों तहजीव और तकल्लुक के सुनिष्चित नियम हो, वहाँ पूर्वसूचना के बिना अचानक जाना उचित नही। इससे रईसी को बट्टां लगता है। आदमी की औकात जाहिर हो जाती है।

पहले लखनऊ पहुँचे। कानपुर वाली जमीलाबाई के यहाँ संदेष भिजवाया। रात को मुजरा होगा। नेपाल चलने का राजनिमंत्रण देना है। अमीनाबाद पार्क का पूरा मुहल्ला निषाजीवी प्रदेष हैं। गुणीजनों से लगा कर गुड़ों तक की कर्मभूमि है। रात को ज्यों-ज्यों धिरती जाती है। त्यों-त्यों इस इलाके की बहार भी बढती जाती है। हम कोई दस बजे जमीलाबाई के यहाँ पहंुचे। नवावी षान का प्रतीक लखनऊ। तहतीव-तकल्लुक और राह-ओ-रस्म का रंगीन केन्द्र। उसमें भी प्रतिश्ठित और प्रसिद्ध मुसलमान गानेवाली का मकान। रंगीन वातावरण। विलासी ठाठ लखनवी षतरंजी पर दूध जैसी सफेद चादर को बिछात। बिछात पर ईरानी कालीन। गलीचे पर मरून रंग की मखमल बिछी हुईं। ऊपर बैठी हुई नाजनीन सामने बैठे हुए मेहमान। छोटा सो जन्नत । जिसकी अधिश्ठात्री थी जमीलाबाई। इस विलासिनी के इषारे पर चलने वाला यह पूरा तामझाम। पर दबदबा। पूरा। बोलना चाहो तो षब्द न निकलें हँसना चाहो तो होंठ न खुलें, इषारा करना चाहो तो आंखें साथ न दें। रूप का ऐसा साम्राज्य। कला का ऐसा रोब।

' ' आइये, आइये, बडी मेहरबानी हुई बांदी पर। गरीबखाना गुलषन बना दिया आपने।' ' स्मित से रसी हुई पुरतकल्लुक वाणी। होंठों को चूम-चूम कर निकलने वाले षराबी षब्द। गीतमय और गुलाबी। हमने लडखड़ाते हुए उŸार दिया। टूटी-फूटी उर्दूः उसीका नाम कला। बाईजी इस कसौटी पर खरी उतरने वाली दिलदार कलावती थी। हमारी अनभिज्ञता के बावजूद बातचीत रस का एक एक सोपान पार करती गयी। बाई ने अपने हाथों से पान लगाया। उठ कर खुद ही पेष किया। आत्मीयता के इस पुट से बेहोषी होष में आयी। नेपाल का जिक्र छिड़ा। निमत्रंण दिया गया और स्वीकृत हुआ। दोनों और खुषी लहरा गयी।

अब मेहमान का मनोरंजन होना चाहिये। साजिन्दे आ पहुंचे। सांरगी से सुर निकले। तबले पर थाप पड़ी। वातावरण में संगीत छा गया। बाईजी ने फरमाइष पूछी। बिनती हुई दरबारी कान्हड़ा की। बाईजी के कंठ में गंुजन षुरू हुआ। आवाज ने आलाप लिया। .... और अपने नाम को यथार्य प्रमाणित करने वाली जमीलाबाई ने पूरी हस्ती संभाल कर गाना षुरू किया। और हस्ती भी कैसी? मस्त यौवन। हुस्नो जमाल का दरिया। तीखे नक्ष वाला मोहक चेहरा। कंठ में सुरों की बरकत। आंखों और हाथों की मोहक अदाएँ। कंठ के किवाड़े खोल कर सुर बाहर निकलते ही मीनार जैसी सुंदर वांहों ने मानो उन्हें झेल कर महफिल में रख दिया। विलंभित में दरबारी का जादू लहराने लगा। सुर गूंजने लगे। दरबारी में आकुलता का आवाहन करने की गजब की षक्ति होती है। विलंबित जितना धीमा हो, लय की ठेकेबंदी जितनी मंथर हो, और कंठ की मस्ती जितनी नषीली हो, उतनी ही यह आकुलता असह्य हो उठती है। इस असह्यता में से सुरों की अदाकारी जगी और चीज ने अपनी कहानी षुरू की । षब्द सुरों में समा गये। केवल नाद का अर्थ उजागर होता रहा।

क्या है यह कहानी ? कैसी है यह बैचेनी ? किस बात को लेकर है यह आकुलता? मदमाती कामिनी है। सुंदरी है। नवयौवना है। भावना में रंगी हुई है। उसने अपार परिश्रम किया है। प्रियतम को रिझाने का। पर पुरूश है कि मानता ही नही। उसका मन रमता ही नहीं। स्त्री सोचती है कि पुरूश किसी और मै रत है। पर बात ऐसी नही। दर असल पुरूश की अभी उस पर श्रद्धा नही जमीं। स्नेह पल्लवित नही हुआ। वह कुछ और अधिक चाहता है। स्नेह की वर्शा मूसलाधार होनी चाहिए। स्त्री यह समझती है। उकसी छटपटाहट और भी गहरी हो उठती है। वह अत्यंत व्याकुल हो जाती है। चिंता की बिजली चमक जाती है। पर स्नेह की वर्शा मर्यादा छोड कर नही बरसती। स्त्री तो इसी प्रकार बरसना चाहती है। रिमझिम -रिमझिम मूसलाधार नही ।अमर्याद वर्शा तो मिलने के बाद ही संभव होगी। बस यहीं दोनों के बीच गलतफहमी का अंतराय आ पड़ता है। दोनों के बीच का आकुलता का अनुसंधान करने वाला पुल टूट जाता है।

.... और दरबारी धुमड़-धुमड़ कर तिरोहित हो जाता है।
चलो मनवा। आधीरात बीते बनारस की गाड़ी पकड़नी है। सुरों का गंुजन साय चल रहा है। कभी कभी उसकी झनकार कानों में गूंज जाती है। .... और वह जन्नत? .... वह जमीलाबाई? .... क्या सब सपना था? नही, ... एक अनुभव। .... किसका?.............. तुम्हारा?........... क्यों पूछ पूछ कर पेरषान करते हो यार? .... सो जाओ।

(2)
षैलकुमारी के यहां संदेषवाहक हो आया है बाईजी बहुत खुष हुई है। रात को उनके यहां दावत है। दस बजे है। चैक की रंगत जम रही है। रात को रंगने वाले रंगीन मिजाज आने लगे है।
कालीदार कुरता और चुत्रटदार धोती हो तो सेठजी। चूड़ीदार पायजामा और षेरवानी हो तो नवाब साहब। आंखें दोनों की एक सी किसी तलाष में मस्त। चेहरे दोनों के समान-किसी अपेक्षा से आतुर। चाल दोनों की धीमी। मंजिल दोनों की एक।

षैलीकुमारी के मकान पर पहुंचे । हिंदु और मुस्लिम गायिकाओं के घरों का फर्क पहली नजर में ही आंखों में भर आया। वैसे सूक्ष्म पर स्पश्ट और तुरंत समझ में आने वाला। रोषनी की चमक अलग। बिछात का ठाठ जुदा। विलास का वातावरण भिन्न। पहला उग्र था दूसरा अभिजात। पानदान का आकार भी अलग। सजावट बिलकुल भिन्न। मादकता कम, मित्रता अधिक। खुषबू की तीव्रता कम, माधुर्य की सूक्ष्मता अधिक। आंखें मस्तीभरी और मोहक। मादक या कातिल नही।

खाना समाप्त होने पर वाईजी को नेपाल चलने का निमंत्रण दिया। उन्होंने सहर्श स्वीकार किया। माताजी को अंदर बुलाया। उन्होंने अपने हाथ से पान बना कर दिया। आंखों के अमृत में भिगो कर। फिर बोली,। ''कुछ सुनते जाइये। हमें खुषी होगी।' ' इनकार का कारण ही नही था। साजिन्दे आये। साज मिले। सौभ्य वातावरण एक क्षण में मुखर हो उठा। फरमाइष की पूछताछ हुई। जो मन में था वह होंठों पर आ गया। वही पुरानी फरमाइष दरबारी। जानता था कि बाईजी का भी यही प्रिय राग है। आंखों के संकेत से साजिन्दों को सूचना मिली। सारंगी ने दरबारी कान्हड़ा के सुर श्रलापे। बाईजी ने गला खँखारा। आँचल सँभाला। लटों को किचित् बिखेरा। प्रवाल जैसे होंठों को रूमाल से पोंछा और गुलछड़ी जैसी अंगुलियों के इंगित से दरबारी का आंरभ किया।

षैलकुमारी को पहले भी देखा था। फिर भी आज नवीन दिखाई दी। आज वह किसी महफिल में नही बल्कि अपने घर के स्वतंत्र और स्वाभाविक वातावरण में बैठी थी। पल्लवित जवानी। लावध्यमय ललित मुख। नेहभेर, मतवाले नयन। अधर मानो अमृत सरोवर के दो किनारे-पूरा व्यक्तित्व अत्यंत मधुर और आकर्शक।

नाजुक सुरों के अवगंुठन में दरबारी के दर्षन हुए। विलंबित लयकारी की मोहिनी जमी। अंतःकरण में आंनद की फुहारें छूटीं। आंखों का खुमार मानो हृदय में उतर गया। अंतरात्मा को आकुलता के आसब का स्पर्ष हुआ। नषा धीरे-धीरे गहरा होता गया। षब्द धीरे-धीरे तिरोहित होते गये। अर्थ ने भी सुरों की षरण ली। षीघ्र ही भाव, अर्थ और स्वर एकरस हो गये। हृदय की बात प्रकट हुई। प्रियतम आयें, ताक क्या क्या करूं और क्या-क्या न करूं इसकी कथा कही गयी। बात मंजूर नही हुई इस लिये षरणागति का संकेत मिला। पुरूश को पूरूशार्थ जताने का मौका मिला। उसने इषारे को ठुकरा दिया। स्त्री मानिनी । पुरूश अभिमानी। माने कौन? स्त्री ने कहा मै तेरे अंतर में बसने वाले परम रागी का आहवाहन करती हूं। पुरूश ने कहा मेरे अनुराग को स्पर्ष करने के लिए वैसा ही समर्थ आवेग चाहिये। स्त्री ने कहा उसमें सरसता है पर आवेग नही। पुरूश अपने स्थान से हटने को तैयार नही। स्त्री अपनी सौभ्यता छोड़ने को राजी नही। इस वार्तालाप मेंें आकुलता कम हो गयी। दोनों के मान की रक्षा हुई। सिर्फ स्नेह निराधार हो गया। निर्जीव आकुलता को ठेल क वह षून्य में विलीन हो गया।

दरबारी का षमन होने पर राग ने मानो स्वयं अपने आपक को बधाई दी। बाईजी को मुवारकवाद दे कर हम चल दिये। आधी रात बाद निद्रा ने पूछा कि क्या इरादा है? मन ने जबाब दिया कि तेरे आने पर सब विस्मृत हो जायगा। निद्रा बोली, 'पगले सब कुछ विस्मृत नही हो सकता। मै तेरा जतन करूंगी। कल और बहुत सा पाने के लिए तैयार हो जाय' ।

.... और निद्रा ने अपना आँचल ओढ़ा दिया।

(3)

दूसरे दिन सुबह की संदेषवाहक षुभसमाचार लाया कि सिद्वेष्वरी बाई ने याद फरमाया है। वे षाम को हमारा इंतजार करेगी:

दिन का अधिकांष भाग आराम मेंें बिताया। षाम को कुछ ताजगी और स्फूर्ति पाने के लिए गंगा में नौकाविहार किया। अजीव नगरी है यह बनारस। हर घाट का रंग अलग राग अलग विराग अलग। हर घाट पर यात्रियों की भीड़ लगी है। गंगाजल में पाप धोये जा रहे है। साथ ही जवान स्त्रियों के गीले बदन र आंखेंें सैंक रक नये रोमांच का पुण्य कमाया जा रहा है। दूसरे घाट पर साधुओं की जमात जीम हुई है। पाप पुण्य और स्वर्ग नरक की धुआँधार चर्चा हो रही है। आष्वासन दिये जा रहे है। मार्ग दिखाये जा रहे है। भजन धुन जम रही है। कोई रूपवती युवती आ कर बैठ जाती है। तो धुन मेंें और भी आवेग आ जाता है। जिनके यहाँ कपड़े रखे गये है वे पंडे यात्रियों की जेब में से पैसे चुराते है। किसी के जुते चप्पल चुराये जाते है। कोई कोई पर फिसल पड़ता है। कोई 'हर-हर गंगे' की रट में भूतकाल को भुलाने का मिथ्या प्रयत्न कर रहा है। पास के किसी घाट पर चिता जल रही है। यहाँ षरीर का अंतिम संस्कार होता है। अंत में सब का यही होने वाला है इस विचार से विपण्णता उत्पन्न होती है। पर वह स्थिर नही हो पाती। मानव जीवन है ही इतना चंचल। षाम के अस्पश्ट उत्जीत में जगम धुंधला दिखाई देता है। फिर रात को अधंेरा उतर आया। उससे लड़ने के लिए असंख्य दीपकों का प्रकाष चमका। इस दीपमाला के उजाले में रातकी दसेक बजे हमारा इक्का सिद्वेष्वरी बाई के मकान पर पहुंचा।

हम खाना खा कर गये थे। फिर भी पूछताछ और तकल्लुफ हुई। काॅॅफी तो पीनी ही पड़ी। नेपाल चलने का निमत्रंण दिया गया। सिद्वेष्वरी बाई ने कहा, कि वे नेपाल नही, नीलमनगर आयेंगी। नेपाल जाने जैसी उनकी तबीयत नही। '' बेहतर है, राजेष्वरी को नेपाल ले जाइये। वह सब को पंसद भी आयेगी। मेरे पास सिर्फ कंठ है। न रूप है न यौवन। आपके राजा महाराजाओं को रूप यौवन पहले चाहिये। कंठ बाद में । वे स्त्री के चाहने वाले है संगीत के नही। संगीत तो एक बहाना है।' ' बाईजी की बात सही थी। लेकिन हम इनकार सुनने के लिए नही आये थे। आखिर उन्हें रजामंदी देनी हो पड़ी।

मुझे यह स्त्री बहुत विलक्षण दिखाई दी। यह गानेवाली है या कोई गौरबमयी तपस्विनी ? और मकान भी कैसा है! थ्वलास मौजूद है, पर वह उछलता नही; चुपचाप कोने में बैठे रहता है। भरा हुआ षरीर। यौवन कब का बीत चुका ह। लेकिन प्रौढत्व अत्यंत प्रभामय लगता है - उन्हें षौभा देता है। संस्कारिता की गरिमा अत्यंत आकर्शक

लगती है। और बातचीत में तो बाईजी निपूण कलावती है रंग कुछ पक्का परंतु कंठ उससे भी पक्का। संगीत-सागर को तैर कर उस पार पहुंची तब कहीं स्त्री के दर्षन हों। सिर्फ स्त्री को प्राप्त करने की आषा से आने वालों को दोनों में से एक भी न मिले।

बाईजी की खानदानी बोल उठी, '' आप मेरे द्वार पर आये, मेरा धन्य भाग्य आप संगीत के पारखी है। मेरा धर्म है। कि आपको कुछ सुनाऊँ। आपको सयम हो तो में कुछ पेष करू। मै दिङमूढ़ हो गया। फिर बेहोषी में से जागा ! यह सब कुछ पहले सुना नहीं था। कम से कम मेरे लिए तो यह नया अनुभव था। सिर्फ उनकी अंतिम बात का नम्रता से उŸार दिया, ''आपको सुनना तो जीवन का अलभ्य अवसर है। किसके भाग्य में है आपके कंठमाधुर्य का रसपान करना' ' । .... इत्यादि।

पास के कमरे से साजिन्दे आये ंतब तक बाईजी ने पान बना कर पेष किया। लखनऊ में पान रास्ते में फेंक देना पड़ा था। कल रात वाला पान मेरे कमरे के किसी कोने में पड़ा होगा। आज का पान भी कृतज्ञता से लिया जरूर, पर खाया नही। बाईजी ताडू गयीं। बोली, '' गानेवाली के हाथ का पान भी न खाने वाले आप पहले ही आदमी देखें। आप पर षायद कोई जादू नही चलता।' ' मैने कहा, '' बाबूजी ऐसी कोई बात नही है। मै पान खा ही नही सकता। आदत नही है। '' फिर हँसी ने बातचीत का रूख बदल दिया। आधी रात बीते वह पान गंगाको अर्पित हुआ। हमारी यह बातचीत चल रही थी कि सारंगी छिड़ गयी और तबला बोल उठा। बाईजी ने फरमाइष पूछी। मैने नम्रता किन्तु सरसता से कहा कि उनके कंठ से दरबारी सुनने की ख्वाहिष बहुत दिनों से मन मै है। बाईजी ने आंखों से साजिन्दों को इषारा किया और दरबारी का आलाप छेड़ा। मानो किसी गहन गुफा में से निकलने वाले स्वर ने घोशणा की कि यह कंठ किसी प्रगल्भा का है। गहरी, नषीली, मस्त और घुटी हुई सुरावली महक उठी। सुर का सातत्व और लय इतने मंथर और ठसकदार कि जन्मजात कलाकार के सिवा यह वरदान किसी को नसीव ही नही हो सकता। दरबारी की अदा ज्यों ज्यों विलंवित में घुट-धुट कर जमती गयी त्यों-त्यों उसकी प्रभा और सुशभा प्रकट होती गयी। एकताल ने ऐसी आज्ञाकारी लय बाँधी मानो किसी बंदीजन की नम्र गुजारिष हो। आरोह का चढ़ाव अवरोह का उतार और आलाप का विस्तार एवं विलास ऐसे कि वरवस मन में यही भावना हो कि यह किसी मानुशी की आवाज नही, बल्कि किसी स्वरकिन्नरी की गीतमाधुरी पल्लवित हो रही है। षब्द की कम से कम सहायता ले कर सुरों ने अपनी आपबीती सुनाना आरंभ किया।

' ध्यान की किसी अकथ्य अवस्था में, हे नाथ आपको निरखा है। आपका स्वरूप मैने देखा है। आपके एक हाथ में पथ है और दुसरे हाथ में चक्र। ष्माम मुखारविंद तेजस्वी नेत्रों सहित सहित ऐसा षोभायमान हो रहा है। जैसे वरदान बरसाने वाला नीला आकष! मुकुट मोरपंख से षोभित है। और सब से अधिक षोभायमान तो, नाथ आपके चरण है। मै इन चरणों के लिए ही तरस रही हूं। इन चरणों का स्पर्या ही मेरा जीवन है। नाथ, मुझे इन्हीं चरणों की दासी होना है। सिर्फ इसी जन्म में नही; जन्म-जन्मांतर में। हे नाथ, ध्यान की उस अपूर्व अवस्था मेें आपसे मिलन हुआ था। आप आयें तब ध्यान की वही अवस्था में चाहती हूं। मेरे षरीर का कण कण आपके चरणों की कामना करता है। नाथ, में तो आप से ही डूबी हुई हूं। बेखबर हूं। इस लिए आप आयें और बेसुध होऊँ तो मेरे अस्तित्व को अपने चरणस्पर्ष का वरदान देते जाना। मै आपकी ही हंू, नाथ। ऐसी प्रार्थना करने का अधिकार भी आपने ही मुझे दिया है। मै सच कहती हूं।................. ध्यान की अकथ्य विह्यलता में आपको निहारा है।
.... आप से मिल चुकी हूं, नाथ।

धीरे धीरे दरबारी ने अपनी कला समेट ली। मै पहुंचा गंगातट पर। नीरव मध्यरात्रि मानो गंगाजल में अपना प्रतिबिंब निरख रही थी। बंसत की सुहावनी हवा चल रही थी। वातावरण मस्त और भरा-भरा। आकाष निरभ्र। मेरे मन मंडप में कामिनी, चमेली और मालती की तरह दरबारी के प्रकटीकरण की ये तीनों सुरभित स्मृतियाॅ महक रही थी। सदा महकती रहेेंगी।

दरबारी षिव-संकल्प को धारण कर सकने वाला गंभीर और धनीभूत राग है। गानेवाले की गहनता की परीक्षा करें ऐसी उसकी क्षमता हैं कंठ की कसौटी करे ऐसी उसकी बुनियाद है। अंतर की व्यथा को यथातथ प्रकट करे ऐसी उसकी सचाई है। आकुलता का तो मानो वह आराध्यदेवता है। आर्तता का अंतर्यामी है। तीन रातों में तीन अलग-अलग कंठों ने उसकी अंतरकथा प्रकट की। राग एक ही; परंतु जिसके हृदय पर आरोपित हुआ उसीकी संवेदना का वाहक बन गया। गजब की मानी जायेगी उसकी हस्ती। बला की होती है उसकी मस्ती ।

(4)

वर्तमान में आओं, मनवा..........................।

आज रात को गंगूवाई हनगल के कंठ से उसी घुटी हुई सुरावाली में लिपटे हुए दरबारी को सुन कर मानमंडप फिर से महक उठा। याद आ गयी पुरानी बातेेंं। क्यों कि अंतरतम में विराज रही थी दरबारी की मूर्ति। मानो जीम हुई मिलन की आकुलता। .... ध्यानस्थ, दीप्त और तपोमय।

28

बिहाग का आलाप

’ नूपुर’ नामक संगीत संस्था की मजलिस में पंडित रविषंकर का सितारावादन था। ’नूपुर’ संगीत के जानकार और कद्रदान रसिकों की संस्था है। अतः वातावरण में सम्पूर्ण षांति थी। ठीक नौ बजे रविषंकर आये और उन्होेंने सितार मिलाना षुरू किया। रविषंकर की तरह उनका सितारा भी दर्षनीय है। उसका अपना अलग ही रूप है। उसका नाजुकपन अत्यन्त मोहक है। नीचे के तूंबे में मानो संगीत का पातालकूप है और ऊपर की छोटी तूंबी में मानो उसकी सबील है। अतल कुएॅ की गहराई में से सुर निकलते है। और ऊपर की प्याऊ में से वितरित होते है। कलाकार के दोनों हाथ इस सुरचक्र रूपी रहट को चलाते है। रविषंकर के सितार को उनकी गोद में देख कर बहुत पुरानी एक भावना फिर से जाग्रत हो गयी। स्त्री की गोद मेेंं यही साज धीरोदात्त प्रियतम का रूप धारण कर लेता है। इस साज का यही जादू है। उसे धारण करने वाले पर भी इस जादू का संमोहन चलता है। षायद यही कारण है कि ‘सितार’ षब्द का प्रयोग परिस्थिति-अनुसार पुल्लिंग या स्त्रीलिंगी दोनों प्रकार से होता है।

पंडित रविषंकर उस्ताद अलाउदीन खां के घराने के कलाकार है। इस घराने में तानसेन के प्राण है। उसकी चीजे और रागरूप् सदा से निरूपम रहे है। आलाप इस घराने की अपूर्व विषिश्टता है। परंतु इस परंपरा का अनविंध सौंदर्य-मवतक है उसकी खींच। सुरों को खींच के तंतुओं पर कंपा कर, बहला कर और झनझना कर उनमें से अभिनव भावसंवेदना का गहरा और प्रभावषाली नाद उत्पन्न करना इस घराने की मौलिक उपलब्धि है।

रविषंकर ने छायानट के आलाप से सितार वादन का आरंभ किया। पास बैठे हुए तबलावादक उस्ताद अल्लारखा ने थाप देकर अपने सज्ज होने का इषारा किया। छायानट का प्राण है अनुकंपित जिज्ञासा। उसका संचार-विहार अत्यंत ठाठ से होता है। बजानेवाले और सुननेवाले, दोनों के धैर्य की कसौटी करे ऐसा उसका कलेवर है। चंचल और जल्दबाज लोग षीघ्र ही आकुल हो उठे एसी मंथर उसकी गति है, धीरता और गौरव से भरी। इधर रविषंकर भी आलाप के पक्के सरिया है। आलाप में ही उनका अंतर तरबतर हो पाता है। इसी के जरीये वे भाव की गहनता और वेधकता का रंग जमाते है। आलाप में वे अपनी समूची हस्ती को तिरोहित कर देते है। समय के बंधनों के प्रति लापरवाह हो उठते है। ऐसे समय उनकी आंखे मंद जाती है और वे सुरों के अंतर में गहरे उतर जाते है। मदहोषी के इन क्षणों में वातावरण को जकड़ लेने वाली मोहिनी उनकी है या उनके साज की, यह निर्णय करना मुष्किल हो जाता है। छायानट का आलाप विकसित होता जा रहा था। चारों ओर नीवरता छायी हुई थी।

मेरे पास वाली सीटों पर ज़िदगी एक और ढंग से प्रकट हो रही थी। ध्येय षायद एक ही था, माध्यम अलग था। एक नौजवान जोडा़ पास ही बैठा था। पुरूश संगीत में मस्त हो कर अस्तित्व भूल चुका था जबकि स्त्री षायद

कुछ समझ न पाने की वजह से ऊब रही थी और बेचैन हो रही थी। अपनी बेचैनी से वह पुरूश को बार-बार अवगत करा रही थी। उसकी समाधि को तोड़ने का प्रयत्न कर रही थी। पर वह था बिलकुल बेखबर। निर्विकार समाधि में डूबा हुआ। स्त्री अधिकाधिक विचलित होती जा रही थी। क्रमषः उसकी हरकते इर्द-गिर्द के लोगों का रसभंग करने लगी। कुछ हलचल हुई, कुछ आवाज़े कसी गयी। स्त्री क्षुब्द हो गयी। कुछ लज्जित भी हुई। फिर षांत हो गयी।

आलाप के सुरों को समेट कर रविषंकर ने विलंबित में गत षुरू की। तबले की लय से वातावरण प्रकंपित हो उठा। वह स्त्री अब कुछ अधिक दिलचस्पी लेने लगी। विलंबित से दुरत और द्रुत में से जोड़-झाला की कारीगरी होने से वातावरण में चांचल्य फैल गया। पौन दो घंटे की इस भरपूर दावत से हृदय प्रसन्न हो गया।

मध्यांतर के बार रविषंकर ने विहाग का ठाठ मिलाया। तबला मिला और सुर बह निकले। बिहाग उन्मत एकता और एकाग्रता का वाहन है। उसकी स्वरूप रचना में गहरी मस्ती के ताने-बाने है। उसका कलेवर है एकनिश्ठ प्रीति। स्वभाव से वह धीरोदात है। उसका विहार मस्त होने पर भी सुधीर होता है। वाणी बोले बिना ही अपना काम करती रहती है। संपूर्ण समा बांधने पर तो किसी भी वासकसज्जा को व्याकुल कर दे ऐसा उसका प्रेमविहार होता है।

विहाग का आलाप ऐसी ही अद्भुत अदाओं से बहल रहा था। विहाग राग कंठ या साज में से अनेक बार सुना है, परंतु आज के विहाग की स्वरूप्छटा कुछ निराली ही थी। कलाकार के मन की नमालूम कैसी-कैसी अभिलाशएं, कैसे-कैसे स्वप्न और कैसी-कैसी संवेदनाओं का प्रकटीकरण हो रहा था। हृदयन जाने कहां-कहां की अटपटी बाते कह रहा था। लेकिन मूल बात को हाथ भी नहीं लग रहा था। कलाकार की उंगलियां कहां-कहां का सफर कर रही थी। पर सभ पर नहीं ठहर रही थी। पास आ-आ कर न जाने कहां फिसल पड़ती थी। फिर एक मोड़ लेकर पास आने का आभास दे कर दूर कही ऊपर चढ़ जाती थी। कभी-कभी बिलकुल नज़दीक आ कर नीचे सरक जाती थी। इस प्रकार की लंबी स्वरयात्राएं कर के आखिर रविषंकर ने सम पर उंगली रखी। उनके नयन भी तभी खुले और हमारे भी तभी परंतु इस दरमियान नामालूम क्या परिवर्तन हो गया था कि पूरा जगत नूतन, बदला हुआ दिखाई देने लगा।

ऊबी हुई वह चंचल नवयौवना पति के कंधे पर सिर रखे गहरे निद्रा-विहार में खोयी हुई थी।

29

हरिखंभोजी की आर्तता

कंठ था साज के कलाकारों को आम जलसे में सुनने की अपेक्षा पांच-सात जानकारों की वैयक्तिक मित्रमंडली के बीच सुनने में अधिक आनंद आता है। यह अनुभूति बिलकुल भिन्न प्रकार की होती है। आम जलसों में कलाकारों को अनेक प्रकार की मर्यादाओं का निर्वाह करना पड़ता है। जबकि घनिश्ठ और सहृदय मित्रों के बीच वह मुक्त विहार कर सकता है। इस स्वाधीनता जनित चेतना का स्वैरविहार अनन्य सुंदर होता है।

एक बार बड़ौदा में मेरे एक मित्र के यहां प्रसिद्ध संगीतज्ञ बाहादुरखां तीन-चार रोज के लिए ठहरे थे। सुबह, दोपहर, षाम, जब देखे तब वे रियाज करते रहते। चाहे जिस राग को चाहे जिस समय और चाहे जिस समय तक घोटते। किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं था। अनुषासन का दबाव नहीं था। थी मात्र मुक्त और स्वाधीनता। बहादुखां उस्ताद आलाउदीन खां साहब के खानदान के कलाकार थे। नौजवान है। अभी विकास हो रहा है- पर होनहार है। उनका भविश्य उज्जवल है। स्वभाव से अत्यंत मधुर और मनमौजी है। संवेदनाषील हृदय मिला है। उदात्त मैत्री के चाहने वाले और निबाहने वाले है।

ऐसी ही एक उन्मुक्त भोर में रियाज़ हो रहा था। उससे पहले मैंने उन्हें दो-एक बार सुना था। बातचीत भी हुई थी और स्नेह का आदान-प्रदान भी हो चुका था। उनके मुलायम हाथ का मेरे मन पर गहरा प्रभाव पडा़ था। उस रोज़ सुबह हम बैठे थे कि बहादुरखां ने एक सुरमाधुरी छेड़ दी। ऐसी उदास सुरावली सुन कर एक क्षण के लिए तो श्रुति चैक उठी। राग का ठाठ बिलकुल नया था। पहले कभी इस प्रकार के सुर सुने हो ऐसा याद नहीं आया। पूछने पर मुस्करा कर उत्तर दिया कि हरिखंभोजी है। वाह, क्या इस राग का मिज़ाज! कैसी लापरवाही! थ्कतनी स्वाधीनता! पहले ऐसा भांस हुआ जैसे कोई पुजारिन मंदिर में जा रही। अंतःकरण उदास हो गया। फिर भी दुर्बलता का अनुभव नहीं हुआ। कुछ अकेलापन की भावन हुई, फिर निराषा की नहीं।

अजीब थी यह सुरावली। गजब की थी उसकी षक्ति। गत घुट रही थी। उसने कुछ अस्वस्थता निर्माण की। कुछ बेचैनी का भी अनुभव हुआ। पर श्रद्धा अडिग रही। फिर गत समाप्त हो गयी। पर सुरों का षमन नहीं हुआ। प्रतिध्वनि गूंजती रही। पहली बार हरिखंभोजी सुन कर कुछ अनजाना और अप्रत्याषित अनुभव हुआ। कुछ अस्पश्ट सा। इसका कारण समझ में नहीं आया। पर, सब मिला कर, वे स्वर स्मृतिपट पर गहरे अंकित हो गये।

इसके कई वर्श बाद उस्ताद अली अकबर खां बडौदा के किसी सार्वजनिक जलसे में अपनी कला का आस्वाद कराने आये थे। षायद मरहूम उस्ताद फैयाज़खां से संबंधित कोई समारोह था। याद नहीं क्यों, पर इस जलसे में जाने की विषेश इच्छा नहीं हो रही थी। पर एक रोज सुबह रियाज़ के समय उपस्थित रहने का मौका मिला।

अली अकबर खां उस्ताद अलाउदीन खां के सुपुत्र है। बडे समर्थ और सर्जक सरोदवादक है। आज अपने देष में उनके पिता को छोड़ कर उनकी जोडी़ मिलना मुष्किल है। उनका व्यक्तित्व आक्रमक या उग्र नहीं, बल्कि सुधीर और षांत है। स्वभाव से अत्यंत मृदु और मितभाशी। अपने विशय की समझ अत्यंत गहरी और व्यापक। लेकिन संगीत के मूलतत्त्वों की गहन जानकारी से भी अधिक आकर्शक है। उनका कोमल और लज्जाषील व्यवहार।

उस्ताद फैयाज़खां को अलग-अलग अवसरों पर एक ही राग गाते हुए सुना है। हर बार समयभेद से राग का स्वरूप और उपज भिन्न मालूम दिये है। एक ही राग को इस प्रकार अनेक रूपें में और विभिन्न भावसंवेदनों में मढ़ कर विभिन्न प्रकार से प्रकट करने की कला किसी बिरले संगीत-उपासक को ही साध्य होती है। अली अकबर इसी कोटि के सुभागी कलाकार है। तानसेन के घराने की परंपरा का वरदान तो उन्हें मिला ही है, अपनी स्वतंत्र प्रतिभा के नल पर उन्होंने इस धरोहर को निखारा भी है।

रविषंकर की तरह उनकी कला में भी आलाप का विहार विषेश होता है। पर मुख्य बात है उनके घराने की खीच का लावण्य। खींच पर अली अकबर का प्रभुत्व षब्दातीत है, आलोकिक है। वहीं सात सुर। पर उनके संवादी और विसंवादी आघातों में से अनेक प्रकार की विविधता का निर्माण करने की और जीवन की गहराइयों में से नये-नये भाव और नित्य नूतन संवेदनाओं को चुन कर उन्हें सौन्दर्यमय रूप देने की उनकी साधना किसी को भी विस्मित कर दे ऐसी निश्ठावान और मौलिक है।

लेकिन मैं तो फिर भी यही कहूंगा कि इस कलाकार की संगीत-साधना का सौन्दर्य-षिखर है उसकी सहज और प्रसादभरी विनम्रता। उनकी आत्मश्रद्धा इतनी स्वायत्त और बलवती है कि उसे अपना अस्तित्व जताने की आवष्यकता ही नहीं पड़ती। वह अगोचर है कि उसे अपना प्रभाव प्रकट कर देती है।

रियाज षुरू होते ही अली अकबर ने फरमाइष पूछी। मुझे हरिखंभोजी की याद आ गयी। सोचा, इस राग का उनसे बढकर जानकार और कौन हो सकता है? इस चीज़ को उनसे अधिक रसिकता से कौन बहला सकता है? मैंने अपनी इच्छा व्यक्त की। उन्होंने तुरंत पकड़ लिया। मुस्करा कर कहा, ''मालूम देता है, बहादुर से गत सुनी है।' ' मैंने आंखे झुका कर स्वीकार किया। वे बोले, ''गत तो आप सुन चुके है। आज कुछ आलाप का रियाज़

करें।' ' उन्होंने सरोद को ठीक से गोद में जमाया। किसी कलाकार को अपने साज को संतान के जैसी देखभाल और स्नेह से गोदमें जमाते देखना अत्यंत आनंद का विशय होता है।

हरिखंभोजी के सुर प्रकट हुए। गत में उसकी काव्यमय गति का आस्वादन हुआ था। आलाप में उसका धीर विाहर सुन कर अंत करण मुग्ध हो गया। हरिखंभोजी का अंतिम परिणाम है आर्तता। उसकी आत्मा है विरहिणी की। उसकी अवस्था है वियोग। उसका स्थायीभाव है दर्द। फिर भी मिलन उसका लक्ष्य है और आषा उसका प्राण। इस लक्ष्यस्थान तक उसका संचार होता है बेचैनी और आर्तता की राहों से।

अलाप के दरमियान कलाकार के अंतरमन से संपर्क होता गया। आलाप के सुर ज्यों-ज्यों विस्तृत होने लगे त्यों-त्यों विरह की कसक का चक्र और भी वेग से घूमने लगा, आषा का उत्कंप भी बढ़ता हो गया। मिलन का आष्वासन और वियोग की आषंका का क्रमषः उदयास्त होता रहा। कलाकार के हृदय की गहराई में से मनोमंथन की एक ऐसी हृदयंगम कहानी बह निकली कि आर्तता की लपट से पूरा अस्तित्व उद्वेलित हो उठा। धीरे-धीरे इसी में से सांत्वना प्रकट हुई। और आवाहन की वाणी में तो निरा प्रेम भरा था। विरहणी को मानो ऐसा लगा कि सर्वस्व का समर्पण और अहम का संपूर्ण में से उत्कट भक्ति का उदय हुआ। निव्र्याज और निरामय प्रेम की नितांत पराकाश्ठा का नाम ही तो भक्ति है। समर्पण उसकी आत्मा है। अपने आपको अर्पित करके ही उसे पाया जा सकता है।

कलाकार ने हरिखंभोजी के सुर समेटे तब प्रेम के संस्पर्ष से पूरा वातावरण तरबतर हो चुका था। नटवर नागर को प्राप्त करने के लिए मीरा षायद इसी प्रकार के समपर्ण की श्रद्धाजलि लेकर वृन्दावन से द्वारका गयी होगी।

इन कुछ ही क्षणों की उत्कटता से ऐसा अनुभव हुआ मानों जिंदगी नयी राहों से होकर गुजरी हो। मानो पुनर्जन्म हुआ हो।

30

लय की मोहिनी

लय की विविध लीलाएं सुनने के अनेक अवसर प्राप्त हुए है। काठमांडू की षाही बारात में एक कलावंत कत्थक को नृत्य करते देखा था। उसके त्रिताल की तृत्यलय ही इतनी आकर्शक और मोहक थी कि लोगों ने उसे ताडे नाचने ही नहीं दिये। बस त्रिताल की लय में ही घुघरूओं की वाणी प्रकट होती रही। और लय भी कैसी? षुरू में तबले पर तीनताल का आरंभ होते ही उसने घुघरूओं की झंकार और हाथ की तालियों से जो लय सिद्ध की, वह आखिर तक ऐसी जमी रही कि उसका साथ छोड़ने की किसी की इच्छा ही नहीं हुई।
दूसरा प्रसंग बडौदा का है। कलाकेन्द्र के तत्वाधान में जयपुर के प्रसिद्ध कत्थक गौरीषंकर ने कत्थकनृत्य पर एक सोदाहरण व्याख्यान दिया था। उस समय उन्होंने जयपुर घराने की कत्थक षैली में त्रिताल की लय का अनिवार्य महत्व प्रतिपादित किया । उदाहरण में भी तीनताल की लय की ऐसी षास्त्रषुद्ध और सातत्यपूर्ण अभिव्यक्ति की कि लखनऊ घराने की मंथर और मधुर लय भी उसके सामने फीकी पड़ जाय।

इसके अलावा मंत्रजागर के अवसरों पर ऋग्वेद और यजुर्वेद के मंत्रों की लय माधुरी और सामगान की मंत्रमुध कर देने वाली लयचारूता भी लय की षक्ति प्रस्थापित करती है। परंतु एक बार इन सबसे अलग प्रकार के अनुभव ने भी यही सिद्ध किया।

बहुत वर्शो पहले उस्ताद अलाउदीन खां साहब नीलमनगर में बैंण्ड मास्टर थे। यह बात अब बेहद पुरानी हो चुकी है, फिर भी मजेदार है इसलिए कहने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहा। युवराज का विवाह हो कर बारात काठमांडू से लौट आयी थी। बारात का बहुत सा तामझाम भी साथ ही वापस आया था। रास्ते में कुछ कलाकार बनारस या इलाहबाद उतर गये थे। अधिकांष बारात के साथ वापस नीलमनगर आये थे।

षाम ढल चुकी थी। महल के मुख्य दीवानखाने में संगीत की महफिल जमी हुई थी। अनेक राजा-महाराजा और उनके आत्मीय-स्वजन उपस्थित थे। गायिका कलावती थी सिद्धेष्वरी देवी। जयजयवंती की एक गतिमान चीज वातावरण में बहल रही थी। महफिल मस्ती से झूम रही थी। बराबर वाले कमरे में षराब की व्यवस्था थी। राजा-महाराजाओं के सिवा अन्य लोग उस कमरे में जा कर सुरा की आराधना कर आते। नरेषों की इच्छानुसार विभिन्न प्रकार की मदिरा वहीं पेष हो जाती।

नीचे बाग में बैण्ड बज रहा था। गाने की महफिल से काफी फासले पर कुछ सामान्य लोग जो गाने की महफिल में सम्मिलित नहीं हो सके थे, वे इसी आनंद में डूब रहे थे। बैण्ड पर तिलक-कामोद की गत बज रही थी। सुर कुछ ऊँचे उठने पर बीच-बीच में गाने की महफिल तक भी पहुंच रहे थे। सिद्धेष्वरी की जयजयवंती की चीज़ समाप्त हो चुकी थी और अब वे पहाडी़ का आलाप कर रही थी। पर न मालूम क्यों, आलाप जम नहीं रहा था। हवा में बह कर आने वाले तिलक-कामोद के सुर उसके साथ टकरा रहे थे। तिलक-कामोद गजब का षक्तिषाली राग है। उसमें आतुरता का उत्साह और किसी नवोढा़ के प्राणों की सी कसक होती है। उसके सामने पहाडी़ के सुर जमने से पहले ही बिखर रा रहे थे। किसी की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। पर गानेवाली की बेचैनी बढ़ती जा रही थी। विसंवादी सुरों की हवा जब असहाय हो उठी तब सिद्धेष्वरी बाई गाते-गाते रूक गयी। अर्ज़ गुजारी की बांदी की बेअदबी मुआफ हो, पर वह इस समय नीचे बाग में जा कर इस बेचैन करने वाली गत को सुनने की इजाजत चाहती है। इसके बाद किसी की सम्मति की प्रतीक्षा किये बिना बाईजी महफिल छोड़ कर उठ खडी़ हुई और नीचे पहुंची।

डसके बाद भी महफिल बरखास्त तो नहीं हुई, पर रस का वातावरण बिखर गया और फिर रंग नहीं जमा। संगीत के सच्चे षौकिन दो-चार महाराजा भी षराब के प्याले हाथों में लिये बैण्ड के चबूतरे पर जा पहुंचे। बैण्ड के अनेकविध, पर एकाग्रताके कारण संवादी हो उठने वाले स्वरों में से तिलक-कामोद की बहुरंगी छटा बिखर रही थी। अलाउदीन खां साहब बीच में खडे होकर एक छोटी-सी छडी़ के इषारों से बैण्ड का संचालन कर रहे थे। वातावरण मे जीवन की मस्ती नृत्य कर रही थी। बैण्ड-मास्टर इसी मस्ती में बेहोष थे। कौन आया, कौन गया, कौन सुन रहा है, कौन नहीं आदि बातों से बेखबर, अपने आप में डूबे हुए। उनकी समय चेतना सुरों के साथ रास कर रही थी। लय की मोहिनी ने पूरे वातावरण में मुग्धता महका दी थी। सम पर आते ही उस्ताद ने छडी़ के इषारे से संगीत की समाप्ति कर दी। सुर मूक हो गये, पर उनका षमन नहीं हुआ। प्रतिध्वनि कानों में गूंजती रही।

च्बूतरे पर खडे हुए महाराजाओं ने तालियां बजा कर उस्ताद की सराहना की। वे सिर झुका कर इसका स्वीकार भी नहीं कर पाये थे कि सिद्धेष्वरी देवी ने झुक कर उनकी चरणरज माथे पर चढा़यी। उस्ताद को कुछ आष्चर्य तो हुआ, लेकिन फिर षायद समझ गये।

बाईजी ने किसी षंका की गुंजाइष नहीं रखी। हंसते हुए बोली ‘‘उस्ताद, आपके सुरों की मोहिनी में मेरा पहाडी़ उलझ गया। रास्ता भूल गया। आज महफिल जम ही नहीं पायी।’ ’

और वाकई, उस रोज फिर गाने की महफिल नही ंजम सकी।

31

ठाकुर, तुम षरणाई आया!

पंडित भीमराव षास्त्री षांतिनिकेतन के संगीतगुरू थे तब उन्हें सुनने का मौका नहीं मिला था। षांतिनिकेतन में उनके विशय में और उनके गौरवषाली कंठ के संबंध में बहुत कुछ सुना था। गुरूदेव को उनके कंठ की विलंबित लय बेहद पसंद थी। शड्ज का उन्मुक्त विहार उनकी अपनी निराली खूबी थी। लेकिन ये सब सुनी हुई बातें थी। प्रत्यक्ष अनुभव की नहीं।

उन्हें सुनने का सौभाग्य तो वर्शो बाद बम्बई के फलोषिप स्कूल में मिला। षायद सन 32 की बात होगी। गांधीजयंती का दिन था। स्वातंत्र्य-प्राप्ति से पहले का जमाना। गांधीजयंती तब तक घिसे हुए सिक्के की तरह निस्तेज, षुश्क और निश्प्राण सरकारी आडंबर की कवायद मात्र नहीं बन पायी थी। इस उत्सव को उन दिनों हार्दिक उत्साह के साथ मनाया जाता था। उसमें प्रेम के पराग और श्रद्धा-भक्ति की आर्द्रता, दोनों के दर्षन होते थे। सुबह साढे दस बजे से ही कार्यक्रम आरंभ हो गया और पंडित भीमराव षास्त्री ने तानपुरा छेड़ा। उनके प्रगल्भ कंठ में से आसावरी के सुर बहने लगे। तानपुरे के सुर और कंठ के सुरों के बीच अभिन्न संवादित्व हुआ और इस संवाद में से षब्दावली प्रकट हुई:

ठाकुर, तुम षरणाई आया।
डतरि गयो मेरे मनको संषा,
जब ते दरषन पाया।। ठाकुर ।।

टासावरी की हवा बंध गयी। इस राग की आत्मा है अभिलाशा। उसके ठाठ में धीरज का पुट है और घृति में है उत्कट आकुलता। परंतु इस आकुलता में श्रद्धा की संास चलती है। विलंबित के षब्द ज्यों-ज्यों बहने लगे त्यों-त्यों भाव की छाया फैलने लगी। मेरी आंखे गायक को निरख रही थी। फिर वे अपने आप मुंद गयीं। श्रुति संवेदनषील हो उठी और सुर भाव में पग कर अंतर में उतरने लगे:

अनबोलत मेरी बिरथा जानी
अपना नाम जपाया।
दुख नाठे सुख सहजि समाये
अनंद अनंद गुन गाया ।। ठाकुर ।।

ऐसा लागा मानो अंतर में कुछ उथलपुथल मच रही हो। किस चीज की सरसराहट है यह? क्या उत्कंठा सचमुच जाग्रत हो गयी? अंतःकरण में जिंदगी कुछ कह रही थी-कुछ कर रही थी। समझ में न आने वाला कुछ भीतर ही भीतर हो रहा था। यह उन्मुक्त रूदन नहीं था। रूदन से पहले की सुबकियां निःष्वास छोड़ रही थी। अंतर्मन हलका होते ही उसमें व्यथा का आरोपण हुआ। लेकिन उसके प्रस्फुटित होने से पहले ही प्रतीक्षा का आष्वासन आ पहुंचा। ... वेदन टल जायेगी। ... प्रिय के दर्षन होते ही सुख का महासमुद्र लहराने लगेगा। हिचकियां रूक गयी। आनंद के आसार दिखाई देते ही अंतर का वातावरण बदल गया और आवेग के साथ श्रुति स्वर को खींच लायी:

ठाकुर, तुम षरणाई आया।

अंतरात्मा कुछ कहने को उत्सुक हो उठी। कुछ दिखा जा सकता हो, तो देने का मन हुआ। क्या दिया जाय? ... कुछ भी।... जो हो, वही। व्यथा के साथ सांत्वना भी मौजूद थी। दोनों का समर्पण किया जा सकता था। लेकिन किसे? ... अलबत्ता, ठाकुर को। ... लेकिन ठाकुर है कहां? प्रष्न की प्रतिध्वनि गूंजी और अंतर ने जवाब दिया। वह कहां नहीं है? फिर सब कुछ सुनसान हो उठा। इस सन्नाटे में षब्द मुखर हुए:

बाँह पकरि कढि लीन आपुने
गृह अंध कूप ते माया।
कहै नानक गुरू बन्धन काटे
बिछुरत आनि मिलाया।। ठाकुर।।

आसावरी की आरजू की छाया घुट कर जम गयी। अंतर नीरव था, पर उसमें अंधेरा नहीं था। प्रकाष था, पर परखानी जा रहा था। पर था जरूर। अंतदृश्टि के सामने थी निरी षून्यता। अंधेरा नहीं था, फिर भी, कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था। कैसी अजीब बात थी। कुछ करना है, पर हो नहीं रहा। क्या करना है सो समझ में नहीं आ रहा। कैसी परवषता है। कैसी असहायता है। कैसी निराधारता है। इस निराधारता को स्पर्ष करते हुए सुर फिर बोल उठे:

ठाकुर, तुम षरणाई आया।

और मानो इन षब्दों में, इस भाव में, पूरी चेतना समा गयी। तानपूरे के तार षांत हो गये। बदली हुई फिजा में अपने आप मुंद जाने वाली आंखे अब अपने आप खुल गयी। अंतःकरण गद्गद् हो उठा। आंखों की कोरों में आंसू उभर आये। सामने देखा तो पंडित भीमराव भी आंखें पोछ रहे थे। धीरे-धीरे सभा विसर्जित हो गयी। पर वातावरण का विसर्जन नहीं हुआ। उन सुरों की भनक उसी आरजू को साथ ले कर कानों मंे गूंजती रही:
ठाकुर, तुम षरणाई आया।
(2)
इसके बाद तो न मालूम कितने वर्श बीत गये। ंिजंदगी ने अनेक रूप बदले। अनेक प्रकार की धूपछांव से गुजरना हुआ। आज बीच में तीस साल का लंबा अंतर पडा़ है। उस गीत की झंकार कभी की षांत हो गयी है। अब तो उसकी याद भी फरियाद नहीं करती। व्यथा, वेदना, विशाद, सब का अनुभव हुआ है, पर वैसी उत्कट आरजू का अनुभव नहीं हुआ। भाग्य की लीला तो सबको देखनी पड़ती है। जीवन के सुखदुख का अनुभव भी सबको करना पड़ता है। वह लीला भी जी भर कर देखी है और दुखों का अनुभव भी पेट भर के लिए विश्रांति भी मिली है। आषा का उत्कंप भी हुआ है। यह सब संसार में से ही आया और संसार में ही समाय गया। जहर भी उसी में से प्राप्त हुआ और अमृत भी उसी में से।

आज तीस साल का लंबा अंतर लांघ कर जिंदगी यहां पहंुची है। भाग्य को भी साथ लायी है। इसे भाग्य की लीला नहंी तो और क्या कहेंगें? हिमालय की गिरिमाला की अपूर्व षांति में यह उत्तर वृंदावन का रमणीय स्थान है। भरी दोपहर में भी षीतलता बरसती है। सूर्य का प्रकाष ठंडा और सुखकर लगता है। मंदिर का मुख्य द्वार बंद था। अतः घूम कर पिछले दरवाजे से अंदर गया। वापस लौटने से पहले एक बार दर्षन करना जरूरी था। गर्भगृह में कुछ अंधेरा था -कुछ उजाला। सर्व-व्यापिनी षांति छा रही थी। सामने राधा-कृश्ण खडे थे। बंसीधर की बंसी के स्वरों के आधार पर ही मानों राधा का एक हाथ ऊपर उठा हुआ था। पूरा अस्तित्व तीव्र उत्कंठा और समर्पण की भावना से तरबतर हो रहा था। इतने में वही पुरानी आरजू जाग उठी। ठाकुर का स्मित मुखर हो उठा। वाणी स्तब्ध्ण हो गयी। हृदय और अंतरात्मा आकुल-व्याकुल हो गये। तीस साल पहले की परवषता प्रगल्भ हो कर रो पडी़। कहीं से उस पुराने पद की गूंज कानों में पडी़। पहले सुर, फिर षब्द:
ठाकुर, तुम षरणाई आया।
सुन कर हृदय और अंतरात्मा के साथ देह भी ठाकुर के चरणों में झुक गयी।

32
संवाद की आकांषा
वर्श बिलकुल याद नहीं, तो फिर महीना कहां से याद हो। लेकिन पूरे प्रसंग का स्मरण अब भी सुवासित है। काल की खाई में उसकी स्मृति खे नहीं गयी। घटना का चेहरा-मोहरा अब भी स्पश्ट याद है। सुहानी भेर थी। वातावरण की मस्ती से हस्ती खुषमिजाज हो रही थी। तारकेष्वर महादेव के मंदिर में षंकराचार्य श्रीमद् भारतीकृश्णतीर्थ जी महाराज पधारे थे। बडौ़दा में षंकराचार्य हमेषा सरकारी मेहमान रहते। रजवाडी़ पाष्र्वभूमि में जोगिया संस्कृति भी ऐष्वर्यषालिनी दिखाई देती। उसमें भी यह जगद्गुरू तो परम विद्वान थे। संस्कृत के महापंडित। कई विष्वविद्यालयों की डाक्टरेट। अत्यंत आकर्शक विभूति। भाव वैराग्य का अधिक प्रबल था या विद्वता का, यह कहना मुष्किल था पर चेहरे पर सदा ज्ञान की दीप्ति झिलमिलाती रहती। साथ में षिश्यों का समुदाय। प्रातः ब्राहममुहूर्त से ही अनेक प्रकार के पाठ-स्तवन षुरू हो जाते। देववाणी संस्कृत ऐसी मधुर लय में उच्चारित होती कि सुन कर मन हर्शित हो उठता। सेवा-पूजन की समुचित व्यवस्था। पूरे वातावरण की धर्मनिश्ठा का प्रभाव इतना प्रबल कि परम नास्तिक भी श्रद्धा से तनमस्तक हो जाय। धूप के वलय छाये हुए, पुश्पों की महक फैली हुई। ऐसे कवित्वपूर्ण वातावरण मं एक हाथ में गेरूआ पताका वाला दंड लिये दूसरे हाथ से देवता पर पुश्प् चढा़ने वाले षंकराचार्य जी प्रथम दर्षन में सन्यासी से भी अधिक कवि मालूम देते। भेदक, तेजस्वी नेत्र, विषाल ललाट, कांतिमान देह, धीरे बाहु, ये सारे उपरकरण कवि के। पर गले में झूलती रूद्राक्ष की मालाएं, रूद्राक्ष के ही बाजूबंद और भगवा वस्त्र सन्यास का आभास कराते। बाहय-दर्षन से सन्यासी पर हृदय से

कवि। जगदगुरू का स्वरूप वाकई ऐसी माया का निर्माण करता कि दर्षक की कुछ बोलने से पहले ही परीक्षा हो जाय।
हाँ, तो जिस दिन की बात है उस प्रफुल्लित भोर की बेला में मैं बक्षी उस्ताद के पिदे सिकुडा़ हुआ बैठा था। चैकन्नी नज़र चारों ओर घूम रही थी। कनखियों से षंकराचार्य जी की और देखता जा रहा था और मृदंग पर आटे का मुखलेप लगाता जा रहा था। मृदंग पर बीच-बीच में थाप मारकर ताल की परीक्षा करता जाता था। एक थाप सुन कर बक्षी उस्ताद ने कहा-बस, ठीक है। षंकराचार्य जी की ओर हाथ जोड़कर उस्ताद ने वादन आरंभ करने की अनुमति चाही। संमति मिलते ही मुझे आज्ञा दी-बेटा, चैताल षुरू करो। मृदंग पर थाप पडी़। साज़ पहल से ही मिला रहा था। मेरे ह्रदय में आनंद, आकांषा और भय का त्रिवेणी-संगम हो रहा था। अभी मृदंग सीख ही रहा था। रसिक समाज के सामन बजाने का यह पहला ही मौका था। ऐसे किसी प्रसंग का स्पप्न महीनों से देख रहा था। अतः उस्ताद को प्रणाम कर के और सामने की भव्य संत मूर्ति को म नही मन प्राणिपात कर के साज़ षुरू किया।

चैताल का गंुजन घुमड़ने लगा। धीरे-धीरे नये-नये तोडे अंगुलियों से निकलते गये। एक नया तोडा़ बजाते समय 'नगधित तिरकिट तक धा' के बोल कुछ अस्पश्ट निकले। तुरंत बक्षी उस्ताद की आंखें करारी हो उठीं। उनके मुख से बोल और तालियों से ताल एक साथ निकल पडे। स्खलन और उसके परिमार्जन के बीच एक क्षण का भी विलंब नहीं हुआ। मानो दोनों क्रियायें पूर्ण रूप से अन्योन्याश्रित हों। मैं पहले तो कुछ घबराया। पर फिर हिम्मत कर के वह तोडा़ फिर आजमाया। अब की बार सही बैठा। उस्ताद के मंहु से 'वाह' निकलते ही मेरे हाथों में नयी षक्ति आयी। अंतर में उमंग हिलोर लेने लगी। पूरा अस्तित्व रोमांच से दोलायमान हो उठा।

चैताल सामाप्त होने होने पर उस्ताद ने मृदंग अपनी गोद में लिया। उनकी एक थाप पड़ते ही साज़ मानो सजीव हो उठा। उन्होंने अपनी अद्वितीय षैली में ध्रुपद को हाथ में लिया और उसे ऐसा लाड़ लडा़या कि तुलना में मेरे हाथों का अनाडी़पन उजागर होकर मुझे षरमिंदा कर गया। उस्ताद ने मुर्दा चमडे में मानो प्राण फंूक दिये। उसमें से जिंगदी की लयकारी प्रकट की। धीरे-धीरे उनके दक्षिण हाथ में से गणेष और लक्ष्मी ताल साकार हुए और वातावरण में लय का साम्राज्य छा गया।

इस प्रकार रंग जमा हुआ था। सब एकचित होकर सुन रहे थे। सब का ध्यान लय में मस्त था कि एकाएक षंकराचार्यजी की आवाज़ सुनाई दी। उन्होंने कुछ डांटने के सुर में संस्कृत में कुछ कहा। सब सकपका गये। मृदंगवादन बंद हो गया। उस्ताद के हाथ साज़ पर अधर उठ गये। मालूम हुआ कि षिश्यगण में से किसी के मंुह से ष्लोक के कुछ षब्दों का अषुद्ध उच्चारण हो गया था। जगद्गुरू ने पूरा चरण दोहरा कर सुधार दिया। श्रुति की षक्ति का यह कैसा चमत्कार हुआ। मृदंग की लय में डूबे हुए जगद्गुरू के कानों ने वाणी का यह छोटा-सा स्खलन सुना और सुनते ही उसे बरजा। इस चमत्कार से एक बात सिद्ध हुई। षंकराचार्य जी अंततोगत्वा कवि की अपेक्षा सन्यासी ही अधिक थे। नाद की मस्ती की अपेक्षा धर्मवाणी की अषुद्धि का ध्यान अधिक रख कर सन्यासी ने अपनी श्रुति का अंतरधर्म प्रकट कर दिया।
(2)
स्मृतिपट पर अभी यह चित्र चल ही रहा था। उसकी खुमारी और खुषबु अभी कम नहीं हुई थी कि षांतिनिकेतन की एक चिरजीवी स्मृति झांकने लगी। रात को वैतालिक घूमने निकले थे। षंातिनिकेतन के षांत वातावरण मं संगीत के सुर गूंज रहे थे। एकाएक समूह संगीत से ऊपर उठ कर एक शड्ज का सुर बहता हुआ आया। हम चार-पांच मित्र टोली बना कर बैठे हुए गपषप कर रहे थे।

एक ने कहा, ''यह तो कुडामुन्नि रेड्डी की आवाज़ है।' ' दूसरे ने उपहास किया: ''वाह, क्या आवाज़ है। षांतिनिकेतन के गधे भी इससे अधिक सुरीला रेंकते है।' ' मैंने कहा, ''यार, कुछ भी कहो, इस मोटी आवाज़ में भी एक प्रकार का दर्द अवष्य है।' ' सब हंस पडे, ''वाह, यह तुम्हारी नयी सूझ है। ... कंुडामुन्नि रेड्डी की आवाज़ में दर्द!... तुम भी यार, ग़जब के आदमी हो। थोडा़ बहुत संगीत जाने हो इसका यह अर्थ नहीं कि हमें

बेवकूफ बनाओ। ... इंदु दीदी के पंचम के मुकाबले में यह शड्ज कैसा कठोरा लगता है, और कितना अलग पड़ जाता है। ... और आप फरमाते हैं-दर्द।' ' मैंने फिर एक बार कोषिष की, ''लेकिन पंचम को अधर उठाकर चलता कैसी अदा से है। मानों दोनों में खून का नाता हो।' ' फिर सब खिलखिला कर हंस पडे! मैं क्षुब्ध हो गया। सब ने मिल कर कुडामुन्नि की आवाज़ और मेरी परख की धज्जियां उडा़ दी।

परंतु दूसरे दिन सुबह एक समाचार पूरे षंकितनिकेतन में वायुवेग से फैल गया। कुडांमुन्नि रेड्डी को गुरूदेव ने बुलाया था। अगली रात का वैतालिक वाला गीत फिर से गवाया। उस शड्ज में अवगाहन किया और तुरंत संगीत-भजन के संचालक षांतिधन जी को आज्ञा मिली कि गुरूदेव के गीतों के समूहसंगीत में कुंडार्मुिन्नि के कंठ में छुपा हुआ था। बस तबसे कुडामुन्नि षांतिनिकेतन में एक प्रसिद्ध व्यक्ति हो गये और उनका शड्ज रवीन्द्र-संगीत का अनिवार्य अंग हो उठा।

बाद में मालूम हुआ कि उस रात को वैतालिक की सवारी गुरूदेव की मढी ष्यामली के सामने से गुज़री थी तब कुंडामुन्नि के कठ में से बहने वाले शड्ज से प्रभावित होकर कविवर आनंद विभोर हो गये थे। मानों उन्हें कोई खोयी हुई वस्तु मिल गयी हो, या गवेशणा का कोई महत्वपूर्ण तत्व हाथ लग गया हो। ऐसी तत्परता से उन्होंने दूसरे दिन इकी पूछताछ की। उनकी प्रसन्नता का परावार नहीं रहा। इस बात से पहले तो हमारे सारे मित्र सकपका गये थे पर बाद में गुरूदेव के अभिप्राय के साथ इस कदर एकरूप हो गये कि कुंडामुन्नि के कंठ (और उसके दर्द!) की प्रषंसा करने में हमारा दल सदा अग्रणी रहता।

षांतिनिकेतन से विदा होते समय अपने अध्यापक श्री क्षितिमोहन सेन के साथ गुरूदेव को प्रणाम करने गया था। बातों-बातों में एक प्रष्न पूछ बैठा जो कई दिनों से मेरे मन में घुट रहा था। ''गुरूदेव, आपकी चेतनाा में पहले षब्द आते है या सुर?'' कविवर ने निस्संकोच भाव से उत्तर दिया कि पहले सुर ही आते है। षब्द तो उनके पीछे-पीछे, छिपते-छिपते, लजाते-षरमाते आते है। बात स्पश्ट हो गयी। कविवर की श्रुति की सूक्ष्मता भी उनके अंरार्म का ही अनुसरण करती थी।

बक्षी उस्ताद जैसे कलाकार की श्रुति ने लयभंग पकड़ लिया, जगद्गुरू षंकराचार्य जी की श्रुति ने धर्मवाणी की अषुद्धि को टोका और कविवर की श्रुति ने सुर को अग्रस्थान दिया। किसी की श्रुति ने उसके साथ द्रोह नहीं किया। श्रुति के ये तीनों लोकेत्तर आचार्य अंतरात्मा के किस स्वर्गीय आनंद की कामना कर रहे थे? उत्तर स्पश्ट है तीनों में संवाद की आकांक्षा ही एकमात्र प्रेरणा थी।

33
बंसी काहे को बजायी

जैसा हो वैसा दिखाई न देना भ्रम कहलाता है। एकबार इस भ्रम का षिकार हो कर पसली तुड़वा बैठा। मसूरी के वि दिन हमेषा याद आते है। खास तौर पर, पसली टूटने के बाद के अनिवार्य आराम की याद कर के तो अंतःकरण आनंद से भर जाता है। सन 1939 की गर्मियों में हमारे महाराजा तीन महीने मसूरी में रहे थे। एक दिन रात को राजपीपला की महारानी साहबा की दावत से हम लौट रहे थे। सब को रिक्षा में रवान करके मैं पैदल ही चल दिया। सौचा कि ऐसी रमणीय रात में रिक्षा में बैठना तो अरसिकता की परिसीमा होगी। आकाष की और देखते हुए अपनी धुन में चला जा रहा था। एक लंबी क्यारी सी खुदी हुई थी। अंधेरा था। मुझे लगा कि यह षायद कोई नया रास्ता है। कदम बढा़ते ही अपने राम गिरे खड्डे मे। बडी़ मुष्किल से घर पहंुचा। दूसरे दिन डाक्टर ने बताया कि पसली टूट गयी है। पंद्रह रोज बिस्तर में पडे रहना पडेगा।

इस दुर्घटना के तीसरे रोज़ महाराजा साहब और उनका परिवार हरिद्वार हो गर दिल्ली जाने के लिए रवाना हो गया। विषाल महल में मैं, एक नौकर और रसोइया, तीन व्यक्ति रह गये। लोगों की भीड़ से भरापूरा बंगला

उजाड़ होते ही षून्यता और अकेलेपन का अनुभव कराने लगा। लेकिन अनिवार्य परिस्थिति को अनुकूल बना लेने की या खुद उसके अनुकूल हो जाने की मनुश्य की स्वाभाविक षक्ति ने दिन बिता ही दिये।

चैथे रोज सुबह एक मधुर स्वर के गुंजन से जाग उठा। कोई गुनगुना रा था:
बंसी काहे को बजायी
मैं तो आवत रही, कान्हा, बंसी काहे को ...

स्वरों का वरदान-प्राप्त किसी मधुर कंठ से निकल कर आवाज़ वही आ रही थी। सच कहा जाय तो गीत गया कम जा रहा था, गुंजन का विलास ही अधिक था। सुहानी भोर की बेला, मादक, षीतल हवा, वातावरण की ताजी, प्रकृति की रमणीयता, और इस सब में लौट गया कर आने वाले इस गुंजन के हृदय को रस से तरबतर कर दिया। इतने में उस गूंजती रागिनी ने आवाज़ दी, ''रामप्रसाद, पानी की बाल्टी बाहर ले आना, भैया।' '

किसी की सहायता के बिना मैं बैठ भी नहीं पता था। अतः नौकर को आवाज़ दी। रामप्रसाद आया। मैंने पूछा, ''रामप्रसाद, अभी कौन गुनगुना रहा था?''

' 'अपनी मेहतरानी की लड़की गुलब्बो है, साहब।' ' मुझे बिस्तर पर बैठाते हुए, रामप्रसाद ने कहा। ''नाम तो उसका गुलाब है, पर सब प्यार से गुलब्बो कहते है।' '

मैं पलग पर तकिये के सहारे बैठ गया। सामने की खिड़की में से प्रभात के कोमल सूरज की जीवनदायिनी किरणें गोद में आ पडी़। सारा अस्तित्व उन किरणों से खेलने में डूब गया। इतने में उस सुनहरी किरणावली को अपने आंचल में समेटने का निश्फल प्रयत्न करती हुई बारह-तेरह वर्श की गुलब्बो सामने आ कर खडी़ हो गयी। खडी़ तो हुई, पर लज्जा से चूर-चूर हुई जा रही थी। आंखों में, चेहरे पर, नहीं, पूरी देह में लज्जा लावण्य बन कर जीवन का अभिशेक कर रही थी। पल भर के लिए तो मैं देखता ही रह गया। मेरी इस दृश्टि ने उसकी लज्जा के भार को और भी बढा़ दिया। वह एक तरफ लचक कर किसी षिल्पी द्वारा गढी़ गयी किसी मुग्धा की त्रिभंगी मूर्ति-सी बन कर खडी़ रही।

मैंने पूछा, ''गुलब्बो, तुझे यह गीत पूरा आता है?''
उसने आंखों से ही हां कही, बोली नहीं।
रामप्रसाद सामने खडा़ हुआ जीवन के इस उत्सव का आनंद ले रहा था। उसकी आंखों में भी एक अलग ही प्रकार की चमक थी।

' 'रामप्रसाद, आज गुलब्बो को बहुत सारा खाना देना।' ' कह कर मैंने लड़की से कहा, ''अभी नही ंतो फिर कभी गाना। जा, रामप्रसाद तुझे खाना देगा। आज तेरी मों क्यों नहीं आयी?''

' 'वह बीमार है, सरकार।' ' लड़की की आखों में लज्जा को धकेल कर चिंता छा गयी। आंखों का रंग बदल गया।

' 'कोई कामकाज हो, तो कहना। अब जा।' ' मेरी आवाज में अनुकंपा का सुर मिला।
गुलब्बो के चले जाने के बाद भी मेरे मन से उस गीत की गंूज नहीं हटी। अनेक प्रकार के विचार आये, कई पुस्तकें पढ़ने की कोषिष की, लोगों के साथ बातचीत करने का प्रयत्न किया, पर तुझे वही गूंज सुनाई देती रही।

बंसी को को बजायी
मैंतो आवत रही, कान्हा, बंसी काहे को . . .

और आंखों के सामने बरबस खडी़ रहने लगी वह सुकुमार बालिका। उसके अस्त व्यस्त बाल, मैले कपडे, उसका ष्याम वर्ण, उसके जन्मकर्म की परिस्थिति, और इन सबके भीतर से झांकती हुई उसकी लज्जा के षील से अंजित दो निश्कलंक आंखे बार-बार मानसपट पर छाने लगी। साथ-साथ बह कर आने लगा उसके अंतर की आर्तता से उज्जवल हुआ वह गुंजन। सुर के सहारे धीरे-धीरे षब्द स्पश्ट होते गये और जाग्रत षब्दों ने हृदय पर भावों को अंकित करना षुरू किया।

फिर तो रोज सुबह यही क्रम चलता रहा। भोर के सूरज की किरणें मेरी गोद में खेलती, मुझे उश्मा देती, और मुझे जगाती। जब कि जीवन को जागृति देता था उस गीत का गुंजन।

चार-पांच दिन बाद मेरी तबीयत कुछ संभल गयी। लेकिन बिस्तर छोड़ने की इजाज़त नहीं मिली थी। पसली जुड़ती जा रही थी, दर्द कम होता जा रहा था। सितंबर का महीना था। मौसम अत्यंत सुहाना हो रहा था। एक रोज़ सुबह उठा तो झरझर वर्शा हो रही थी। हवा में ठंठ की झलक थी। सामने की खिड़की में से दूर तक दिखाई देने वाली हरियाली वर्शा में नहा कर स्वच्छ हो चुकी थी। सद्यस्नाता प्रकृति के इस अभिनव और निश्पंक सौंदर्य का साक्षात्कार कर के अस्तित्व धन्य हो गया। केवल मेरा अकेले का ही अस्तित्व नहीं, बल्कि बाग के सुरम्य पुश्प भी मानो अपने ऐष्वर्य को भूल कर निरार्ग के इस अभूतपूर्व और रार्वाग सुंदर स्वरूप के सामने विनम्र भाव से नतमस्तक हो रहे थे। लेकिन एक क्षण में ही प्रकृति और पुरूश के बीच न जाने क्या संकेत हुआ कि बरसती बदरिया एकाएक बिखर गयी। आकाष निरभ्र हो गया। पूर्वदिषा में रंगावली प्रकट हुई। सुनहरे प्रकाष की धाराएं फूट पडी और इन तेजकिरणों पर सवार हो कर पृथ्वी पर मानो स्वर्णमेघ अवतरित हुआ। समस्त प्रकृति स्नेह से सिंचित हो उठी। फूलों ने मस्त हो कर सुगध छलका दी। इस सौरभ में से वही गुंजन मुखर हुआ:
बंसी को को बजायी
मैंतो आवत रही, कान्हा, बंसी काहे को . . .

धीरे-धीरे यह गुंजन, उसके बोल और गुलब्बो मेरे लिए एकरूप हो उठे। पंद्रह दिन का आराम पुरा हुआ। डाक्टर ने चलने-फिरने की इजाज़त दे दी। पट्टी खुल गयी। मसूरी से चलने का दिन भी आ गया। जाने के एक रोज़ पहले मैंने रामप्रसाद से कह कर गुलब्बो की मां को बुलवाया।

तीसरे पहर की चाय का समय था। रामप्रसाद ने आ कर कहा कि सुरक्खी आयी है। साथ्ज्ञ में गुलब्बो भी है। सुरक्खी के मन में डर समा गया था कि गुलब्बो के काम से असंतुश्ट हो कर उसकी षिकायत करने के िलए ही मैंने उसे बुलाया है। मैंने रामप्रसाद से कह कर मां-बेटी दोनों को खाना दिलवाया। उन्हें कमरे में बुलाने के बजाय कुछ देर बाद मैं ही बाग में पहंुच गया। मां-बेटी घबरा कर खडी़ हो गयी। मैं कुछ कहूं उससे पहले ही सुरक्खी ने गिड़गिडा़ कर कहा।

‘ ‘मालिक, गुलब्बो की गुस्ताखी माफ हो। अभी बच्ची है। सफाई में कुछ कसर रही हो तो सरकार, आप मालिक है। मैं और लड़की दोनों माफी मांगते है।’ ’

सुरक्खी ने झुक कर धरती को हाथ लगाया और चुटकी में मिट्टी उठा कर सिर पर लगयी। गुलब्बो ने मां का अनुकरण किया।

‘ ‘नहीं, नहीं, सुरक्खी, ऐसी कोई बात नहीं है। हम तो गुलब्बो के काम से बडे खुष है। इस लड़की के काम में कोई नुक्स नहीं। तुम्हारे जैसा ही काम करती है। गुसलखाने, आंगन, बरामदे, सभी की सफाई तुमसे भी अच्छी करती है। इसीलिए, कुछ इनाम देने के लिए बुलाया है। कल हमज ा रहे है . . .’’
मैं वाक्य पूरा करूं उससे पहले ही गुलब्बो बोल पडी,

‘ ‘आप जा रहे हैं, मालिक? अब आप कभी नहीं आयेगें?’’

‘ ‘हां गुलब्बो। हम बंगला छोड़ रहे है और मसूरी छोड़ कर जा रहे है!’’ कह कर मैंने पसीस रूपये सुरक्खी के हाथ में रख दिये और कहा कि उसने तीन महीने तक बंगले में बहुत अच्छा काम किया है। इसलिए तनख्वा हके अलावा यह इनाम दिया जा रहा है।

पचीस रूपये पाकार सुरक्खी की सूरत ही बदल गयी। उसके मुख पर खुषी की हिलोरें उठने लगी। पर गुलब्बो के चेहरे पर का विशाद कम नहीं हुआ। वह मूर्ति बनी एक ओर खडी़ रही।

छूसरे दिन सुबह चलते समय गुलब्बो छिपति-छिपाती आयी। उसके होंठो पर न तो गीत था, न गुंजन। आंखों में आष्चर्य और रंज ऐसे घुलमिल गये थे कि उसका भोलापन और भी मुखर हो उठा था। मैंने आग्रह करके उसे बरामदे में बैठाया और अत्यंत समभाव व वात्सल्य से वही गीत गाने को कहा। उसने गाया सही, पर झुकी हुई आखों और स्तब्ध चेहरे से। हस्ती में हर्श का नामोनिषान नहीं। गला गा रहा था। आंखे बरस रही थी। वातावरण विशाद से भरा हुआ।

हमारा सामान नीचे उतारा जा रहा था। रामप्रसाद को बुलाकर मैंने टंªक में से मेरा चनरीभांत का लाल साफा लाने का कहा। बरामदे की सीढ़ियों से उतरते-उतरते मैंने साफा गुलब्बो के हाथ में रखा और उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा, ‘‘लो बेटा, लो। षादी में इसकी चुनरी बना लेना।’ ’ इसके बाद उसकी ओर देखे बिना ही मैं सीढ़िया उतर गया।

(2)

सन 1953 के आरंभ में दो-तीन महीने देहली रहना पडा़ था। इन्हीं दिनांे स्वामी आनंद से अनायास मुलाकात हो गयी। उनसे मिलने को मेरा मन तरस रहा था। मिलकर बेहद खुषी हुई। उनके हृशीकेष जाने से पहल का सहवास मेरे लिए चिरस्मरणीय रहेगा। स्वामी जीवन के व्याख्याकार है। अंतःकरा के किवाड़ खोल कर उनसे वार्तालाप करना जीवन का अनुलनीय आनंद है। उनकी मित्रता, उनका स्नेह, उनका वात्सल्य प्राप्त करना इस यंत्रयुग की एक सुमंगल अनुभूति है। हृशीकेष में उनके साथ एकाध दिन बिताने का इरादा था।

वैसे तो साल भर पहले भी देहरादून जाने का मौका मिला था। वहां से सारे मित्र हरिद्वार जा कर गंगास्नान कर आये थे। पर कार्यवष मैं अभाग गंगामैया के चरणों में नहीं जा सका था। गंगास्नान किये चैदह वर्श बीत गये थे। 1939 में मसूरी से लौटते समय गंगास्नान किया था। अतः इसबार देहली जाने का सुयोग प्राप्त होते ही गंगास्नान और गंगामैया के दर्षन की उत्कट अभिलाशा जगी। स्वामी की उपस्थिति ने आकर्शण को दुगुना कर दिया था। अतः मैं पहंुचा सीधा हरिद्वार। चैत्र की पूर्णिमा मैंने हरिद्वार हृशीकेष में ही बितायी, पर दुर्भाग्यवष हम मिल नहीं सके।

लंबे समय से बिछुडा़ हुआ पुत्र जिस प्रकार माता से मिलने को अधीर हो उठता है, कुछ़ वैसे ही दषा मेरी भी थी। सुबह जल्दी उठ कर गंगामैया के तट पर पहुंचा। माता सुरसरि की गोद में पहुंच कर जिनता सुख, जितना आनंद प्राप्त हुआ उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। ऊशा का आगमन, सुहानी भोर का क्रमषः विस्तार, सूर्य की प्रथम किरणों का गंगा में अवगाहन, सलोने पवन का गंगास्नान, जाह्नवी की प्रसन्नता का कलकल-नाद और देवताओं के आषीर्वाद से मंगलमधुर हो उठने वाला पवित्र, सुरभित वातावरण। पल भर के लिए पूरा जीवन धन्य हो गया। अंतरात्माने मंत्रमुग्ध हो कर कृतार्थता का अनुभव किया। ऐसा लगा कि स्वर्ग में से गंगा इस पृथ्वी पर अकेली अवतरित नहीं हुई। स्वर्ग के सदा-अभिनव आनंद को भी वह अपने साथ लेती आयी है। गंगाजल सिर्फ जल ही नहीं है, समूचे अस्तित्व के समग्र मलों को धो डालने वाला अनाविल अमृत है।

हरिद्वार से गंगा के किनारे चलता-चलता हृशीकेष पहुंचा। गंगा का दर्षन ज्यों-ज्यों व्यापक होता गया, ज्यों-ज्यों हृदय की गहराइयों में उतरता गया, त्यों-त्यों भीतर का निवासी मस्त होता गया। अन्नछ़ से ले कर थोडा-बहुत

खाना खा लिया। गंगा के सान्निध्य में पूरी दोपहर कैसे बती गयी, कुछ मालूम ही नहीं पडा़। सांझ को वापस हरि की पौडी़ पहुंचा। गज़ की भीड़ थी। चैत्री पूर्णिमा का स्नान करने के लिए भावुक भक्तों का ऐसा मानवमेला उमड़ पडा़ था कि पूछिये मत। इस प्रकार की आत्मविभोरता का दृष्य सिर्फ इसी देष में दिखाई दे सकता है। और वह भी सिर्फ गंगा के किनारे।

घाट से कुछ हट कर एक छोटे से मंदिर की दीवार को टेके मैं इस अवर्णनीय चित्र को आत्मसात् कर रहा था। समाजपुरूश का इतना वैविध्यपूर्ण दर्षन जीवन में कदाचित् ही होता है। उस अंतहीन कोलाहल के बीच मे ंखडा़ होगर भी मैं पूर्ण षांति का अनुभव कर रहा था। दृश्टि गंगा के प्रवाह पर लगी हुई थी। एक क्षण के लिए भी रूके बिना वह धारा अविरत बहे जा रही थी-अबाघ, अस्खलित और अनुपम।

षाम को झुटपटा फैला हुआ था। रात अभी हुई नहीं थी। डूबते हुए सूरज की किरणों से प्रकाषित गंगा की लहरों पर उतरते हुए जैसे वह हिचक रही हो। मैं अनिमेश नयनों से यह लीला देख रहा था। इनते में मेरे पास से एक देहाती युवक हड़बडाता हुआ निकल गया। वह षायद किसी को ढूंढ रहा था। कुछ देर घबराई हुई दृश्टि से इधर-उधर देख कर उसने पुकारा, ‘‘गुलब्बो, अरी ओ गुलब्बो . . .!

भीड़ से आवाज़ आयी, ‘‘आ रही हूं . . . अमूलो . . . कहां हो . . ?
पुरूश ने उस आवाज़ को अपनी आवाज़ से जोड़ दिया: ‘‘चली आओ . . . इधर . . . मंदर के पास . . .।’ ’
षीघ्र ही एक स्त्री और उसका हाथ पकडेएक छोटा सा बालक मंदिर के पास आये।

लड़के को छाती से लगा कर पुरूशने स्त्री को अपने संरक्षण में ले लिया। कुछ आष्वस्त होकर उसने पूछा, ‘‘अरी, कहां खोबत रही?’’

‘ ‘हम तोहे देखत रहे।’ ’ स्त्री ने षांति से उत्तर दिया।

ब्स, . . . इन पल-दो पल में मेरी स्मृति चैदह वर्श पीछे मुड़ कर मसूरी हो आयी। कानों में मधुर गुंजन समा गया: ‘बंसी काह को बजायी . . .।’ गुंजन ने चेहरे में परिचय की रेखाएं भर दी और मैं पूछ बैठा, ‘‘गुलब्बो . . .। गुलब्बो हो न? कहां, मसूरी से आयी हो? मुझे पहचाना? . . . अरे वाह, उसी साफे की चुन्नी बनायी है . . .! यह तेरा बेटा है? . . . और यह . . . तेरा आदमी?’’

प्रत्युत्तर की आवाज़ में सुखद आष्चर्य का कंप था।

‘ ‘मालिक, . . . आप यहां? . . . इतने बरसों के बाद!’’ फिर उसने बेटे से कहा, ‘‘बुल्लो, बेटा, पावं पड़ मालिक के।’ ’ बेटा झुके उससे पहले झुक कर उसने खुद चरणरज ली। फिर मुड़ कर पुरूश से कहा, ‘‘अमूलो, ये मसूरीवाले मालिक है। तू भी पांव छू।’ ’ वह जवान भी झुक गया।

मैंने सब को अपने साथ लिया। घाट चढ कर एक षिला पर जा बैठे। गुलब्बो ने अपने पति अमूलो और बेटे बुल्लो का व्योरेवार परिचय कराया। अपनी मां सुरक्खी की मृत्यु का ज़िक्र करते हुए रो पडी़। फिर बुल्लो के जन्म की बात कहते हुए लजा कर हंस पडी़। अपने इस इकलौते बेटे की सातवीं वर्शगाठ पर गंगास्नान करने की उसने मनौती मानी थी। लड़के को गंगास्नान करवा कर उस मनौती को पूरा कने के लिए वह हरिद्वार आयी थी। मेरे दिये हुए साफे में से उसने दो चुनरियां बनायी थी। एक षादी के दिन पहनी थी व दूसरी आज बेटे की मनौती पूरी करने के दिन पहनी है।

मैं उन तीनों को वहीं बैठा कर बाज़ार गया। हलवाई के यहां से पूरी, साग, दही, मिठाई ले आया। पत्तलों पर खाना परोस कर हमने एक-साथ खाया।

मैंने कहा, ''गुलब्बो, तेरी षादी में मैं हाजिर नहीं था। इसलिए उसकी दावत आज हो रही है।' ' अमूलो और बुल्लो के आष्चर्य का पार नहीं था। बुल्लो के मुंह में मिठाई का टुकडा़ देते हुए मैंने कहा, ''अरे तू तो मेरी लड़की का लड़का है। तेरे जन्म के समय मैं होता तो तेरी मुट्ठी चांदी से भर देता।' ' जेब में हाथ डाल कर मैंने चार-पांच रूपये निकाले और बुल्लो के हाथों में दे कर उसकी मुट्ठियां बद कर दी। उस भोले बालक के आष्चर्य पर अब खुषी का रंग चढ़ गया।

गंगा के घाट पर इस अकृत्रिम पारिवारिक जीवन की झलक अप्रत्यषित रूप से प्राप्त हो जाने के कारण मेरे आनंद की सीमा नहीं रही। इस आनंद की प्रतिध्वनि मेरी वाणी में मुखर हो उठी: ''गुलब्बो, . . . वह गीत था, . . . बंसी काहे को बजायी . . . ।' '

' 'मालिक, यह गीत ये बहुत अच्छा गाती है।' ' अमूलों की छाती गर्व से फूल गयी।

' 'हां, मां। गा न, बन्सी वाला गाना।' ' बुल्लो ने अनुमोदन किया।
कुछ देर गुंजन करके गीत के षब्द प्रस्फुटित हुए:
बंसी काह को बजायी
मैं तो आवत रही, कान्हा, बंसी काहे को . . .
वही लज्जायुक्त षील, वही लावण्य, वही मधुरता, अंतर की आर्तता का वही प्रसाद!
लेग कहते है मनुश्य बदलता जाता है, दुनिया बदल जाती है। परिवर्तन तो अवष्यभावी है। पर सवाल यह है कि बदलता क्या है? मनुश्य का षायद मन बदल जाता होगा, षायद स्वभाव बदल जाता होगा। . . . पर अंतःकरण नहीं बदल सकता। अंतरात्मा के संस्कार नहीं बदल सकते।
अंतःकरण तो उन जन्मजन्मांतर के संबंधों का आश्रयस्थान है जो मनुश्य के ऋणानुबंध की महिमामयी यषोगाथा गाते रहते है।

34
बडे लाट का बडा़ नाप
एक बार हमारे महाराजा साहब ने वाइसराय लाॅर्ड लिनलिथगो को बाघ के षिकार के लिए निमंत्रित किया। बडे लाट-साहब के स्वागत, निवास, सहवास, मनोरंजन और विदा के लिए भयानक तैयारियां होने लगी। सैकडो़ लोग दिन-रात काम में जुट गये। कइयों को तो कई-कई रात तक जागरण करना पडा़। धन और पसीना, दोनों की नदियां बहीं। बाघ के षिकार के लिए महकमा जंगलात के अनेक जानकार अफसर, अनेक मंजे हुए षिकारी और हांके के लिए सैकडोंं वन्य आदिवासी अपने-अपने कार्य पर तैनात किये गये।

म्हाराजा साहब की इच्छा थी कि बडे लाट सबसे बडे बाघ का षिकार करने का रिकार्ड कायम कर सके। तब तक सबसे बडा़ बाघ महाराजा धौलपुर ने मारा था जिसकी लंबाई 11 फुट 4 इंच थी। भारत में तब तक यही कीर्तिमान कायम था। लाट साहब ने मन में इस रिकार्ड को तोड़ने की इच्छा होना स्वाभाविक था। अतः महाराज इसके लिए जी-जान से उत्सुक थे।

आखिर लाट साहब ने आगमन की तारीख निष्चित हुई। दिन में ऊंधने और राज में सोने वाला हमारा छोटा-सा षहर चैबीसों घंटे जाग्रत रहने लगा। बने तब से कभी साफ न होने वाले सार्वजनिक स्थानों की सफाई हुई। वर्शो से मरम्मत चाहने वाले मकान और रास्ते रातोंरात दुरूस्त हुए। षाही षादी-ब्याह के अवसर पर भी न रंगी जाने वाली इमारतों की रंगाई-पुताई हुई। ए.डी.सी.गण को नयी वर्दियां मिली। सेवको को नये कपडे मिले। दो नयी मोटरें खरीदी गयी। बम्बई से रोजाना ताजा सब्जियां, फल, फूल, मांस, मछलियां और इलाहबार से बर्फ आने की व्यवस्था हुई। प्राइवेट सेकेटरी स्वयं बम्बई जा कर नाना प्रकार की बेषकीमत षराब खरीद लाये। हिंदुस्तान भर की प्रसिद्ध गानेवालियों और नर्तकियों को इस काम के जानकार लोग इकट्ठा कर लाये। बिछायत, गलीचे, बिजली

के पंखे, झाड-फानूस, फरनीचर इत्यादि साजो-सामान भी नया आया और इतना आया कि उसका हिसाब रखना मुष्किल हो गया।

इस पैमाने पर तैयारियों होती देख कर मैं समझ गया कि तमाषा अभूतपूर्व होगा जिस तादाद में और जिस बेदर्दी से रूपया बहाया जा रहा था उसे देख कर यह भी निष्चित लगा कि लाट साहब खुष होंगें। लेकिन ये ता सब हुई मनोरंजन और आमोद-प्रमोद की बाते। जन सेवा और उसके प्रचार की दृश्टि से भी कुछ काम होना आवष्यक था। अतः एक सार्वजनीन अस्पताल की नींव डली। (यह अस्पताल आज तक बन नहीं पाया, यह अलग बात है।) अनेक साल पहले षुरू हो चुकने वाली टेलीफोन-व्यवस्था का लाटसाहब के हाथों फिर से उद्‌घाटन करवाने की बात तय हुई। दीवान साहब के लिए जो नया बंगला बना था उसे अस्थायी तौर पर लड़कियों के स्कूल का मकान मान कर उसका उद्‌घाटन भी बडे लाट के करकमलों द्‌वारा करवा लेने की योजना बना।

जहां षिकार होना था, वहां तो जंगल में मंगल हो गया। हांके का षिकार था, अतः लगभग एक हजार आदिवासियों को तीन और से हांका उठाने के लिए नियुक्त किया गया। खेमों की व्यवस्था करने में तीन सौ आदमी मषगूल थे। षिकार के केम्प और राजधानी के बीच मोटरों और मालठेलों का आना-जाना राज-दिन चलता रहता। किस्सा कोताह, दीवान से लगा कर दरबान तक हर आदमी में प्राणों की बाजी लगा कर भी महाराजा के प्रति अपनी वफादारी सिद्ध करने की और उनकी कृपा प्राप्त करने की मानो होड़ लग गयी। नगर के बुजुर्ग कहने लगे कि पिछले पचास वर्शो में ऐसा उत्साह, ऐसी भागदौर और ऐसा आयोजन कभी देखे नहीं थे।

जिस रोज वाइसराय पधारे उसके दूसरे रोज ही षिकार था और वही मुख्य आयोजन था। अतः उसे केन्द्र मान कर उसके आसपास ही अन्य कार्यक्रमों की योजना की गयी। लाट साहब आये उसी रोज षाम को समाचार मिला कि दो बाघ तैयार है। एक आठ फुट दस इंच का है और दूसरा दस फुट पांच इंच का। महाराज कुछ प्रसन्न भी हुए और कुछ नाराज भी। उनकी इच्छा तो यह थी कि कई दिनांे से दिखाई देने वाला साढे ग्यारह फुट वाला बाघ हाथ में आ जाय ताकि लाट साहब नया रिकार्ड कायम कर सके। षिकार के स्थान पर मचानों की व्यवस्था पूरी हो चुकी थी। संदेष और सूचनाएं लाने-ले जाने का इंतजाम मुकम्मल हो चुका था। दोपहरको दो बजे लाट साहब आये और ठाठ से अपने मचार पर विराज़मान हुए। साथ में महाराजा साहब, उनके छोटे भाई, लाट साहब के ए.डी.सी. और दो-तीन निपुण षिकारी बैठे। इसके अलावा तीन मचान और थे जिन पर बने हुए लोगों के बैठने की व्यवस्था थी।

दोपहर का डरावना सन्नाटा हुआ था। सूई गिरने की भी आवाज़ नहीं होनी चाहिए ऐसी कठोर आज्ञा थी। यह आवष्यक भी था। षीघ्र ही एक काला झंडी हिली। यह बात का संकेत था कि सब लोग मचानों पर बैठ गये और नीचे कोई नहीं रहा। झंडियों के सिलसिले से यह सूचना हांके के सरदार तक पहुंची और हांका षुरू हुआ। दोपहर का वक्त था। बाघ षायद किसी गुफा में आराम कर रहा होगा। हांके की आवाज़ घूम कर, घिर कर और संगठित हो कर ज्यों-ज्यों निकट आती गयी त्यों-त्यों हमारे मन में खबली मचने लगी। भय, आषा, निराषा, अपेक्षा आदि विविध भावनाओं का ज्वार बारी-बारी से उठता और उतर जाता। महीनों के आयोजन का क्या परिणाम होगा? लाट साहब खुष होंगें या नहीं? महाराजा साहब की धाक जमेगी या नहीं?

हाके का कोलाहल अब खूब घना हो गया था। अचानक बाघ की दहाड़ सुनाई दी। सिद्ध हुआ कि बाघ जग गया है। हांके की आवाज़ पास आने लगी और क्रमषः तीव्र होती गयी। बाघ ने भयानक गर्जना करके मानो उसे चुनौती दी। हमारे मचान पर बैठे हुए एक सज्जन कांपने लगे। उनका पसीना छूट गया औ घिग्घी बंध गयी। बडी़ मुष्किल से उन्हें इषारों से आष्वस्त कर के लिटाया। कहीं चिल्ला पड़ते तो सब गुड गोबर हो जाता ।

हमारे मचान पर से बाघ के आने की पगडंडी साफ दिखाई दे रही थी। जंगल के उस बादषाह को अपने साम्राज्य में स्वतंत्र विचरते देखना एक अद्भुत अनुभव था। हांके की आवाज़ पीछे छोड़ कर वह उम्दा प्राणी हर कदम पर चैकन्नी दृश्टि से इधर-उधर देखते हुए अत्यंत सावधानी से, आवाज की विरोधी दिषा में आगे बढ़ रहा था। आज यह जंगल उसे कुछ विचित्र मालूम दे रहा था। मनुश्य की दुर्गंध आ रही थी। किसी शडयंत्र का स्पश्ट अनुभव हो रहा था। जैसे ही वह मुख्य मचान के सामने पहुंचा कि धांय-धांय कर के गोलियां छूटी। हवा में दसेक फुट उछल क रवह बहादुर पषु पृथ्वीपर गिर गया। निषाना अचूक था। दर असल किसकी गोली लगी यह तो भगवान ही जाने। पर इसका श्रेय महमान को ही दिया जाता है और बाघ को पहले उन्हीं की गोली लगी और उससे वह मरा यह मान लिया जाता है। अन्य षिकारियों की गोलियां तो सिर्फ सावधानी के लिए दागी जाती है।

षीघ्र ही हरी झंडी फहरी। निष्चित हुआ कि बाघ मर गया। सब मचानों से नीचे उतरे। षिकार का निरीक्षण करने के लिए महाराजा के साथ लाट साहब खुद गये। षिकार अव्वल दर्जे का घोशित हुआ। इसके बाद कई फोटो खींचे गये और तमाषा खत्म हुआ। लाट साहब चले गये।

मैं पूरा समय पास ही खडा़ था। षिकार-अफसर नापने की टेप मेरे हाथ में थमा कर बाघ को उठवाने की व्यवस्था करने में लग गये। मुझे, न मालूम क्यों, षुरू से ही बाघ कुछ छोटा लग रहा था। अतः मैंने एक दरबान की सहायता से उसे फिर नापा। पर नाप बराबर नौ फुट दस इंच बैठा। फिर भी बाघ मुझे छोटा लगे जा रहा था। इतने में प्रधान षिकार-अफसर आ पहुंचे। मैंने अपनी उलझन उनसे कही। वे मुस्करा दिये। उनकी मुस्कराहट से यह सिद्ध हो गया कि कोई न कोई बात भी जरूर जो मेरी समझ में नहीं आ रही थी। मैं और भी सिटपिटाया! उन्होंने टेप मेरे हाथ स ेले ली और उसे ध्यान से देखने को कहा। मैंने बारीकी से देखा तो मालूम हुआ कि टेप में से पहले फुट तक की लंबाई काट दी गयी थी। टेप षुरू ही तेरहवें इंस से होती थी। तुरंत प्रज्ञाचक्षु खुल गये! बाघ था तो आठ फुट दस इंच का, पर इस करामात से एक फुट बडा़ हो गया! इस माया का जन्म कहां और कैसे हुआ यह पूछने पर षिकार-अफसर ने जवाब दिया, ''साहब, यह तो बडे लाटा का बडा़ नाप है। रजवाडो़ की दुनिया यूंह ी चलती है। अब किसी बडे बाघ को मार कर उसकी खाल लाट-साहब को भेज देंगें।

मैं विस्मिय में पड़ गया। गौरांग प्रभुओं को खुष करने के लिए इस बडे नाम के जैसी न मालूम कितनी तरकीबें इन चाटुकार नरेषों ने आज़मायी होगी।

35

अविस्मरणीय अनुभव

मध्यप्रदेष के विध्याचल की घाटी के जंगल बाघ और अन्य वन्यपषुओं के निवास स्थान के रूप में देष भर में प्रसिद्ध है। कटनी से मानिकपुर उत्तर-दक्षिण और रीवां से ओरछा, पूर्व-पष्चिम, लगभग दस हजार वर्गमील का बंुदेलखंड-बघेलखंड का प्रदेष भयानक घने जंगलों से छाया हुआ है। ये जंगल विभिन्न रियासतों की सरहदों में बिखरे हुए है। परंतु चरखारी, छतरपुर, बिजावर और ओरछा की रियासतों में वन्य प्रदेष बहुत अधिक नहीं है। बडे और डरावने जंगल तो पन्ना और रीवां राज्यों की सरहद में ही है। उन में भी पन्ना के जंगल बाघ, चीते, रीछ, भेड़ियें, हिरन और बारहसींगे के षिकार के लिए दूर-दूर तक प्रसिद्ध है। इस रियासत में वहां के महाराजा के निजी सचिव के रूप में पांच साल तक रहने का मौका मिलने के कारण षिकार संबंधी बहुत सी बाते में स्वानुभव से जान सका।

अनुभवी षिकारियों के मुख से षिकार संबंधी अनेक रोमांचक बाते बचपन से सुनता आ रहा था। एक बार कुछ मित्रों के साथ चीते का षिकार करने के लिए भावनगर से जूनागढ़ की सरहद तक यात्रा की थी। लेकिन उसमें मेरी भूमिका सिर्फ प्रेक्षक की थी। उसके बाद अजमेर के पास की एक छोटी सी जागीर खरवा के ठाकुर साहब गणपतिसिहजी के साथ घोड़े पर बैठ कर जंगली सूअर के षिकार में सहभागी हुआ था। जीवन के इस पहले

षिकार का अनुभव रोमांचक होने के साथ-साथ मेरी षाक्ति प्रसंगावधान और षहसवारी की परीक्षा करनेवाला सिद्ध हुआ। ठाकुर साहब और ठकुरानी दोनों जंगली सूअर के अप्रतिम षिकारी थे। दोनों की घुड़सवारी दिल दहलाने वाली पर अचूक थी और निषाने में तो पति-पत्नी में कौन किस पर मात करता था यह कहना मुष्किल था।

जंगली सूअर का षिकार अकसर घोड़े पर बैठ कर ही होता है। कमाया हुआ बाहुबल हो तो ही भाले की नोंक से सूअर को बेधना संभव होता है। इसके अलावा सवार की घोड़े पर पकड़ भी मजबूत होनी चाहिये। अन्यथा मारा हुआ भाला षाक्ति पूर्वक वापस खींचते समय असानका संतुलन निवाहना बहुत मुष्किल हो जाता है। षिकारी की घोड़े पर पकड़ मजबूत न हो, तो रानों के बीच से घोड़ा सरक कर सवार के धराषायी होने की पूरी संभावना रहती है। भागता हुआ सूअर और उसके पीछे भागता हुआ घोड़ा दोनों की गति का सही अंदाजा लगा कर उभारा हुआ भाला सूअर के पेट या गरदन में घंुसड़ देने के लिए षिकारी के पास पैनी और चैकत्री नजर न हो तो वार खाली जा सकता है। इतना ही नही संतुलन चूक कर षिकारी यदि नीचे गिर जाय, तो क्षणार्ध में वह खुद ही सूअर का षिकार बन सकता है।

खरवा की उस राठौड़ी ठकुरानी ने एक बार भयानक पैने दंतुलों वाले एक मदमस्त और भीमकाय सूअर का षिकार किया था। घोड़े को उसकी तीन चैथाई गति से दौड़ा कर उन्होंने अदभूत सफाई और अचूकता से भाला मारा। भाला इतना गहरा पैठ गया कि वापस खींचना संभव नही था। खींचने का प्रयत्न करने पर संतुलन बिगडने की पूरी संभावना थी। इसलिए अचूक प्रसंगावधान और दिलेरी से उन्होंने भाला छोड़ दिया और अपनी प्रिय घोड़ी बिल्लौरी पर संतुलन बनाये रखा। भाले की गहरी चोट से सूअर की गति जैसे ही कुछ धीमी हुई कि पीछे से आते हुए ठाकुर साहब ने रकाब में अधर उठ कर भाला वापस खींच लिया। दस पंद्रह फुट जाते जाते वह विकराल पशु धराषायी हो गया।

एक बार महाराजा पत्रा के आरक्षित जंगल में हमने एक विकराल बाध का षिकार किया जो सूअर या रीछ के षिकार से भी अधिक रोमांचक और मनोरंजक सिद्ध हुआ। पत्रा के जंगलों में तब तक सब से बड़े बाघ का षिकार महाराजा धौलपुर ने किया था। वह बाघ ग्यारह फुट पांच इंच लंबा था। धौलपुर के महल में उसे मसालों से भर कर एक षीषे की अलमारी में रखा गया है। वह मरा हुआ बाध भी इतना डरावना लगता है कि लोग देख कर भयभीत हो जाते है। षुरू में ग्यारह फुट पांच इंच वाली बात पर मुझे विष्वास नही हुआ था। पर बाद में मालूम हुआ कि बाघ की लम्बाई उसकी नाक से पूंछ के सिरे तक नापी जाती है।

एक बार बीकानेर के महाराजकुमार बाघ के षिकार के लिए पत्रा पधारे। तीन चार दिन तक हम विभिन्न षिकार अफसरों के जरीये बाघ की खबर लगवाते रहे। चैथे रोज एक षिकारी राजमहल में आया। उसके मुंह पर स्मित छाया हुआ था और पूरा चेहरा आषा की आगाही से दमक रहा था। मुझे देखते ही खुषखबरी सुनायी कि एक बडे बाघ का पता चला है। उसी रोज वह एक भैंस को मार कर गुफा में ले गया है अतः षाम तक उसके वहां से हिलने की संभावना नही है। लंबाई लगभग ग्यारह फुट होगी। यह सुन कर मुझे बहुत आष्चर्य हुआ। समझ में नही आया कि बाघ को देखे बिना ही यह लोग उसकी लंबाई कैसे बताने लगते है। पूछने पर उसने जेब में से एक पांच छः लंबी सलाई निकाली और कहा;; '' यह बिलकुल आसान होता है, साहब। देखिये, इस सलाई से बाघ के अगले पंजे का नाप लिया है। पंजा जितने इंच लंबा हो उससे दुगुने फुट बाघ की लंबाई होती है। यह सलाई साढ़े पांच इंच की है। अतः बाघ ग्यारह फुट लंबा होना चाहिये।

इतने में महाराजा साहब वहां से निकले। अफसर ने बाघ का समाचार दिया। तुरंत षिकार की तैयारी के लिए फरमान छूटा। षिकार हांके का होगा यह भी निष्चित हुआ। बाघ के षिकार के दो प्रकार प्रचलित है। एक हांके का और दूसरा 'किल' का। इस दूसरे प्रकार में उसके आने जाने के मार्ग में बैल, बकरा या अन्य कोई बड़ा जानवर बांध दिया जाता है। दोनों प्रकार का षिकार मचान पर से ही होता है।

बाघ का षिकार अत्यंत व्ययसाध्य होता है। उसमें सयम षाक्ति और धन का खर्च दिल खोल कर करना पड़ता है। जिन रिसायतों में बाघ के षिकार की व्यवस्था होती है वहां षिकार के अलग महकमे और अफसर होते है। हमारे यहां यह सारी व्यवस्था थी हो। अतः षिकार की तैयारी षाही पैमाने पर होने लगी। दो मोटर ट्रकें मजदूरों और तंबुओं से लद कर कैम्प के स्थान पर भेजी गयी। पीछे -पीछे महल के रसोइये और खानसामे अपने सरसामान के साथ पहुंचे। बैसाख महीना था। अतः षीत पेय, आइसक्रीम इत्यादि की खास व्यवस्था की गयी थी। षिकार अफसर मचानों का इंतजाम करने लिए और हांके के लिए इर्द गिर्द के गांवों में से पांच छः सौ आदमी इकट्ठे करने के लिए पहले ही जा चुके थे।
अंदाजन ग्यारह बजे चार मोटरों मंे हमारी मंडली निकली। पत्रा से बीच बाईस मील दूर बीच जंगल में पहुंचना था। जंगल की गहराई में कोई मील भर हमें पैदल चलना पड़ा मोटरों की आवाज से वह चतुर प्राणी चैकन्ना हो जाता है और उसके गलत दिषा में चले जाने की संभावना रहती है। अतः मोटरें काफी दूर छोड़ कर हम दबे पांवों मचानों के पास पहुंचे। आजमायी हुई बंदूकें पहले से ही तैयार थी। करतूसों की भी जांच कर ली गयी थी। साढ़े बारह बजे तक हम मचानों पर बैठ गये। मुय मचनगर षिकार के लिए आये हुए मेहमान मेजबान महाराजा के साथ बैठे। साथ में एक निपुण षिकारी और दो अचूक निषानेबाज अंगरक्षक बैठे। दूसरा मचान घायल मचान कहलाता है। उस पर में मेहमान के रहस्यमंत्री और दो तीन कुषल षिकारी बैठे। घायल मचान का महत्व इतना ही होता है कि मुख्य मचान की गोली से जख्मी हो कर षिकार यदि भागने लगे, तो उसका अंत कर दिया जाय। तीसरा मचान सिर्फ प्रेक्षकों के लिए होता है। उस पर बैठने वाले षिकार में किसी प्रकार का भाग नही लेते।

हर आदमी को उसके कार्य की स्पश्ट सूचनाएं दे दी गयी थी। हांका षुरू होने के बाद संपूर्ण षांति का पालन अनिवार्य होता है। बातचीत कान में भी नही की जा सकती। जोर से सांस भी नही ली जा सकती। खांसने या खंखारने की आवाज तो किसी हालत में नही होनी चाहिये। बाघ अत्यंत चतुर और चपल प्राणी होता है। उकसी ध्राणषक्ति इतनी प्रबल होती है कि मनुश्य की सांस की गंध आते ही वह उसकी दिषा पहचान लेता है और चैकन्ना हो कर दूसरी दिषा में चला जाता है।
बैसाख की चिलचिलाती दोपहर थी। विंध्य की घाटी के उस जंगल में गरमियों में तापमान 114 अंष तक पहुंच जाता है, जो पत्थरों के तप जाने से और भी असहय मालूम दे रहा था। डरावना सन्नाटा छाया हुआ था। दिलेर से दिलेर आदमी की दिलेरी को डगमागा देने वाली लू चल रही थी। षीध्र ही सन्नाटे की भयानकता को बेध कर हांके की आवाज सुनाई दी। आवाज की दूरी और अस्पश्टता उसकी भयावहता की और भी बढाये दे रही थी। आवाज धीरे-धीरे पास आती गयी और स्पश्ट होती गयी। हांके के षिकार का यह मेरा पहला ही अनुभव था। वातावरण ऐसा जमा मानो बलवाइयों की फौज किसी षहर को लूटने और जलाने के लिए आ रही हो।
षोर बढ़ने पर वनराज क्रोधित हो उठा। उसने दिल दहला देने वाली गर्जना की। हांके के आवाज को भेद कर उस दहाड़ की प्रतिध्वनि पूरे जंगल में गूंज उठी। वातावरण और भी डरावना हो गया। हांके की आवाज सुन कर बाघ उसे से उलटी दिषा में चलने लगा। अब वह हमारी ओर आ रहा था। भागने के सारे मार्गो पर भाले, तलवार और लाठियां लिये लोग पेड़ों पर बैठे थे। जिस तरह मनुश्य बाघ से डरता है। उसी तरह बाघ भी आदमी से डरता है। आज उसे अपना जंगल अजीब लग रहा था। रास्ता रोक कर खड़े हुए आदमियों की भीड़ को देखकर वह षायद समझ गया था कि उसकी मौत का सामान जुट रहा है। अतः वह और भी चैकन्ना हो गया। घायल मचान पर से हमें वह पषुश्रेश्ठ स्पश्ट दिखाई दे रहा था। मुख्य मचान किसी वृक्ष की ओट में आ गया था।

प्राणी-संग्रहालयों में पिंजड़े की सलाखों के पीछे बंद बाघ को देखने की अभ्यस्त आंखें आज पहली बार वन के राजा को अपने साम्राज्य में स्वच्छंद विचरण करते देख रही थी। एक पल के लिए तो कलेजा सहम गया। संास अपने आप थम गयी। इतने में बदले हुए वातावरण से अकुला कर उस विकराल पषु ने फिर भीशण गर्जना की। पूरा जंगल थर्रा उठा। डरावना सन्नाटा थरथरा उठा। क्रमषः हांके का दायरा और संकीर्ण हुआ। षोर उग्र होता गया और बाघ मचान की ओर धकेला जाने लगा। उसके लिए इस ओर आये बिना अब कोई चारा ही नही था। चतुर बाघ मानो इस विवषता को पहचान गया। उसने एक ओर से कतरा कर निकल जाने का प्रयत्न

किया। वहां तलवार और भालों की चमक दिखाई दी। उसने परिस्थिति को भांपा और मृत्यु को अनिवार्य मान कर उसका मुकबला करने के लिए किसी षाहंषाह की षान से आगे बढ़ा। उसकी आंखें दिषाओं को परख रही थी। उसकी चाल सामथ्र्य के पदचिहन छोड़ती जा रही थी।

निषाने के बर्तुल में लगी लाल झंडी को देख कर वह कुछ रूका ही था कि मुख्य मचान पर से गोली छूटी। गोली की आवाज कई बार प्रतिध्वनित हुई और छिन्न होकर विखर गयी। बाघने दस बारह फुट ऊंची छलांग मारी और गोली छूटने की दिषा में उछला। पर इतने में दूसरी गोली छूटी और छलांग मारता हुआ वह बहादूर प्राणी हवा में अधर विंध गया। एक धमाके के साथ उसका षरीर जमीन पर आ गिरा। सावधानी के लिहाज से दो गोलियां और दागी गयी जो उसकी मृतदेह में समा गयी। चारों तरफ का सन्नाटा मानो आर्तनाद कर उठा।

कोई आधे घंटे बाद सीटी बजी। हरी झंडियाॅ फहरा उठी। यह इस बात की सूचना थी कि जंगल का राजा मर चुका है और उसके पास जाने में कोई खतरा नही। षिकारी मचान पर से नीचे उतरे। हमारे साथ एक फोटोग्राफर भी आया था। मरे हुए बाघ के पीछे मुख्य मेहमान और मेजबान को हाथ में बंदूकें लिये खडे कर के तस्वीरें खींचे गयी।

मेरे हृदय पर भी एक तस्वीर सदा के लिए अंकित हो गयी।

मरी हुई बहादुरी जमीन पर पड़ी थी और जीवित कायरता बंदूकें लिये खड़ी थी।

36

अहम् की लीला

एक बार रामपुर के नवाब साहब का निमंत्रण आया। हमारे महाराजा साहब से नवाब साहब की सालगिरह के उत्सव में उपस्थित रहने की प्रार्थना की गयी थी। रोटरी, फ्रीमसनरी, थियोसाॅफी आदि संस्थाओं के सदस्यों में आपस में जैसा बंधुभाव होता है उससे कहीं अधिक विरादरी की भावना राजसंस्था के सदस्यों के बीच पायी जाती है। अकसर इसकी बुनियाद दंभ और दिखावे पर टिकी होती है। यह अलग बात है। अतः एक राजा या नबाब अपने समकक्ष दूसरे राजा या नवाब को निमंत्रित करे तो बिना आनाकानी के जाना ही चाहिये ऐसा अलिखित नियम होता है।

महाराजा साहब का हुक्म हुआ कि पहली बार रामपुर जा रहे है। अतः स्पेषल ट्रेन से जाना चाहिये। इसका मुख्य कारण यही था कि वहां और भी कई राजामहाराजा आने वाले थे और इस दिखावे से उन पर हमारा रोव जमने की संभावना थी। तुरंत ही लखनऊ, देहली और बम्बई तार कर के पूछताछ की गयी; पर कहीं से स्पेषल की व्यवस्था न हो सकी। आखिर कलकŸाा तार किया गया। जबाब आय कि स्पेषल इलाहाबाद से मिल सकती है। पर हावड़ा से इलाहाबाद और वापसी में इलाहाबाद से मिल सकती है पर हावड़ा से इलाहाबाद और वापसी में इलाहाबाद से हावड़ा तक का पूरा किराया देना होगा। रूपये का कोई सवाल था ही नही। अतः इस भयानक फजूलखर्ची को चुपचाप स्वीकार कर के हम रामपुर जाने को निकले।

पचासों अनुचर और ढेरों सामान का लवाजिमा साथ हुआ। महाराजा की इच्छानुसार कुछ नितांत अनावष्यक पर दिखावटी चीजें भी साथ ली गयी। अंगरक्षकों की तो पूरी पलटन साथ चली। उनके लिए कालावŸाू की नयी वर्दिया बनवाई गयी। राज्य की सेना के बारह चुनींदा सिपाही दो जमादार और एक सुवेदार साथ लिये गये। इनकी वर्दिया अलग बनी। हिमधवल दाढ़ी मूंछ और भव्य पगड़ी से षोभायमान, प्राचीनता के प्रतीक जैसा एक अस्सी साल का बूढ़ा चोबदार साथ चला। दस्तूरात के अफसर भाटचारणों और बंदीजनों की एक छोटी सी फौज षाही डाक्टर वैद्य नाई, धोबी, डाइवर, फोटोग्राफर और अनेक मुसाहिब भी इस हूजूम में षामिल हुए। इलाहाबाद से एक कत्थक नर्तकी और लखनऊ से दो प्रसिद्ध गायिकाओं का समावेष हुआ। अब हमारे मजमे को न तो षुद्ध गद्य कहा जा सकता था न विषुद्ध काव्य। नाचने गाने वालियों के समावेष से मंडली में कुछ नया जीवन संचारित हुआ। सब की आंखों में रंगीन डोरे पड़ गये।

बेरली पहुंच कर स्पेषल ने कुछ देर विश्राम किया। महाराजा की आज्ञानुसार यहां से सबको अपनी नयी वर्दियों में सज्ज हो जाना था। बेरली से रामपुर सिर्फ डेढ़ दो घंटे का रास्ता है। रामपुर से तीन अफसरों और पांच

चपरासियों का प्रतिनिधिमंडल हमारी प्राथमिक अगवानी के लिए बेरली आया था। उनसे समाचार मिला कि हमारे स्वागत के लिए अतिभव्य तैयारियाॅ की गयी है। हमारी स्पेषल रामपुर के आम स्टेषन पर नही बल्कि नवाब साहब के लिए बनवाये गये खास स्टेषन पर रूकने की व्यवस्था हुई। रामपुर की सेना गार्ड-आफ-आॅनर देने वाली है। फिर पंद्रह तोपों की सलामी होगी। रामपुरी घुड़सवारों का खास दस्ता हमारे महाराजा की षाही बग्धी के आगे पीछे चलेगा। स्टेषन के बाहर जगमगता हुआ आलीषान षामियाना बनवाया गया है। उसमें ईरानी कालीनों की बिछात पर किमखाब से मढ़ा तख्त लगवाया गया है। पहला मूजरा स्टेषन पर ही हो ऐसी व्यवस्था की गयी है। सारे षाहजादों के साथ नवाब साहब खुद स्टेषन पर हाजिर रहेंगे।

बरेली पर मुझे हुक्म मिला कि सब लोगों की सब प्रकार की तैयारियों का मेंें व्यक्तिषः मुआइना कर लूं। कोई त्रुटि दिखाई दे तो आवष्यक सूचनांए दे कर उसे सुधरवा लूं और तैयारी को सब प्रकार से संपूर्ण और दोशरहित कर लूं। इसके बाद ही गाड़ी बरेली से छूटे। इन्जन ड्राइवर और गार्ड का सूचना दी गयी कि स्पेषल खास स्टेषन पर ठीक साढे छः बजे पहुंचाई जाय। रामपुर से आये हुए अफसरों को मैने सम्मानपूर्वक अपने सलून में बैठा लिया। मेरे सलून और महाराजा साहब के सलून के बीच चलती गाडी में भी आने जाने की व्यवस्था थी। मैने महाराजा साहब से बिनती की कि नवाब साहब की सूचनानुसार सलून में से सब से पहले वे उतरें और फिर ओहदे के क्रमानुसार बाकी लोग। लेकिन हमारे दस्तूरात के अफसर ने फतवा दिया कि नीलमनगर की परंपरा के अनुसार पहले प्रधान स्टाफ अफसर को उतरना चाहिये और बाद में महाराज को। महाराज की आज्ञा हुई कि परंपरा का निर्वाह हर हालत में होना चाहिये। मैने समझाने की बहूत कोषिष की कि हमें हमारे मेजबान की सूचनाओं को मान्य कर के उनके इन्तजाम के अनुसार वर्ताव करना चाहिये। लेकिन इसका कोई प्रभाव नही पड़ा। महाराजा साहब पर किसी भी तरह क्यों न हो, रामपुर वालों को प्रभावित करने की धुन सवार थी। लोकोक्तियों में प्रसिद्ध चार हठों में से एक राजहठ से मुकाबला था। बडी मजबूरी थी। आखिर उन्होंने किसी की नही सुनी और मनमानी की।

रामपुर पास आता जा रहा था। महाराजा साहब पंद्रह तोपों की सलामी और बंदूकों के फायर द्वारा प्रस्तुत गार्ड-आॅफ-आॅनर के लिए नितांत सज्ज हो कर बैठे थे। गाडी की गाति धीमी हुई। गजगामिनी गाति से उसने रामपुर स्टेषन पार किया और खास स्टेषन पर आ कर रूकी। अफसर-ए-दस्तूरात की सूचना और महाराजा साहब की आज्ञा के अनुसार उनके प्रधान स्टाफ-अफसर के नाते सब से पहले मै सलून से नीचे उतरा। जैसे ही मैने प्लेटफार्म पर पांव रखा कि धांय-धायं करके बंदूकें चलने लगी और दहाड़ दहाड़ कर तोपें छूटीं। हाथ मिलाने के लिए आतुर नवाब साहब उत्सकुता से आगे बढ़े, लेकिन मुझे पहचान कर ठिठक गये। इसके कोई दो मिनट बाद बड़े इतमीनान से महाराजा साहब की सवारी सलून से उतरी।
एक महाराजा के लिए आयोजित सम्मान उनके वजाय उनके एक अदना सेवक को मिल गया। इस दुर्धटना के लिए कोई तैयार नही था। लेकिन सोचने के लिए समय मिले तो फिर वह दुर्घटना कैसी! त्ीनों को रंज हुआ। अपना अधिकारोचित सम्मान प्राप्त न होने से प्रमुख अतिथि नाराज हुए। जिन्हें सम्मानित करना था उन्हें न किया जा सका। इससे नवाब साहब दुखी हुए। और जिसका उस सम्मान पर कोई दावा नही था। और जिसकी नजरमें उसकी कोई कीमत भी नही थी। उसका मन भी इस जबरदस्ती के सम्मान से विपण्ण हो गया।
दुर्धटना के बहाने प्रकृति अंहकारियों से कभी-कभी कैसा विलक्षण कर वसूल करती है।

37

जीवन और नाटक

नवाब साहब के अजीबोगरीब षौकों की विचित्रताएॅ देष भर में मषहूर थी। महाराजा नीलमनगर के साथ रामपुर जाने का योग आया तब इस बात को लेकर मेरे मन में भारी कूतुहल था। हम स्पेषल ट्रेन से गये थे। और भी चार-पांच महाराजा तषरीफ लाये थे। अतः रंग डट कर जमेगा ऐसी अपेक्षा थी। दरभंगा के महाराज या रामपुर के नवाब की मेेहमांनवाजी का वर्णन करना आसान बात नहीं है। इसकी कोषिष करने वाले के लिए एक और

भी खतरा रहता है। ऐयाषी और फजूलखर्ची के जो-जो कीमिये वहां आजमाये जाते है वे लगभग तिलिस्म की श्रेणी के होते है। अतः सुनने वालों को वे असंभव मालूम देते है और कहने वाले की गणना गपोड़ों में हो सकती है।

लेकिन जिस रोज हम पहुंचे उसी रोज रात को खेले गये नाटक का वर्णन संभव है। रामपुर के महल में ही रंगषाला है और वह भी अत्यंत सुसज्ज और आधुनिक। भारत तो क्या योरप की किसी भी नाट्यषाला से तुलना की जा सके ऐसी सुरम्य और अत्याधुनिक सुविधाओं से युक्त। नवाब साहब खुद नाट्यकार है, कवि है, और संगीत नियोजक भी है। हमने देखा वह चितांमणि नाटक उन्हीं की प्रतिभा की उपज था। आज रंगभूमि पर स्त्रियों की भूमिका स्त्रियां करें यह एक सर्वमान्य नियम हो चुका है। परंतु नवाब साहब के रस्मोरिवाज दुनिया से निराले थे। उनके यहां स्त्रियों की भूमिकाएॅ कमसिन लड़के निभाते थे।

रंगमच के पास ही दिल्ली सरकार के किसी प्रधान सचिव को षोभा दे ऐसा संुदर सुषोभित और सुविषाल टेबल लगाया गया है। नवाब साहब यहीं बैठते है। टेबल पर सौ-सवा सौ रंगविरंगे बिजली के बटन लगे रहते है। उनकी सहायता से मंच नेपथ्य, प्रकाष-योजना, पाष्र्व-संगीत और अन्य सभी बातों का संचालन नवाब साहब खुद करते है। टेबल पर चार-पांच टेलीफोन भी रखे रहते है। एक नेपथ्य में पात्रों से बातचीत करने के लिए दूसरा महल में बातचीत करने की सुविधा के लिए तीसरा जनानखाने से संपर्क बनाये रखने के लिए चैथा ट्रंक-काल के लिए पांचवा .... खैर, छोड़िये।

इस सारी पूर्वभूमिका के साथ हम नाटक देखने बैठे। प्रेक्षक सब मिला कर पचीसतीस से अधिक नही थे। पहली पंक्ति में अभ्यागत नरेष सोफों पर बैठे थे। उनके पीछे कुरसियों पर उनके अफसर आदि थे और सब से पीछे पांच सात गानेवालियां थी। जिन्हें मेहमानों का मनोरंजन करने के लिए दूर दूर से बुलाया गया था।

प्राचीन पद्धति के अनुसार बंदूक की आवाज के साथ परदा उठा। सूत्रधार और नटियों ने यमन-कल्याण में मंगलाचरण गा कर नाटक का आंरभ किया। कथा वस्तु बचपन में देखे हुए 'विल्वमंगल उर्फ सूरदास' नाटक की ही थी। एक के बाद एक प्रवेष होते गये। नवाब साहब बीच बीच में टेलीफोनों की सहायता से संगीत का संचालन प्रकाष का संयोजन अभिनव का निर्देषन इत्यादि जिम्मेदारियां सब पर प्रभाव पड़े ऐसी अदाकारी के साथ निवाहते जा रहे थे। गाड़ी ठीक चल रही हो तब जनानखाने का टेलीफोन उठा कर किसी नाजनीन से गूप्तगू भी कर लेते थे।

षीध्र ही चितांमणि और विल्वमंगल के जीवन का सब से रोमांचक प्रसंग आ पहंुचा। चितामणि अपनी अटारी पर उदास बैठी है। दो तीन दासिया अपनी मालकिन का मनोरंजन हो ऐसा संगीत जमाने की कोषिष कर रही है। इतने में विल्वमंगल आता है। उसके पहनावे की तड़क भड़क देख कर दासियां प्रभावित हो जाती है और उसे आदरपूर्वक ऊपर ले जाती है। अटारी पर दोनों की बातचीत होती है चितामणि को जब यह मालूम पडता है कि विल्वमंगल विवाहित है, तब यह उसे स्वीकार करने में आनाकानी करती है और उपदेष के चार षब्द सुनाती है। कि विवाहित पुरूश का वारांगना के घर आना मुनासिब नही।

जैसे ही चिंतामणि के मुंह से यह वाक्य निकला कि नवाब साहब ने पीछे की पंक्ति में बैठी हुई गायिकाओं की ओर मुखातिब हो कर ताना कसा, ''जरा सुन भी तो लो। चिंतामणि जैसी जिंदगी बनाओं।' ' गानेवालियों में बनारस की सिद्धेष्वरी बाई भी थी। उन्होंने तुरंत जबाब दियाः ''हजूर चिंतामणि तो अपने मकान में बैठी है जब कि हम आपके दौलतखाने में है। पराधीन है। हम कहां किसी को बुलाने जाती है। मजबूरी हमें खींच लाती है। क्या करें? कहाॅ जायं?''

सब हंस पडे। नाटक चलता रहा। मै विशण्ण मन से बीच में ही उठ गया और डेरे पर लौट आया।

स्विज़रलैंड मे हमने मांत्रों नामक पहाडी़ स्थान को हमारा प्रधान केन्द्र बनाया था और वहां से मोटर द्वारा पूरे देष का परिभ्रमण करना निष्चित हुआ था। मांत्रो लेमन सरोवर के सुरम्य तट पर बसा हुआ है। सामने आल्प्स की गिरिमाला फैली हुई है। हम ठहरे थे उस मांत्रो पेलेरा होटल की गणना संसार के श्रेश्ठ होटलों में की जाती है। प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ, विभिन्न देषों के अध्यक्ष या मंत्रीगण, राजा-महाराजा, देष-विदेष के धनकुबेर और अन्य बडे माने जाने वाले लोग ही इसमें ठहर सके ऐसा इसका इतिहास और प्रतिश्ठा है। इसका एक कारण तो यह है कि यह होटल अत्यंत महंगा है। षायद यही उसकी उपरोक्त महत्ता का एकमात्र कारण हो। इतना अधिक रूपया खर्च करके जो यहां ठहर सकता है वह बडा़ आदमी कहलायेगा ही। फिर वास्तव में वह चाहे कुछ हो।

होटल के रजिस्टर में हमारी मंडली के प्रमुख का नाम भारत के नीलमनगर राज्य के महाराजा की लंबीचैडी़ विरदावली के साथ दर्ज हुआ था। योरप-अमरीका वालों पर ‘महाराजा’ षब्द का सम्मोहन तुरंत चलता है। इस षब्द में ही कुछ ऐसा जादू है कि आवभगत में किसी प्राकर की त्रुटि रहना संभव नहीं था। उसी अनुसार आयोजन षुरू हुआ। किराये की टेंक्सी का उपयोग करने से मुंहमांगे दाम दे कर भी नाहे जैसी पुरानी-धुरानी गाडी़ मिलने की संभावना थी। अतः एक ऊँची बनावट की बढ़िया निजी कार तय की गयी। सारा सफर हमने इसी गाडी़ में किया। रेल से यात्रा करने की नौबत षायद ही कभी आयी हो।

एक रोज हमने होटल मेनेजर को सूचना दी कि षनिवार-रविवार को हम बर्न जाना चाहते है। अतः किसी अच्छे होटल में हमारा इंतजाम करवा दिया जाय। लेकिन षनिवार आते-आते महाराजा साहब की तबीयत कुछ अस्वस्थ हो गयी और उन्होंने आने से इनकार कर दिया। अतः राजकुमार और मैं बर्न के लिए रवाना हुए। सवारी में उपरोक्त आलीषान मोटर थी। ड्राइवर काबिल और चलतापुरजा था। नियत समय पर हम एक षानदार होटल में पहुंचे। मेनेजर हमे अत्यंत आदर-सम्मान पूर्वक हमारे कमरों में ले गया। कमरे वाकई सुसज्ज और सुव्यवस्थित थे। फरनीचर अत्यंत ऊँचे दर्जे का और कीमती था।

हम कुछ स्वस्थ हुए न हुए कि मेनेजर ने ऊपर आ कर काह कि नीचे बहुत से लोग हमसे मिलने आये है। मुझे आष्चर्य हुआ। बर्न में हमारा किसी से परिचय नहीं था। विचार आया कि हमारे भारतीय नाम पढ़ कर षायद अन्य भारतीय यात्री हमसे मिलने चले आये हो। बरहहाल, राजकुमार को कमरे में छोड़ कर मैं नीचे गया।

वहां दीवानखाने में दस-बारह योरोपीय स्त्री-पुरूश बैठे राह देख रहे थे। मेनेजर ने सब का परिचय कराया। वे सब के सब किसी न किसी समाचार पत्र के प्रतिनिधि थे। मैंने तहजीव निभायी। उनसे मिल कर आनंद प्रकट किया। उन्होंने भारत और भारत के रजवाडो़ के संबंध में कई प्रष्न पूछे। मैंने अपनी मति के अनुसार उत्तर दिये। कुछ लोगों ने फोटो खींचे। जाते समय भारतीय उदारता और मेहमांनवाजी का तकाजा निबाहने के लिए मैंने सब को षराब पेष की।

दूसरे रोज सुबह उठ कर देखा तो सारे समाचारपत्रों में मेरी तस्वीर छपी हुई थी। साथ ही अनजानी फे्रंच भाशा में दो-दो कालम भर कर लेख छपे हुए थे। मैं आष्चर्य में डूब गया। होटल के मेनेजर को बुला कर पूछा। रहस्य खुला कि उन पत्रकारों ने मुझे ही महाराजा समझ कर मेरी मुलाकात का वृत्तंत छाप दिया था। गलतफहमी की कछ गुंजाइस भी थी। होटल के कमरों का आरक्षण महाराजा के नाम से हुआ था। जबकि उनमें रह रहा था मैं।

अब क्या हो? रविवार की रात को मांत्रो लोटे। सोमवार की सुबह की डाक से सारे समाचारपत्र-सचित्र और सवृत्तांत -यहां भी आ पहुंचे। मैंने सब फाड़ दिये। सौभाग्य से अखबार या और कुछ भी पढ़ने-पढा़ने का षैक न तो महाराज को था न राजकुमार को। अतः अंत तक उन्हें इस संबंध में कुछी भी मालूम नहीं पडा़।

अज्ञान कभी-कभी आषीर्वाद सिद्ध होता है और अनुभवजन्य ज्ञान दुःखदायी और हास्यास्पद। लेकिन इस अनुभूति में किसी को साझेदार कैसे बनाया जाय।

39

समय का मूल्य

एक रोज़ सुबह-सुबह महाराजा साहब का फोन आया कि बडा़ महत्वपूर्ण काम है, तुरंत महल में पहंुचो। भागा-भागा हाज़िर हुआ। आज्ञा मिल कि मोटर भेज कर प्रधान न्यायाधीष बाजपेयी जी को बुलवाया जाय। बडा़ जरूरी काम है। मैंने तुरंत मोटर भेज दी और कोई आध घंटे बाद वह आरामपसंद लखनवी जीव उपस्थित हुए। बाजपेयी जी लखनऊ के थे। ठंडी और रंगीली तबीयत। प्रषान्त आत्मा। भागदौड़ से सख्त नफरत। नौ बजे सो कर उठते थे। फिर न्यिकर्म, भोजन आदि से निवृत्त हो कर मुष्किल से बारह बजे तक कचहरी पहुंचते। आज उन्हें सुबह आठ बजे पकड़ मंगवाया था। मैंने धीरे से अपनी मजबूरी जाहिर कर के क्षमा मांग ली। फिर उन्हें मुलाकातियों के कमरे में बैठा कर मैं अपने काम से चला गया।

ग्यारह बजे लौट कर देखा तो बाजपेयी जी वहीं बैठे थे। पूछने पर मालूम हुआ कि महाराज ने अब तक बुलाया नहीं। मैंने जा कार उन्हें याद दिलायी कि बाजपेयी जी अब तक बैठे है। मैं फिर अपने काम में लग गया। कोई बारह बजे मेरे नाम की पुकार हुई। इन्जीनियर साहब का फोन था। वे नये बनने वाले महल में सुबह नौ बजे से महाराजा साहब की राह देख रहे थे। यह समाचार भी महाराज के हुज़ूर में पहुंचाया गया। हुक्म मिला की मोटर तैयार करवायी जाय। कोई आध घंटे बाद हम नये महल का मुआइना करने के लिए निकले तब मोटर में बैठते समय फिर याद दिलायी कि बाजपेयी जी बैठे है। उत्तर मिला कि लौट कर बात करेंगें, उन्हें बैठाया जाय। डेढ़ बजे हम लौटे। आते ही महाराज नहाने चले गये। बाजपेयी जी को आष्वासन दे कर मैं भी घर चला गया। जाते समय ए.डी.सी. को सूचना देता गया कि महाराज को बाजपेयी जी की याद दिलाते रहें।

षाम को टेनिस खेलकर साढे छह बजे महल में आया तो मालूम हुआकि बाजपेयी जी अब तक बैठे है। पूछताछ की कि उन्होंने कुछ खाया-पिया भी या नहीं। मालूम हुआ कि बेचारे सुबह से भूखे बैठे है। महाराज न मालूम कब बुला ले इस दुविधा में भोजन करने भी नहीं गये। मैंने तुरंत उनके लिए चाय-नास्ता भिजवाया और अंदर खबर भिजवायी कि बाजपेयी जी अबतक बैठे है।

लगभग साढे-सात बजे महाराजा साहब बारह आये। लेकिन इतने में ही खबर आयी कि महल के पिछवाडे किसी चीते ने एक गाय मार डाली है। बस, एकदम षिकार का हुक्म छूटा और बाजपेयी जी से बैठने को कह कर हम चीते की तलाष में चल दिये। साढे नौ बजे चीते को मार कर लोटते ही महाराज साबह यह खुषखबर महारानी को सुनाने अंतःपुर में चले गये।

मैंने मेरे ढंग से बाजपेयी जी का सांत्वन किया। इतने में खबर आयी कि राज का खाना महाराज जनानखाने में महारानी सहिबा के साथ ही खयेंगे। मैंने एक दासी से बाजपेयी जी का संदेष भीतर भिजवाया और उनके भोजन की व्यवस्था अपने साथ महल में करवा ली। राज को ग्यारह बजे तक बुला नहीं आया अतः खास इजाज़त ले कर मैं स्वयं अंदर गया। महराजा साहब ने कहा कि बाजपेयी जी सुबह से बैठे है। महाराजा खाना खा कर हुक्का पी रहे थे। इर्दगिर्द सौन्दर्य और विलास का वातावरण बिखरा हुआ था। बोले, ‘‘खेद है, उन्हें रोके रखना पडा़। लेकिन अब तो कल ही बात होगी। उन्हें सुबह ठीक नौ बजे बुला लो। तभी सारी बात तय कर लेंगें।’ ’

रोज के नियम के अुनसार आधीरात बीते मैं घर जाने को निकला। बाजपेयी जी को मोटर में साथ ले लिया और उनके घर पर उतार दिया। रास्ते भर वे एक षब्द भी नहीं बोले। वह मौन क्या था, उनकी अंतव्र्यथा की मूक अभिव्यक्ति थी।

मैंने भी उसे तोड़ना मुनासिब नहीं समझा।

40

मैं अपनी चाल नहीं बिगाड़ सकता . . .

हमारी रियासत बडी़ थी पर राजधानी का स्टेषन बहुत छोटा था। डाकगाडी़ तो रूकती ही नहीं थी और सवारी गाडी़ सिर्फ दो मिनट रूकती थी। डाकगाडी़ पकड़ने के लिए हमें सवारी गाडी़ से जंक्षन जाना पड़ता था। एक बार हम अपना लवाजिमा साथ लिये लखनऊ जा रहे थे। वहां से मसूरी जाना था। स्टेषन पर किसी छोटी रियासत के राज भी इलाहबाद जाने के लिए पधारे थे। प्लेटफार्म पर उनके बैठने के लिए स्टेषन मास्टर के दफतर की एक मेज़ कुरसी रख दी गयी थी। राजासाहब प्लेटफार्म के अगले सिरे पर, जहां इंजन रूकता है, बैठे थे। इर्दगिर्द हुक्म बजा लाने को तत्पर मुसाहिबों के झुंड मंडरा रहे थे। इतने में घंटी हुई, सीटी बजी और दूर से गाडी़ आती हुई दिखाई दी।

एक मुसाहिब ने गुजारिष की कि गाडी़ आ रही है। तुरंत हुक्म हुआ कि पान पेष हो। पान लगात-लगाते गाडी़ आ गयी। दूसरा हुक्म हुक्का भरने के लिए छूटा। हुक्का अभी भरा भी नहीं गया था कि गाडी़ ने सीटी बजा दी। स्टेषन मास्टर भागता हुआ आया। महाराजा का अव्वल दर्जे का डब्बा बिलकुल पीछे, गार्ड के डब्बे के पास था, जब कि महाराज इंजन के सामने बैठे ोि। मैं उसी डब्बे में बैठा राह देख रहा था कि महाराज अब तक कैसे नहीं आये। खिड़की से झांक कर देखा। महाराज के कई सेवक सामान उठाये बेतहाषा दौड़ रहे थे। इतने में गाडी़ चल दी। चलती गाडी़ में सामान ध्केला गया। स्टेषन मास्टर ने लाल झंडी दिखा कर गाडी़ रोक दी। मैं उतर कर महाराज को लाने दौडा़। सरकार अभी कुल्ला कर रहे थे। बडी मुष्किल से मैंने उन्हें समझाया और डब्बे की ओर चलने को राजमंद किया। अब प्लेटफार्म पर एक अजीब दृष्य दिखाई दिया। एक मुसाहिब हुक्का थामे साथ-साथ चल रहा था। दूसरा हुक्के की नै थामे हुए है। तीसरा चांदी का बडा़ सा पानदान खोले पान पेषकर रहा है और महाराजा साहब बडी बेतकल्लुफी से, बडे़ इतमीनान से, पान चबाते -चबाते, नै से धुआं छोड़ते हुए, गजगति से आगे बढ़ रहे है।

मेरा धैर्य सामाप्त हो रहा था। स्टेषन-मास्टर व्याकुल हो रहा था। हड़बडी में उसने लाल की बजाय हरी झंडी दिखा दी। गाडी़ फिर चल पडी़। मैंने महाराज से कुछ जल्दी कदम उठाने की प्रार्थना की। जवाब मिला, ''गाडी़ जो जाना हो, तो जाय। मैं अपनी चाल नहीं बिगाड़ सकता।' ' मुझे उपाय सूझा। भाग कर डब्बे में चढा़ और जंजी खींच दी। आखिर गाडी़ पर एहसान कर रहे हों एसेी लापरवाही और बेनियाजों से महाराजा साबह सवार हुए।

भला हो गया स्टेषन-मास्टर का। महाराज ने प्रसन्न हो कर उसे पचीस रूपये इनाम दिये। इसके उत्साह में उसने दुगुने जोर से हरी झंडी फहरायी और गाडी़ ने स्टेषन छोडा़।

41

आवष्यक असबाब

नरेन्द्र मंडल के अधिवेषन में सम्मिलित होने के लिए हम दिल्ली जा रहे थे। हमारी राजधानी का स्टेषन छोटा था। डाकगाडी़ वहा रूकती नहीं थी। अतः कुछ पहले की सवारी गाडी से झांसी जा कर वहां से डाक पकड़नी थी। स्टेषन पर उस रोज़ तीन-चार महाराजाओं का सामान इकट्ठा हो रहा था। महाराजा तो सब मोटर से झांसे चले गये थे। सिर्फ उनका सामान, नौकर-चाकर, सिपाही-चोबदार और इन सब की निगरानी के लिए दो एक छोटे-मोटे अफसर, इन्ही का मजमा स्टाफ-अफसरों की देखभाल में झांसी जा रहा था।

राजा-महाराजाओं क अनावष्यक सामान के ढेरों में से परिचित था। अतः सामान के पहाडो़ को देख कर मुझे आष्चर्य नहीं हुआ। परन्तु एक महाराजा के सामान में बीस-पचीस मन की एक लंबी-चैडी़ षिला ने मेरा ध्यान आकर्शित किया। एक दाढी़वाल दरबान सामान की रखवाली कर रहा था। मैंने कहा, ''क्यों भाई, यह पत्थर किस काम के लिए है?'' दरबान ने झुक कर सलाम किया और जवाब दिया, ''सरकार, हुजूर के संग धोबी जात है दिल्ली। वहां उसे कपडे धाने के लिए पत्थर मिल न मिल, सो घर से लिये जात है।' '

इस आवष्यक असबाब को देखकर विचार आया कि भारत के नक्षे में इस पीले रंग की दुनिया ने भी क्या-क्या गजब ढाये है!

42

हीरे की परख जौहरी ही कर सकता है . . .

नीलमनगर में बसंत की बहार थी। गर्मी पड़ना षुरू नहीं हुआ था पर उसके लक्षण नज़र आने लगे थे। ठंड समाप्त हो चुकी थी पर धूप में अभी तेजी नहीं आयी थी। होली के बाद कुछ ही रोज़ बीते थे। उसके उल्लास के अवषेश अब तक बाकी थे। चारों तरफ बसंत का आ◌ादक वातावरण छया हुआ था। तालाब छलक रहे थे। हरियाली पर गहरी आभा थी। जीवन में ताज़गी, प्रसन्नता और उत्साह का साम्राज्य था। जंगलों में निश्कंटक जीवन था। पषुओं को मनुश्यों का भय नहीं था। पक्षी जिंदगी का आनंद लूट रहे थे। निरभ्र आकाष सुबह ऊशा के स्वर्णरंगों का स्वागत करता और षाम को संध्याके गहरे षराबी रंगों का। विचार, वातावरण और व्यवहार, तीनों में बसंत का उत्साह छलक रहा था। मनुश्य यदि वास्तव में मनुश्य हो, तो आनंद से झूम उठे ऐसा उल्लास छाया हुआ था।

इस ऋतु में राज्य के महमान आते, और देष-विदेष के सौदागर आते। घुड़-सवारी, क्रिकेट, टेनिस, हांकी इत्यादि मैदानी खेलों के लिए भी यहा मौसम अनुकूल होता है। षाम को, राजमहल के बाग में, पानी पी-पी कर तरबतर बने हुए हरियाली के गलीचे पर हम बेंत की आराम कुरसियां डलवा कर बैठते और घंटो इधर उधर की बातें होती। संस्मरण, हंसी-मजाक, प्रेमालाप, पुरानी यादें, और अनेक प्रकार के प्रासंगिक विशयों की गपषप में समय बेमालूम बीत जाता। बीच-बीच में चाय-नाष्ते के दौर चलते रहते।

एक षाम को इसी प्रकार की महफिल जमी हुई थी। महाराजा साबह मोटर में घूमने निकल गये थे। वातावरण में निर्भयता और बेफ़िकरी थी। षिकार के निश्णात सुमेरसिंह की बातों ने रंग जमा रखा था। सुमेरसिंह षिकार की कला और षास्त्र, दोनों का जानकार था। बाघ के षिकार में तो उसका हाथ पकड़ने वाला कोई नहीं था। इस मामले में उसकी राय अंतिम मानी जाती थी। आज उसने एक वैयक्तिक संस्मरण छेड़ दिया था। उसका डेढ़-दो साल का लड़का कई महीनों से बहुत भयभीत रहता था। किसी भी आकस्मिक आवाज से डर जाता था। बिल्ली या कुत्ते से भी घबराता था। कोई झूठमूठ को ही कह दे कि बाऊ आया, तो वह भय, से चिल्ला उठता था। कोई उपाय कामयाब नहीं हो रहा था। इस से बालक चिड़चिडा़ और कमजोर हो गया था। एक रोज़ सुमेरसिंह ने यह बात भगवंतसिंह से कही। भगवंत की नब्बे वर्श की दादी जीवित थी। उन्होंने नुस्खा बताया, बाघ के दो साबुत और नोकदार नाख़ूनों का तावीज़ बनवाइये। सोना हो, तो बहुत अज्ञच्छा, वरना चांदी में मढ़वा लीजिये और बालक के गले में पहला दीजिये। डर दूर हो जायेगा। सुमेरसिंह ने षिकार-अफसर से दो तीक्ष्ण बानख प्राप्त किये। तावीज़ बनवाया और बालक के गल में पहना दिया। परिणाम-स्वरूप बालक बिलकुल निर्भय बन गया। कुत्त-बिल्ली से डरने वाला अब उन्हें मारने को दौड़ता। किसी भी प्रकार की आवाज़ से वह अब नहीं डरता . . . इत्यादि। बस, इस बाघनख की बात से ही आज सुमेरसिंह ने महफिल में रंग जमा दिया था।

महफिल में षिकार-अफसर त्रिलोकसिंह भी उपस्थित थे। उनकी वेष-भूशा और रंग-ढंग ही लोगों को हंसाने के लिए काफी थे। रंग रंगीले जीव थे। बाते करने लगे तो सुननेवालों का हंसा-हंसा कर बुरा हाल कर दें। बुंदेली भाशा के मर्मज्ञ थे और लतीफों का तो उनके पास अक्षय खजाना था। हीरे की खान से लगा कर स्त्रियों के हृदय की गहराई तक से नाना प्रकार के लतीफे चुन लाते और नमक-मिर्च लग कर पेष करते। उस षाम को तो उन्होंने कमाल कर दिया। बात छिड़ गयी थी बाघ के षिकार की। बस, त्रिलोकसिंह की रसपगी वाणी बहने लगी।

' '. . . षिकार हांके का था। हांके का दायरा घिर का पास आ पहं◌ुचा था। आवाज़ सघन हो चुकी थी। फिर भी बाघ अपनी गुफा में से बाहर नहीं निकल रहा। सब परेषान हो रहे थे। आखिर मषालें जलायी गयी। दोपहर का समय। . . . भयानक गर्मी। . . . ऊपर से यह मषालों की तपिष। . . . लोग अकुलाये हुए। . . . षिकारी

व्याकुल। . . . इतने में भयानक गर्जना हुई। . . . पूरे जंगल में प्रतिध्वनि गूंजी। कई लोगों के हाथों से मषाले गिर गयी। हाके की अगली कतार के लोग अस्त-व्यस्त होकर भागने लगे।

. . . इतने में बाघ दिखाई दिया। . . . लंगडा़ता हुआ चल रहा था। . . . विकराल प्राणी। . . . पर न मालूम क्यों, इस समय बडा़ दीन दिखाई दे रहा था। . . . आंखों में न जीवन की खुमारी, न मृत्यु का तेज। . . . थ। सिर्फ विवषता का दैन्य। . . . लंगडाता हुआ बाघ मचान की ओर बढा। . . .।

फौरन गोलिया छूटी। धांय-धांय की आवाज़ हुई और बाघ अंतिम गर्जना कर के धराषायी हो गया। . . . ऐसा लगा मानो गुफा से निकल कर सीधा मौत के मुंह में आ गिरा हो। . . . सामना नहंी, . . . मुकाबला नहीं, . . . मानो मरने के इरादे से ही बाहर निकला हो। जीवन के प्रति ऐसी उदासीनता उस वन्य पषु में बडी़ अस्वाभाविक लगी। . . . मैंने महाराज से कहा। . . . महाराज ने कुछ याद किया और कहा कि देखना चाहिये, . . . कहीं बाघ के पांव में कांटा तो नहीं लगा। . . . बाघ इतना भयानक था कि मरे हए के पांवों का स्पर्ष करने में भी डर लगे। मैंने जा कर देखा। . . . सचमुच ही, अगले दाहिने पंजे में कांटा चुभा हुआ था।

‘ ‘ . . . एक बूंढे षिकारी ने कांटा निकाला। फिर उसेने अपने अनुभव की बात सुनाई, . . . सच मानिये, साहब, बाघ का सब से नाजुक अंग होता है उसके पांव के तलवे। यह बहादुर जानवरी गोली तो छाती सामने कर के खा लेगा, पर कांटा चुभने पर वह लोमडी़ से भी ज्यादा दीन बन जाता है। . . . इसके पांवों के तलवे तो देखो। . . . कितने कोमल है। . . . किसी ने हंस कर कहा हां, हां, . . . क्या कहने। फूल से भी ज्यादा कोमल है। . . .बूढे षिकारी की आंखे चमक उठी। बोला, . . . मज़ाक की बात नहीं। . . . बाघ के तलवे किसी नवयौवना सुंदरी के गालों से भी ज्याद कोमल होते है। . . . आज रजा हाथ तो फेर कर देखिये। . . . सुमेर, जरा गाल लगा कर देख। . . . षायद कोई बीती हुई बात याद आ जाय। . . .सुमेर ने गाल तो नहीं, पर हाथ से सहला कर देखा। फिर गंभीर होकर कहा, . . . भई, बात तो सच है। इस पर बूढे षिकारी ने फिर कहा, . . . यूं नहंी, प्यारे। . . . गाल लगा कर देख। . . . इस बार षिकार के षौकीन सुमेरसिंह ने यह भी किया। . . . बोला कुछ नहीं। . . . पर उसके मौन से जाहिर था कि बूंढे षिकारी की बात सही थी।

त्रिलोकसिंह की इसी प्रकार की बातों में षाम कहां बीत गयी, कुछ मालूम ही नहीं पडा़। दूसरे दिन सुबह मैं महल में पहुंचा ही था। चाय-नाष्ता हो रहा था कि दरबान ने आ कर सूचना दी कि कोई ईरानी सौदागर गलीचे ले कर आया है। डयोढी़ पर जा कर देखा। सौदागर के पास अजयगढ़ के महाराजा का सिफ़ारिषपत्र था। उस से षाम को पांच बजे आने काक कहा। तब तक महाराज चाय पी कर निवृत्त हो जाते थे।

दोपहर ढल रही थी। ठीक पांच बजे गलीचों का सौदागर आ पहंुचा। महाराज को पहले ही सूचित कर दिया गया था। महल के बडे दीवानखाने में गलीचे खुलवाये गये। रंग, नरमी, नक्काषी और कारीगरी की दृश्टि से कालीन एक से एक बढ़ कर थे। सवा-पांच बजे महाराज आये। पसंदगी का काम षुरू हुआ। महाराज ने जूते-मोजे उतार कर कालीनों पर चल कर देखा। हाथों से भी उनकी कोमलता का अनुभव किया। हम लोग भी देखादेखी उनका अनुकरण कर रहे थे। सौदागर फारसी के गहरे पुट वाली उर्दू में गलीचों के गुणों का, रंगों का, सुकुमारता का और कारीगरी का वर्णन किये जा रहा था। आखिर दो गलीचों पर महाराज की मरजी स्थिर हुई।

परन्तु इतने में उन्हें जैसे कुछ याद आया। एक सेवक को भेज कर बडी़ महारानी साहिबा को बुलवाया बडी़ महरानी (महाराज की माताजी) आयीं। लगभग अस्सी साल की उम्र, पर चेहरे पर से स्त्रीत्व का तेज अब तक अस्त नहीं हुआ था। बुढ़िया ने पहले नंगे पांवों गलीचों पर जल कर देखा। हाथों से सहला कर देखा। फिर सब से संुदर गलीचे पर वे बेझिझक लेट गयी और गालों से उसकी कोमलता का अनुभव किया। काफी सोच-विचार के बाद उन्होंने वे ही दो गलीचे पंसद किये जिन्हें हम पहले ही पसंद कर चुके थे। महाराजा ने अनुमति दी।

हमने कीमत चुका दी। दो कालीनों के लिए हजारो रूपये गिन दिये। आष्चर्यमुग्ध सौदागर खुष होता हुआ बागी के गलीचे लपेट कर चला गया।

सुना था कि हीरे की परख जौहरी ही कर सकता है और मोती का वजन मोती तौलने के कांटे पर ही हो सकता है। उसकी तुला की सूक्ष्मता ही ऐसी होती है। आज इस सूक्ष्मता का प्रत्यक्ष अनुभव हुआ।

43
जीवन, विश, अमृत

लाडली नीलम नगर रियासत की प्रथम श्रेणी की जागीर थी। वहां के वृद्ध जागीरदार ठाकुर दीवन बिरिराजसिंह की मृत्यु हुई तब लोगों को षोक की अपेक्षा आनंद ही अधिक हुआ। ये जारीरदार साहब वैसे तो गीता भक्त थे। पर सावन महीने में जन्माश्टमी के मेले में जुआखाना चलाने में भी उन्हें संकोच नहंी होता था। उस आमदनी से इनकी तो जेबे भरती, पर साधारण दरिद्र लोग आना धन गंवा कर आंसू बहानते हुए लौटते। जागीर की प्रजा अत्यंत कंगाल और दुखी थी। इस दुख से लोगों का एकमात्र आष्वासन था जतना का लाडता राजकुमार रघुराजसिंह। बाप-बेटे में कोई समानता नहीं थी। लाडली के लोगों के हृदय में राजकुमार का स्ािान किसी देवता से कम नहीं था। जन्माश्टमी के उत्सव के दरमियान रघुनाथसिंह अकसर नीलमनगर आ कर रहा करते थे।

पिता की मृत्यु के बाद रधुराजसिंह कर्ताधर्ता हुए। मेरा उनसे गहरा स्नेह था। उनके राज्य रोहण के उत्सव में मैंने दिल खोल कर भाग लिया था। इसके बाद हमारी मित्रता घनिश्ठता का एक-एक सोपान पार करन के बढ़ती ही गयी।

सुंदर और लावण्यवर्ती स्त्रियां जीवन में बहुत देखी है। मनमोहक और चिताकर्शक नारियांे का परिचय भी हुआ है। चतुर और विचक्षण कलावतियों के संपर्क में भी रहा हूं। इन सब गुणों के साथ-साथ षील के तेज से दीप्त महिमामयी मताओं का सहवास भी प्राप्त हुआ है। परंतु सुदर्षन और तेजस्वी पुरूश जीवन के लंबे सफर में कम ही दिखाई देये है। जिनके बर्ताव में अजुता का परिमल महकता हो और जिनके चरित्रसम्पन्न हृदय का आकर्शण दुर्निवार्य सिद्ध हुआ हो ऐसे नररत्नों का परिचय क्वचित ही हुआ है। अद्भुत दाक्षिण्यषील और मेघा के गौराव से षोभित सज्जनों का संपर्क भी कभी कभी ही प्राप्त होता है। तसे फिर इन सब गुणों के सभग समुच्चयके साथ-साथ षील के स्वर्णरंगों से विराजित सत्पुरूशों से मिलने का सौभाग्य जीवन में एकाध बार ही मिला हो, तो आष्चर्य किस बात का। रघुराजसिंह इसी श्रेणी के पुरूश थे। मेरे हृदय में उनके प्रति ऐसा अगाध आकर्शण था कि उनके स्मरण मात्र से मैं आनंदित हो उठता।

रघुराजसिंह के विवाह के लिए अनेक प्रस्ताव आने लगे थे। राजा-महाराजाओं, राजकुमारों और जागीरदारों के चिरित्र के संबंध में छाती ठोक कर विष्वास दिलाना षायद ही कभी संभव होता है। पर लाडली के इस सुपुत्र का चरित्र गंगाजल के समान निर्मल था। सुबह दो घंटे पूजा-अर्चा में बीतते। कुंकुमतिलक से दीप्त उनका मुख निर्मल प्रभा की छटा से जगमगाता रहता। निश्कलंक आंखांे से स्नेह बरसता रहता। स्वर्णरंगी, सुडौल काया में बैठे पराक्रमषील प्राण और अभिजात आत्मा देखने वाले को स्नेह करने के लिए मजबूर कर देते। बालकों के जैसा निव्र्याज और निश्पाप बर्ताव स्वाभाविकता की ऐसी महक फैलाता कि दुश्टता का विचार करने में भी संकोच हो।

यह सब देख कर मेेने मन में यही विचार आता कि यह कोई योगभ्रश्ट आत्मा है जिसने पूर्वजन्म की अधूरी साधना को पूरी करने के लिए मनुश्य -रूप धारण किया है। भगवान ने अवतार तो क्षत्रिय का दिया है पर दृश्टि और हृदय ब्राहमण के पराक्रम और पवित्रताओं के सुभग सुयोग से यह पुरूश कैसा गोरवषाली और चरित्र सम्पन्न हो उठा है, इस आष्चर्य से मैं उन पर मुग्ध था। उनकी मित्रता मेरे लिए अनुपम आनंद और गौरव का

विशय थी और इस विरल सौभाग्य के कारण मैं अपने आपको धन्य मानता था। कालिदास ने वाकई बडी मर्मस्पर्षी बात कही है। ''भावस्थिराणि जननान्तर सौहृदानि।' '

एक बार रघुराजसिंह मोटर से अचानक नीलमनगर आये। कुछ देर बात एकांत मिलने पर, उन्होंने मुझे एक पत्र दिखाया। पढ़ कर बेहद आष्चर्य हुआ। लाडली से साठ-सत्तर मील दूर एक और जागीर थी-असलनेर। वहां की राजकुमारी का पत्र था। नाम था सुमनकुमारी। लिखा था कि एक रोज प्रातः वे पूजा में बैठी थी कि उनके ध्यान में उनकी कुलदेवी ने दर्षन दिये और आज्ञा दी कि उसे तुरंत लाडली के युवराज से विवाहसूत्र में बंध जाना चाहिए। भगवती की आज्ञा और आषीर्वादा पा कर ही वे इस प्रकार का पत्र लिखने की हिम्मत कर सकी है। यह संबंध पूर्वजन्म में ही तय हो चुका है। अतः इनकार न करें। अन्यथा उन्हें षरीर त्यागना पडेगा। इत्यादि।

श्राजपूतों में, और उसमें भी इस प्रकार की सामतयुगीन जागीरों में कन्या का अपने आप इस प्रकार पत्र लिखना अत्यंत आष्चर्यजनक और अभूतपूर्व बात थी। इसमें षील और मर्यादा दोनों का व्यक्क्रिम था। मैं असमंजस में पड़ गया कि उन्हें क्या राय दूं।

पर रघुराजसिंह आ अंतःकरण अत्यंत कोमल और स्निग्ध था। उन्होंने मेरी राय तो पूछी पर निर्णय वे पहले ही कर चुके थे। उन्होंने यह प्रस्ताव मान लेने का दृढ़ निष्चय कर लिया था। मेरे लिए कुछ कहने-सुनने की गुंजाइष ही नहीं थी। वे तो सिर्फ किसी मित्र से बात करके हृदय का बोझ हलका करना चाहते थे। खैर, बसंत पंचमी के दिन विवाह हो गया। वैसे तो लाडली और असलनेर का पीढ़ियों पुराना बैर था। इस विवाह की कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था। पर कन्या के हठ और रघुराजसिंह की सहज समति ने असंभव को संभव कर दिखाया।

असलनेर की राजकुमारी को लाडली की हवेली में देख कर जिस सुख और आनंद का अनुभव मेरे हृदय में होना चाहिए था, वह नहीं हुआ। बल्कि उनके व्यक्तित्व को देख कर कुछ आषंका ही हुई। वैसे तो वह अत्यंत सुंदर और सुकुमार थी। षरीर सुडौल था और आंखे मदमाती। पर न जाने क्यों, उन्हें देख कर, उनसे मिल कर, खुषी नहीं होती थी। उनकी चुप्पी और षांति तो सही थी, पर उनका हास्य भयानक था। इस स्त्री में ऐसा कौन सा तत्व था जिसने उसे राजरानी होने के बावजूद इतना डरावना बना दिया था? पकडा़ई में न आने वाला कोई सूक्ष्म, आसुरी तत्व था जरूर, पर बहुत कोषिष करने पर भी मैं उसकी थाह नहीं पा सका। आखिर तक कुछ भी समझ मंे नहीं आया। कहने की आवष्यकता नहीं कि मैंने अपने विचारों और संवेदनों को अपने मन तक ही सीमित रखा। अंतर्मन की झकझोर देने वाली और भविश्य में अचूक सिद्ध होने वाली इस प्रतिक्रिया में मैंने किसी को सहभागी नहंी बनाया। रघुराजसिंह से कुछ कहने की तो मैं कल्पना भी नहीं कर सका।

विवाह के छः सात महीने बाद रघुराजसिंह नीलमनगर आये। उनके रूप में प्रफुल्लित पौरूश की प्रतिमा का दर्षन करने की अभ्यस्त मेरी आंखों ने मुरझाया हुआ मन, दुःखी अंतःकरण और गलत हुआ षरीर देख कर गहरे विशाद का अनुभव किया। वह रात कभी भुलायी नहीं जा सकेगी। हमारे बिस्तर छत पर लगे हुए थे। दो तकिये गोद में रखे, उन पर हाथ टेके रघुराजसिंह तख्त पर बैठे थे। कुछ कहना चाहते थे पर कह नहीं पा रहे थे। हृदय खुलना चाहता था पर बुद्धि उसे रोक रही थी। मैं कुछ पास सरका। अपने प्रिय बंधु के प्रति स्नेह से गदगद हो गया। उनके ठोढी़ को अंगुली से छू कर कहा, ''रघुराज, मन की बात न बताओ तो इस रात की कसम।' ' कुछ देर मौन रह कर भर्राई हुई आवाज में उन्होंनों कहा, ''क्या बताऊँ, भाई। हृदय का नासूर है। कहते हुए लाज आती है। . . . सुमन वैसे तो बहुत अच्छी है। संुदर है, चतुर है, पर . . . ''और वे रूक गये। पर मैं छोड़ने वाला नहीं था। कहा, ''पर क्या?'' कुछ हिचकिचा कर बोल, ''पर . . . पलंग पर पास में सोती है तो ऐसा महसूस होता है जैसे कोई नागिन सो रही हो। कभी-कभी तो रात-रात भर मुझे नींद नहंी आती। कभी-कभी आधी रात बीते मैं उठ कर दूसरे पलंग पर सो जाता हंू। निदित अवस्था में वह मोहक दिखाई देने के बजाय डरावनी मालूम देती है।' '

इस बात से मुझे आष्चर्य बिलकुल नहीं हुआ क्यों कि मेरी अपनी संवेदना भी इसी प्राकर की थी। आज मैंने अपने मनोभाव उन्हें बता दिये। हम दोनों सहमत तो हुए, पर इसका उपाय क्या? बहुत विचार करने पर भी कोई मार्ग नहीं सूझा। उन्हं मैंने कई दिनों तक रोके रखा। इससे वे कुछ स्वस्थ और प्रसन्न तो हुए, पर इस समस्या का कोई हल हम नहीं ढंूढ सके। फिर एक राज अचानक ही वे घर जाने को तैयार हो गये। समस्या का कोई हल नहंी सूझा ा था, पर यह निष्चय किया गया कि सुमनकुारी को कुद समय के लिए मायके भेज दिया जाय।

इस बात को कोई दो महीने हुए होंगे। आष्विन महीना था। नवरात्रि के दिन थे। जहंा ं तक याद है दषहरे से पहले दिन की बाता है। तीसे पहर तीनेक बजे लाडली की मोटर महल में आयी और ड्राइवर ने सूचना दी कि रघुराजसिंह को अस्तपताल में लाना पडा़ है। हम बस भागे-भागे अस्पताल पहंुचे। रघुराजसिंह की कंचनवार्णी काया नीली पड़ गयी थी। मानों किसी ने स्याही पोत दी हो। आंखे मुंदी हुई थी। मैंने उनका हाथ हाथों में लिया। सिर पर हाथ फेरा। दो-तीन बार नाम ले कर पुकारा। तीसरी आवाज पर आंखे खुली। एक क्षण के लिए मेरी और देखा और फिर मुंद गयी। डाक्टर ने इंजेक्षन दिया पर कोई असर नहीं हुआ। कुछ देर बाद उनकी गरदन ढलक गयी और इहलीला समाप्त हो गयी। सब लोग स्तब्ध रह गये।

उसी रात को उनका षव लेकर हम लाडली गयी। दूसरे राज सुबह दाहसंस्कार हुआ। दूर-दूर के गांव से लोगों के झुंड उमड़ पडे थे। रघुराजसिंह के चरित्र की सुगंध चहंुओर फैली हुई थी। लोग अपने लाडले युवारा का अंतिम दर्षन करने के लिए दूर-दूर से आये। वेदना बेकरार करने वाली थी, पर मातम मौन ही रहा। इसी व्याकुलता में मैंने हवेली में जा कर सुमनकुमारी का सांत्वन किया। दर-असल तो मैं अपने मन का अपने आप का-सांत्वन कर रहा था।

उसी रोज षाम को लाडली से चल कर नवगांव पहुंचा। यहां नीलमनगर का सरकारी डाक-बंगला था। रात वहां गुजार कर सुबह निकलने का इरादा था। पहंुचा तब तीन-चार लोग मिलने के लिए खडे थंे। उन्होंने बताया कि जागीर के सभी लोगों की स्पश्ट मान्यता थी कि लाडली के ठाकुरसाहब की मृत्यु विशप्रयोगा से हुई है। लोग खुल्लमखुल्ला कहने में डरते थे, पर मान्यता सबकी यही थी। गहरे षोक से अवसन्न मेरा मन इन बातों में नहीं रमा। अब इन प्रवादों से फायदा भी क्या था? मैं कपडे बदल कर बाहर आया और पलंग पर लेट गया। खाने-पीने की सुध-बुध ही नहीं थी। मन में, षरीर में, अंतःकरण में,-पूरी हस्तीमें वेदना मत्त हाथी की तरह भटक रही थी। हृदय में याद की फरियाद उग्र बनती जा रही थी। षंका-कुषंकाओं से मन व्यथित था। ऐसे में नीद बेचारी कहां से आती।

इतने में दूर से कुछ बातचीत सुनाई दी। आवाज बंगले की मालिन की थी। जरा ध्यान से सुना। मालिन कह रही थी, ''रोज दारू पी कर आता है। मुआ, षराबी . . .।' ' इस प्रमालाप से माली बिखर पडा़। दो-चार चुनी हुई गालियां सुनाई दी और फिर मारपीट और तू-तू मैं-मैं। जा कर देखा तो दोनों में कुष्ती हो रही थी। दोनों को छुडा़या। माली नषे मे धुत् था। मुंह से बदबू आ रही थी। उसे खींच कर बरामदे में सुलाया। मालिन से भीतर कोठरी में जा कर सोने को कहा। मैं फिर बिस्तर पर पडा़ करवटे बदलता रहा। थोडी़ ही देर बाद, मुझे सोया हुआ मान कर मालिन बाहर आयी और अपने पति को स्नेहपूर्वक संभाल कर कोठरी में ले गयी।

बंगले के चैकीदार ने पांच घंटे बजाये तब मालूम हुआ कि सवेरा हो गया। झुटपुटा हो रहा था। अंधकार तिरोहित हो कर प्रकाष फैलता जा रहा था। फूलों की सुगंध से वातावरण गमक रहा था। प्रभात की पवनलहरी से मुझे कुछ राहत मिली। आंखे मंूदे मैं अपने दिवंगत बंधु की याद में डूबा रहा।

एकाएक षोरगुल सुनकर मैं चैक पडा़। मालिन चीख रही थी। जाकर देखा तो कोठरी के बाहर बरामदे पर माली पडा़ हुआ है और मालिन बिलख रही है। मालूम हुआ कि माली को सांप ने डस लिया है। मैंने तुरंत ड्राइवर को जगाया और उसे मोटर ले कर डाक्टर को बुलाने भेजा। चैकीदार भी आ पहुंचा। लेकिन मालिन चुप रहे तब न। वह नीचे को झुकी, भगवती का नाम लिया और माली के पांव पर जहां सांप ने काटा था वहां उसने दांत गडा़ दिये। इसके बाद ली जहर चूसने। लहू चूसती जाती और थूकती जाती थी। काफी देर तक यही चलता रहा। फिर उसकी गति कुछ धीमी पड़ गयी। कुछ देर में ही वह चक्कर ख कर जमीन पर ढलक गयी। वह जहर चूसने का परिणाम था। इतने में माली की आंखे खुलने लगी। बडी मुष्किल से वह बैठा और घिसटता हुआ मालिन की आंखे पूर्णतः बंद हो चुकी थी। माी की सुर्ख आंखों से आंसुओं की धारा बह निकली। कुछ समय पहले इसी पत्नी को पीटने पर उतारू होने वाला वह षराबी छोटे बच्चे की तरह बिलख-बिलख कर रोने लगा।

डाक्टर आये तब दिन चढ़ चुका था। मैंने पूरी घटना कह सुनाई। मालिन की नब्ज देख कर डाक्टर ने इंजेक्षन दिया। पर मौत के आगे मनुश्य क्या कर सकता है। कुछ ही देर में मालिन की जीवनलीला समाप्त हो गयी। उस की छाती पर सिर रख कर माली बिलखने लगा।

दोपहर को मालिन के षव का अग्निदाह करवा कर मैं नीलमनगर जाने को निकला। रास्ते में केन नदी आती थी। पूरा अस्तित्व थक र चूर हो गया था। मोटर रूकवा कर मैं उतरा। घाट पर बैठ कर नदी के पानी में पांव डुबाये। आंखों पर पानी छिडका। ऐसा लग रहा था कि चक्कर ख कर गिर पडूंगा। नदी के बहते हुए पानी पर मेरी आंखे तीन षब्छ स्पश्ट पढ़ पा रही थी।
जीवन, विश, अमृत।

44
अल्पता और महत्ता
1. अल्पता: हृदयषून्यता की दासी
सन 1933 का साल। इन्दौर में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेषन हो रहा था। अध्यक्ष थे महात्मा गांधीजी। वे रायबहादुर हीरालाल कल्याणमल की डायमंड कोठी में ठहरे हुए थे। इस सम्मेलन के पीछे श्री माखनलाल चतुर्वेदी के अपार परिश्रम और सर हुकमचंद के अपार धन का संबल था। हर व्यवस्था सम्मेलन के सूत्रधार बाबू पुरूशोतमदास जी टंडन की निजी देखभाल में हो रही थी। सम्मेलन अत्यंत सफल रहा। गांधीजी को खुष करने के लिए सभी संभव प्रयत्न किये गये थे। परंतु गांधीजी की दृश्टि तो दुनिया से बडे से बडे चक्रवर्तियों की षानषौकत से भी चकाचैंध होने वाली नहीं थी। उन्हें प्रभावित करने के लिए तो कार्यनिश्ठा, चरित्रसंपन्नता और हृदयधर्मसे षोभायमान मानवता की आवष्यकता थी। उनकी तीक्ष्ण दृश्टि इन्हीं गुणों की तलाष में रहती।

विशय-निर्णायक समिति में बापू का ध्यान समाज-कल्याण के कार्यो में साहित्य किस हद तक सहायक हो सकता है, इसी बात पर केन्द्रित रहा। सारे प्रस्तावों की परीक्षा इस कसौटी पर होती। सारे भाशणों का मूल्यमापन भी इसी हिसाब से होता। उनका प्रारंभिक प्रवचन भी इसी आधार पर हुआ। साहित्य को उन्होंने प्रजाधर्म के मध्य में लाकर खडा़ कर दिया। सामान्य जनता के दारिद्रध को दूर करना, उसकी दीतना को नश्ट करना, उसमें मानवीय गुणों का विकास करना, उसे पुरूशार्थी बनाना, उसकी षक्ति को जाग्रत करना और उसके तेज को बढा़ना ही साहित्य और साहित्यकारों का धर्म माना गया। यह नूतन जीवनदर्षन बापू ने अपनी सन्निश्ठ अमृतवाणी में प्रस्तुत किया। देखते-देखते सम्मेलन की हवा बदल गयी। कवियों के मुख उदास हो गये, कहानीकार मौन हो गये। बडे-बडे लब्धप्रतिश्ठ साहित्यकारों का दम सूख गया।

इतने में एक प्रस्ताव के समय कानपुर के श्री बालकृश्ण षर्मा ‘नवीन’ उठ खडे हुए। ‘‘कुकुम्’ ’ के इस कवि ने कवित की अभिराम बंसी छेड़ दी। वे एक के बाद एक कविता गांधीजी को सुनाने लगे। जनता से कहते जाते थे कि साहित्य उसकी चरणसेवा करने वाली दासी नहीं है। साहित्य प्रजा की ही उपज है। जैसी प्रजा वैसा

साहित्य। गांधीजी जैसी विभूति ने इसी प्रजा में जन्म लिया अतः उसका साहित्य भी सर्वोच्च षिखर पर पहंुचेगा। खुद गांधीजी का साहित्य इसी बात की पुश्टि करता है। ‘नवीन’ जी के विधानों से साहित्यकार के अभिव्यक्ति-स्वातंय की पुनरुथापना हुई।
इस प्रकार हिन्दी साहित्य सम्मलेन के इस अधिवेषन ने जनसाधारण और साहित्य के बीच के संबंध को दृढ़ बनाया। ‘नीवन’ जी की मस्ती और आज़ादी को देख कर गांधीजी भी प्रसन्न हुए। उन्हें जहां भी षक्ति औ सनिश्ठा के दर्षन होते थे वहां उनका स्मित सुगंध छलकाये बिना नहीं रहता था।

लेकिन कुछ ही घंटो बाद यह स्मित म्लान हो गया। दूसरे दिन बापू को सर हुकमचंद के यहां भोजन करने जाना था। उनकी निकटस्थ मंडली को भी निमंत्रण था। सर हुकमचंद के विषाल महल ‘आनंद भवन’ में बापू भोजन करने पधारे। सेठ साहब के हर्श का पार नहीं रहा। भोजनगृह में कोई पचासेक पाटे लगे हुए थे। प्रत्येक पाटे पर चांदी का थाल, चांदी की कटोरियां और चांदी से ही लोटे-गिलास की सजावट थी। बापू ने आंगन से ही यह ठाठ देखा ओर मुस्करा दिये। कस्तूरबा साथ थी। बापूने उनके हाथ से झोला लिया और जेल में जिनका इस्तेमाल करते थे वे बर्तन निकाले। अलमुनियम का एक कटोरा और एक छोटा सा गिलास। सोने के बर्तनों के पास ही यह वैभव सजा। हुकमचंदजी हड़बडाये हुए आये। बापू से सोने के थाल में भोजन करने की आग्रहभरी बिनती करने लगे। बापूने ने हंसते-हंसते कहा कि खाने के बाद बर्तन भी साथ ले जाने की अनुमति हो, तो उनमें खा सकता हूं। सेठ साहब चुप हो गये। बापू ने बर्तन हटवा दिये और जेल के बर्तनों में अपना विषिश्ट खाना खाया। बापूने भोजन किया, पर उनके दरिद्रनारायण भूखे रहे। षर्म के मारे हम मुष्किल से दो-चार कौर खा सके।

सर हुकमचंद जाने-माने करोड़पति थे। पर उनके करोडो़ ने उनकी अल्पता को काबू में नहीं रखा।

2. महत्तः हृदयसौहार्द की सखी

सन् 1935। गांधीजी वर्धा में थे। भवनवाडी में निवास था। उस दिन मेरी मुलाकात निष्चित हुई थी। सुबह से राह देख रहा था पर बारी नहीं आ रही थी। प्रसिद्ध और महान लोग एक के बाद एक आते ही जा रहे थे। षाम को पांच बजे संदेषा मिला कि बापू महिला विद्यालय में प्रार्थना के लिए जायंेगंे। तब मैं उनके साथ रहूं। उन दिनों बापू षाम की प्रार्थना मगनवाडी में नहीं, महिला विद्यालय मंे करते थे। छह बजे होगंे। बापू छडी़ लिये निकले। साथ में रोज की मंडली। मैं भी साथ चला। मगनवाडी़ छोड़ कर कुछ दूर पहुंचे कि उन्होंने मुझे बुला लिया।

बापू ने लोगों से कुछ कदम पीछे चलने को कहा। कुछ गोपनीय बाते करनी थी। एक हाथ मेेरे कंधे पर और दूसरे हाथ में लकडी़ बातें होने लगी। रास्ते में लोग मिलने लगे। कोई पांव छूता, कोई सूत का हार पहनाता, कोई फूल अर्पण करता, कोई जयजयकार करता। पर उनका ध्यान हमारी बातों में ही था। मैं बीच-बीच में हिचकता, पर उनका ध्यान एकाग्र और अखंडित रहा।

महिला विद्यालय पहुंचे। बापू ने कहा कि अधूरी बाते रात को सोते समय करेंगे। पीछे की भीड़ साथ हो गयी। बापू प्रार्थनापीठ पर पहुंचे। मैं जनता के समूह में बैठ गया। एक क्षण पहले गांधीजी का हाथ मेरे कंधे पर था। मेरे हृदय के साथ उनके हृदय का संधान था। तब मैं बड़भागी लग रहा था। अब जनसाधारण की भीड़ में खो गया। अभिमान ने कस कर पछाड़ खायी। जिस चेहरे पर एक क्षण पहले महत्ता का तेज था वहां दैन्य का निस्तेज छा गया। परंतु यह महत्ता किस की थी?

मेरे अंतःकरण या अंतरात्मा की? निष्चित रूप से नहंी। वह तो बापू की उदारता का प्रतिबिंब मात्र थी। उनके स्नेह की प्रतिध्वनि थी। उनकी अनुकंपा की प्रतिच्छाया थी। बात हृदय मं उतरी। सहज और साधित के बीच का भेद समझ मं आया।

प्रार्थना में बैठा था चुपचाप, पर ह्रदय था चोट खा कर तड़पर रहा था। फिर इन विचारों से विशाद क्रमषः कम हा गया। इतने में बापू की वाणी सुनाई दी। वे ईष्वर की अपार करूणा के विशय में बोल रहे थे। ईष्वर का साक्षात्कार उन्हें दरिद्रनारायण में हुआ था। भगवान तथगत का दश्टांत दिया। अमिताभ बुद्ध को सब जगह से भिक्षा मिली, फिर भी उनका पात्र रीता रहा। पर उस वृद्धा ने अपना एक मात्र वस्त्र दान किया तब उनका पात्र छलक पडा़। बापू ने कहा कि करोड़पतियों के करोड़ और लखपतियों के लाख उन्हें नहीं चाहिए। उन्हें तो अंतरात्मा के मूक आषीर्वाद और स्नेह से युक्त गरीबों का पाई-पैसा चाहिए। ह्रदय की उदारता और निश्ठा पूर्वक दिये हुए दान से ही देने वाले और लेने वाले की षक्ति और षुद्धि बढ़ती है। यह ह्रदयषुद्धि ही मनुश्य को महान बनाती है।

प्रार्थना पूरी होते ही झोली फैलायी गयी। लोगों ने कुछ न कुछ झोली में डाला। भीड़ छंट गयी। बापू जाने लगे। रास्ते में मुझे देख कर बोले कि चलो रात को करने की बाते अभी कर लें। फिर कंधें पर हाथ, लकडी़ का सहारा। दो-चार कदम चले थे कि एक दरिद्र दिखाई देनेे वाली स्त्री आगे आयी। उसने बापू की चरणरज ली। फिर उंगली से एक अंगूठी उतार कर उन्हें देते हुए बोली, ‘‘बापू इसे स्वीकार कीजिए। मैं अत्यंत निर्धन हूंू। आपको देने लायक मेरे पास कुछ भी नहीं है। सिर्फ मेरे पित की निषानी यह अंगूठी है। इसे अब तक मैंने प्राणों से अधिक मान कर संभाला। इससे आष्वासन मिलता था , जिंदा रहने का बल मिलता था। लेकिन आपको मैं आनी सबसे प्रिय वस्तु देना चाहती हूंॅ। इसलिए यह अंगूठी ही दे रही हूं।’ ’ उसने फिर बापू के पांच छुए। उन्होंने उसके सिर पर हाथ रख कर आषीर्वाद दिया। वह खडी़ हुई तब बापू अनिमेश नेत्रों से उसके मुख की ओर देखते रहे। उनके अंतःकरण की समूची करूणा उनकी आंखों में उमड़ रही थी।

इस करूणा का महाप्रसाद पा कर वह स्त्री अंधार में खो गयी। पर अपने ह्रदयसौहार्द की महत्त की छाप छोड़ती गयी।

45

नम्रताका बोधपाठ

1935 के अक्टूबर में पूजा की छुट्टियों के दौरान मैं षांतिनिकेतन से बम्बई आ गया था। छुट्टियां वहीं बितायी। लौटते समय तीन-चार दिन के लिए वर्धाउतर कर बापू के पास रहा (बापू तब मगनवाडी में रहते थे।) बम्बई से आचार्य क्षितिमोहन सेन के मित्रों ने उन्हें देने के लिए कई चीजें दी थी। अतः मेरे साथ समान बहुत अधिक हो गया था। इतना सामान ले कर मगनवाड़ी जाने कें संकोच तो हुआ, पर हिम्मत कर के पहुंच की गया।

मेरा सामान देखते ही बापू हंस पडे। बोले, ‘‘तुझे तेरे इस राजसी सामान के साथ ठहराने की मेरे यहां जगह नहीं है। यहां तो एक-एक अंगुल जमीन का उपयोग होता है। खैर, यह बरामदा खाली है। मैंने बापू के कमरे के बाहर के बरामदे में डेरा डाल दिया। उन दिनों, यदि मैं भूलता नहीं हूं तो, बापू रात को डेढ़ बजे उठ जाते थे। महत्व के पत्रों के उत्तर और आवष्यक लेख आदि लिखवाते। साढे तीन बजे फिर सो जाते और पांच बजे उठ कर प्रार्थना कर के निये दिन की षुरूआत कर देते। साढे छः बजे नियमित रूप से घूमने जाते।

उस दिन सुबह बापू ने मुझे भी साथ ले लिया। रास्ते में कही से एक बाल्टी और झाड़ू ले कर मेरे हाथ में थमा दी। बोले, ‘‘हम जिस गांव में जा रहे है वहां बडी़ गंदगी है। वहां के रास्ते आज तुझे साफ करने होंगे। इसके अलावा गांव के बाहर घूरा है, उसकी सफाई करनी है।’ ’ एक हाथ मेरे कंधे पर रखे और दूसरे हाथ से लकडी़ टेकते हुए बुढ़ऊ तो अपनी धुन में मस्त चले जा रहे थे। पर बाल्टी और झाड़ू हाथ में ले कर आम सड़क से गुजरने का मेरे जीवन में यह पहला ही मौका था। मैं कटा जा रहा था। अभिमान विद्रोह कर रहा था। पर कंधे पर बापू का हाथ होने के कारण अहम् को कुछ संतोश भी मिल रहा था। ये दोनों भावनाएं एकसाथ उत्पन्न होकर एक दूसरे के समांतर रंगती जा रही थी। मैं अपनी बात कहे जा रहा था। मेरी बातों का उत्तर बापू लौटते समय देने वाले थे।

षीघ्र ही हम उस गांव में पहुंच गये। रास्ते झाडे, घूरा साफ किया। फिर कुएं से पानी खींच कर बाल्टी और हाथ-पांव धोये। वापस लौटते समय बापू मेरी बातों का एक-एक करके जवाब दे रहे थे। बीच-बीच में मैं स्पश्टीकरण पूछता जाता था। उसे भी वे समझाते जाते थे। इसी प्रकार वर्धा पहुंचे। बापू तो अपने काम में लग गये। उनके लिए तो यह रोज का क्रम था। पर मेरे लिए आज का अनुभव नया था। कुछ भी हो, मेरे हृदय में आरोपित नम्रता के पौधे में उन्होंने एक बाल्टी पानी सींच ही दिया था।

46

चरण सेवा का सौभाग्य

साल, महीना और दिन मुझे बराबर याद है, उस घटना के समान ही स्पश्ट। हम बम्बई के ताजमहल होटल में ठहरे हुए थे। नरेन्द्र मंडल की सभा थी। महाराजा नीलमनगर उन दिनों मंडल की व्यवस्थापिका समिति के सदस्य थे। सुबह षाम काम तो कम होता था, पर गड़बडी़ और भागदौड़ ज्यादा रहती थी। रोज रात को षानदार षाही दावते होती। इसके बाद षराब और संगीत की महफिले जमती। एक रोज आधी रात बीते मैं अपने कमरे में कपडे बदल कर सोने की तैयारी कर रहा था। पूरे दिन की थकान, जो कुछ हो रहा था उसका विशाद और महफिलों में जो कुछ देखना पडा़ रहा था उसकी ऊब तन-मन पर छायी हुई थी। नन कह राह था कि कुछ ऐसा करना चाहिए जिस से यह सब भुलाया जा सके। सुबह जल्दी उठ कर महादेव भाई को सेवाग्राम टेलीफोन किया। बापू से मिलने का दिन और समय तय किया गया। उन्होंने बापू से पूछ कर मुझसे तुरंत आ जाने को कहा।

भीड़ भरी कलकत्ता-मेल में बितायी हुई वह रात होटल की अपेक्षा कहीं कम दुखदायी थी। सुबह वर्धा उतरा। सेवाग्राम जाने के लिए एक आश्रमवासिनी बहन का साथ मिल गया। तांगा कूर्मगति से सेवाग्राम पहंुचा। चले तब तो विष्वास नहीं था कि उस तांगे में सुरक्षित पहंुच सकेगें। ग्यारह बजे बापू से मिलने का समय था। पर वह उनके भोजन का समय निकला। मैं घबराया हुआ महादेवभाई के पास पहुंचा। उन्होंने कहा कि मुझे भोजन करते करते ही बापू से बातचीत करनी होगी। मेरा मन षांत हुआ। बापू आये। प्रार्थना हुई और भोजन करने बैठे। बापूने अपने कटोरे में से एक प्याज़ मुझे देना चाहा। मैं प्याज का दुष्मन। नम्रमा से अस्वीकार कर दिया। तब बुढऊ ने संतरे के छिलके की चटनी दी। वह कड़वी लगी इसलिए थाली में छोड़ दी। बातचीत अनवरत चल रही थी। मैं बोलता जा रहा था, बापू सुनते जा रहे थे।

भोजन समाप्त होने पर सब लोग अपनी-अपनी जूठन उठा कर थाली-गिलास हाथ में ले कर उठने लगे। बा तब जीवित थी। मेरी सज-धज और कपडो़ पर से उन्होंने अंदाज लगाया था कि मैं कोई महाराजा नहीं तो कोई छोटा-मोटा राजा या राजकुमार या गया-गुजरा कही का दीवान तो अवष्य होऊंगा। मैं काली षेरवानी और चूडी़दार पायजामा पहने हुआ था। सरदी हो रही थी। अतः गले में गुलूबंद लपेट रखा था।

बा ने एक नौकरानी जैसी दिखाई देने वाली स्त्री से मेरी थाली ले जाने को कहा। यह आज्ञा सुनते ही बापू, जो वहीं बैठे मेरी बातें सुन रहे थे, खिलखिला कर हंस पडे और बोले, ''यह बा तुम्हें कोई राजा या राजकुमार मान बैठी है इसलिए तुम्हारी जूठी थाली उस बाई से उठवा रही है।' ' मैंने तुरंत गिड़गिडा कर बिनती की, ''बापू, दो-चार मिनट के लिए इस गलतफहमी को चलने दीजिए, सत्य बाद में कहे। वरना इन कपडों में मुझे थाली-कटोरी मांजनी पडेगी।' ' बापू ने फिर ठहाका लगाया और कहा, ''तुम अब तक पहले के जैसे ही बुरे आदमी हो। पांच साल में तुमने कोई फर्क नहीं पडा।' ' मैंने हंसते-हंसते यह प्रमाणपत्र षिरोधार्य किया।

भोजन कर के बापू बरामदे में आ गये। अब वे आराम करने वाले थे। बापू के लेटते ही कुमारी अमतुल सलाम ने पांव दबाना षुरू किया। बापू ने मेरी ओर देखा। मैंने इषारे से समझाया कि हमारी बातचीत के दरमियान

किसी तीसरे व्यक्ति का रहना ठीक नहीं। अतः उन्होंने मधुर स्वर में कहा, ''अमतुल बहन, यह राजवाडी आदमी फिर हाथ में नहीं आयेगा। आज इसे ही पांव दबाने दे। तू जा, और आराम से अपना काम देख।' '

उसके बाद की बातें पांव दबाते-दबाते ही हुई। बापू को इससे आराम तो षायद मिला होगा, पर उनकी नींद बिगड़ गयी। दोपहर का सोना बापू के स्वास्थ्य की दृश्टि से अत्यंत आवष्यक था। लेकिन स्नेह और कार्यवष उन्होंने उसकी परवाह नहीं की। उनके अंतर की उदारता की कोई सीमा ही नहीं थी। और अंत में तो इस दरियादिल दाता ने सत्य के कारण अपनी जिंदगी की भी खैरात कर दी।

47
मुक्त चेतना
छोटी-सी वह बालिका। पर उसके भाग्य में बापू की सेवा लिखी थी। उसे उनका स्नेह और सहवास दोनों प्राप्त हुए। बापू जब पंचगनी से जा रहे थे तब इस बालिका ने श्री कनु गांधी से बा और बापू का एक चित्र प्राप्त कर लिया था। उस पर उसे बापू के हाथों से आषीर्वचन लिखवाना था। बापू के पास पहंुच कर उस पांच-छः वर्श की लड़की ने प्रार्थना की: ''बापू, इस पर आषीर्वाद लिख कर हस्ताक्षर कर दीजिए।' ' बापू का वही पुराना जवाब, ''इसकी कीमत चुकानी पडेगी।' ' बालिका बोली ''मैं मैंयार हूं। कहिये, क्या दूं?'' बापू ने कहा, ''तेरे कानों की बालियां उतार कर दे दे।' ' लड़की ने कहा, ''ले लीजिये।' ' बापू ने षर्त रखी, ''यों नहीं। बालियां तभी ले सकता हूं जब तू वचन दे कि अब कभ्ज्ञी कानों में बालियां नहीं पहनेगी।' ' किसी भी प्रकार की हिचकिचाहट के बना लड़की ने सब की साक्षी में यह षर्त कबूल कर ली। बापू ने बालियां ले ली। चित्र पर बापू का आषीर्वाद लिख कर हस्ताक्षर कर दिये।

अभी कुछ रोज पहले वह लड़की अपने भाई के साथ बम्बई घूमने के लिए आयी थी। अपनी हम उम्र बालिकाओं के कानों में आधुनिक फैषन की बालियां देख कर उसे भ्ज्ञी पहनने का मन हुआ। पर बापू को दिया हुआ वचन याद आ गया। उसने किसी बुजुर्ग से राय ली। उन्होंने कहा, पत्र लिख कर बापू से पूछ ले। फिर वह लड़की अपने घर चली गयी और बालियों की बात भूल गयी।

बापू के महानिर्वाण की बात सबके साथ उसने भी सुनी। और लोगों के साथ उसने भी प्रार्थना, उपवास आदि किये। उपवास की षाम को वह खुद ही बोली, ''बापू तो अब नहीं रहे। अब पत्र लिख कर पूछने की संभावना भी नहीं रही। पर बालियां अब में कभी नहीं पहनंूगी। बापू को दिये हुए वचन का पालन करूंगी।' ' ।

गांधीजी के जीवनकाल ने उन्हें दिए हुए वचन के पालन के संबंध में चल-विचल होने वाली एक छोटी-सी बालिका उनके चले जाने के बाद जब दृढनिष्चयी हो सी, तो बापू जीवित थे तब जो बाते संभव नहीं हुए व कदाचित् उनकी मृत्यु के बाद संभव हो सकेगी, ऐसी आषा क्यों नहीं की जा सकती? देह के बंधनों और मर्यादाआंे से मुक्त उनकी चेतना देहविलय के बाद उन्मुक्त बन कर समस्त मानव -सद्भावनाओं को अपने स्पर्ष से पावन कर देगी ऐसी श्रद्धा क्यों नहीं रखी जा सकती।

48
श्रध्दामेघ

सौभाग्य प्राप्त होने की अपेक्षा उसे पचाना अधिक मुष्किल होता है। यह मुष्किल पार हो सके तो आनंद की अनुभूति सारी हस्ती को गदगद कर देती है।
सन 1938 का वर्श। महीना और दिन याद नहीं। दिल्ली में नरेन्द्रमंडल की कार्यवाहिका समिति की बैठक हो रही थी। उन दिनों नरेन्द्रमंडल के चान्सेलर थे धौलपुर के महाराज। पन्ना और धौलपुर के महाराजाओं में गहरी दोस्ती थी। अतः नरेन्द्रमंडल के अंतरंग अंतप्रवाहों के साथ हमारा निकट का संपर्क रहता था।

दिल्ली की सभा में कुछ इस प्रकार की विचारधारा बनी कि गांवधीजी यदि सारे रजवाडों में प्रजामंडलों के आंदोलन स्थगित करवा देने का वचन दें, तो राजा लोग लोकतंत्रीय प्रतिनिधिक षासनव्यवस्था को स्वीकार कर के उसे यथासंभव षीघ्रता से कार्यान्वित करने को तैयार है। विचार तो बना, पर उसे गांधीजी तक पहुचाया कैसे जाय? राजाओं में से कोई बापू से मिलने को तैयार नहीं था? वाइसरॉय और राजकीय विभाग का भय उन दिनों इतना प्रबल था कि कोई राजा गांधीजी से घनिश्ठता प्रदर्षित करने को उत्सुक नहीं था। अंत में महाराजा पन्ना ने गांधीजी को जानने वाले व्यक्ति के रूप में मेरा नाम सुझाया। और उन्हीं की सिफारिष से मुझ पर विष्वास रखकर यह नाजुक काम मुझे सौंपा गया।

राजाओं के इस प्रस्ताव को लेकर मैं बिरला भवन पहुंचा। गांधीजी से सब बाते कहीं। सरदार पटेल भी उपस्थित थे। राजाओं की बात सरदार के गले नहीं उतरी। उन्होंने बापू को चेतावनी दी और फूंक-फूंक कर कदम रखने की सलाह दी। राज लोग दिये हुए आष्वासनों का पालन किस हद तक करेंगें इस विशय में सरदार अत्यंत सषंक थे। सरदार की स्पश्टोक्तियां सुन कर मेरे मन में भी षंका उत्पन्न हुई। राजा लोग मीठी-मीठी बाते कर के इस समय गांधीजी को पटा लें और आद में अपने वचन का पानल न करें तो? लेकिन बापू तो उनका गला काट लेने वाले पर भी विष्वास करने वाली विभूति थे। उन्होंने मुझ से सिर्फ इतना कहा कि नदेन्द्रमंडल की समिति द्वारा इस आषय का प्रस्ताव पारित करवा लाइये।

मैंने पन्ना और धौलपुर के महाराजाओं को बापू का संदेष पहुंचाया। षाम को ही सभा हुई और प्रस्ताव पारित हो गया। प्रस्ताव ले कर मैं फिर बापू से मिला। उन्होंने सरदार से मंत्रणा की। सरदान ने प्रस्ताव के षब्दों का बारीकी से विष्लेशण किया। प्रजामंडलों के आंदोनल स्थगित कने वाला भाग अत्यंत स्पश्ट था। परंतु राजाओं के उत्तर दायित्व के संबंध में प्रस्ताव के षब्द थेः ''स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार इसका अमल यथा संभव षीघ्र किया जायेगा।' ' यह 'स्थानीय परिस्थिति' वाली बात सरदार को नहीं जंची। उन्हें ये षब्द भ्रामक और खौखले मालूम दिये। उन्होंने गांधीजी को फिर चेतावनी दी और अपने स्वभावानुसार अत्यंत स्पश्ट भाशा में अपने मन की बात कह दी कि राजा लोग इन षब्दों की आड़ में चाहे जितना समय निकाल देंगे। सरदार की राय हुई कि राजा लोग पहले लोकतंत्र के सिद्धांतों पर आधारित षासन-व्यवस्था षुरू करें, स्थानीय प्रजामंडलों के नेताओं का विष्वास संपादित करें और फिर प्रजामंडलों के आंदोलन स्थगित किए जाये।

परन्तु किसी पर अविष्वास करें तो गांधीजी काहे के। मनुश्य स्पश्ट रूप से दुश्टता दिखाये तो भी बापू की प्रतिक्रिया यही होती थी। कि उसने गलती की होगी। सामने वाले की नीयत पर षत-प्रतिषत विष्वास कर के खुद स्नेह और सद्भावना का बर्ताव करते रहना ही उनका जीवनधर्म था। मनुश्य की सन्निश्ठा पर उनकी श्रद्धा थी ही इतनी प्रबनध। अतः बापू ने राजाओं के वचन पर विष्वास कर के रियासतों में चलने वाले प्रजामंडलों के आंदोलन स्थगित करवा दिये।

बाद का इतिहास सर्वविदित है। राजाओं ने अपने एक भी आष्वासन पर अमल नहीं किया। उन्हीं 'स्थानीय परिस्थितियों' आदि षब्दों की आड़ में उन्होंने अपनी अनिश्ठा का प्रदर्षन किया।

लेकिन बापू इस पराजय को पी गये। ऐसी तो न मालूम कितनी पराजयों का पान कर के उन्होंने अपनी अखंड, अपराजित श्रद्धा का पोशण किया था। विश को पचा कर अमृत उपजाने वाले देवताओं का निर्माण भी षायद इसी प्रक्रिया द्वारा हुआ होगा। जहां ऐसा सर्वस्पर्षी श्रद्धामेघ बरस रहा हो और उससे नवजीवन पल्लवित हो रहा हो, वहां उसे अपनी क्षुद्र अंजलियों से रोकने वाले पामरों के प्रयत्न कहां तक सफल हो सकते है।?

संभावना तो इस बात की अधिक है कि वे खुद भी कुछ हद तक इस अमृत-सिंचन से भीग जायें।

49.
छोड़ से सोने का पिंजरा, और तोड़ के बंधन सारे

नीलमनगर से मेरा अन्न जल उठ चुका था। कई दिनों से अंतर्मन उदास रह रहा था। काम में मन नहीं लग रहा था। आराम काटने को दौड़ता था, विलास विशाद को और भी गहरा बना रहा था और सौंदर्य मन को व्यथित करता था। बेचैनी का पार नहीं था। लगातार ऐसा लग रहा था कि अब यहां से छुटकारा पाना चाहिए। वृत्तियों के इस कबंध में जिंदगी अधिक गुजारनी पडी़ तो आत्मा को सदा के लिए वहीं भटकना पडेगा। सुरक्षा और सुविधाओं ने आरामतलवी का आसव पिला-पिला कर पुरूशार्थ को अपाहिज बना दिया था। जीवन की विषुद्धि का आकर्शण होता था, पर अषुद्धियों को लांध जाने की हिम्मत नहीं होती थी। षांतिनिकेतन से लौट कर यह नौकरी स्वीकार की थी तब मन में निष्चय किया था कि आचार-व्यवहार में अमुक मर्यादा तक ही समझौता करूंगा। इस मर्यादा के बल पर पांच-सात वर्श बिता कर कुछ अर्थसंचय कर लूंगा। लेकिन इन स्वनिर्मित मर्यादाओं का भंग तो आरंभ के चार-छह महीनों मे ंही हो गया यों कहिये कि करना पडा़। अतएं बाद के दिनों में धनसंचय तो हुआ, पर अंतरात्मा का अधिकाधिक कर्जदार होता चला गया। चार वर्श बात तो परिस्थिति इतनी असहाय हो उठी कि उसने मुझे आकुल-व्याकुल कर दिया।

एक तरफ विलास, ऐष्वर्य, ऐषोइषरत, आराम और अर्थप्राप्ति के पंचमहाबलों ने मिल कर जीवन को सत्वहीन बनाना षुरू कर दिया तो दूसरी और अंतरात्मा मिलता के दीपक को आदर्षों की मलमल का झीना अंतराय खडा़ करके बुझने से बचाने का भगीरथ प्रयत्न किये जा रही थी। इस कषमकष की, इस बेचैनी की जानकारी मेरे प्राणों को थी, पर वह उसे पसंद आने वाली बात नहीं थी। अंतःकरण इस दोहरी जिंदगी से खिन्न होता था पर उसके अस्तित्व से मानो जानबूझ कर बेखबर रहने का प्रयत्न करता। इस प्राकर जीवन के कुरूक्षेत्र में महाभारत की भेरी बने लगी। कभी ऐसा लगता कि जीवन में ऐसा मौका बडी़ मुष्किल से मिलता है। जिन सुखों के लिए लोग तरसते हैं, जिनके ख्वाब देखते है, वे मुझे अनायास मिल रहे थे। पर विलास की इस मोहिनी से आसक्त प्राण कभी-कभी आत्मा के कंदन से विल भी हो उठाता था। इंद्रियों के सुखों से संचालित मन ऐष्वर्य के वषीभूत हो कर कभी तो आत्मा को आष्वासन देता और कभी उसके साथ असहयोग घोशित कर बैठता। दूसरी ओर मन में यह आवाज भी प्रबल होती जा रही थी कि भीख मांग कर गुजारा करना पडे तो भी कोई हर्ज नहीं पर जीवन के इस नरक रूपी षिकंजे से छूटना ही चाहिये।

एक बार जब उलझन बहुत चढ गयी तो गांधीजी को दिल्ली तार करके मिलने का समय मांगा। बापू ने तार से ही उत्तर दे कर तुरंत आ जाने की सूचना दी। नीलमनगर बहुत छोटासा कस्बा है। अत्यंत पिछडी़ हुई सामंती रियासत, 1939 का घटनापूर्ण वर्श। गांधीजी का तार देखकर उस छोटे से तारघर में मानों भूचाल आ गया। खुफिया पुलिस के अफसरों को सूचना दी गयी। उन्होंने महाराजा से कहा। तार मुझे मिला उससे पहले उसकी प्रतिलिपि महाराज को मिल चुकी थी। मैं देहली जाने के लिए उनकी अनुमति लेने गया तब उन्होंने अत्यंत गंभीर चेहरे से बापू के तार का जिक्र किया। मुझे याद दिलाया कि मैं उनका निजी सचिव था। अतः वाइसराय या दिल्ली सरकार का राजनीतिक विभाग यह मान सकता था कि खुद महाराजा भी इन गतिविधियांे से संबंधित होंगे। तार-आॅफिस से यह सूचना पोलिटिकल एजेण्ट को अवष्य मिली होगी और यह समाचार दिल्ली पहुंचने में देर नहीं लगेगी कि हमारा गांधीजी से गुप्त संपर्क है और कोई शडयंत्र चल रहा है। उन्हें पहले मालूम होता तो वे मुझे तार हरगिज नहीं करने देते। ऐसे ही चुपचाप चला गया होता तो यह सारा बखेडा़ खडा़ ही नहीं होता . . . इत्यादि।

महाराजा साहब सचमुच ही चिंतिंत हो उठे थे। मैंने बहुत समझाया कि तार के षब्द बिलकुल स्पशट है। उनमें कोई गूढ़ संकेत नहीं है। मैंने अपने वैयक्तिक काम के लिए बापू से समय मांगा था। फिर भी मैंने उन्हें आष्वासन दिय कि तार-आॅफिस जा कर ऐसी व्यवस्था कर दूंगा कि पोलिटिकल एजेण्डा को कुछ मालूम न हो। महाराजा साहब ने एहतियातन यह राय भी दी कि मैं सतना-इलाहबाद के बजाय झांसी होकर देहली जाऊँ,

रास्ते में नवगांव उतर कर पोलिटिकल एजेण्ट से मिल लूं, औश्र इस बात की खातिरजमा कर लूं कि उन्हें इस संबंध में कुछ भी मालूम नहीं हुआ।

मैंने तारबाबू को महल में बुलाया। सौ रूपये का नोट उसकी जेब में डाला और जबान बंद रखने को कहा। इस प्रकार ताकर की पूरी बात ही दब गयी। दूसरे दिन मैं झांसी के लिए रवाना हुआ। रास्ते में नवगांव उत्र कर पोलिटिकल एजेण्डा से मिला। उन्होंने जिस प्रसन्नता औश्र निश्कपटता से बात की उससे स्पश्ट मालूम दिया कि तार के संबंध में उन्हें कुछ भी जानकारी नहीं थी। दोपहर का भोजन उनके साथ कर के मैं दिल्ली चल दिया।

बापू उन दिनों पुरानी -दिल्ली की हरिजन-कॉलोनी में देवदास के यहां रहते थे। षाम को प्रार्थना के समय हजारों लोगों का समुदया जुटता था। मैं और भाई यषवंत पंड्या प्रार्थना में सम्मिलित होने के लिए निकले। प्रार्थना के बाद वहीं बापू से मिल लेंगें ऐसी योजना थी। उस समय बात न हो सकी तो बाद का समय निष्चित कर लेंगें। पर हम कुछ देर से पहुंचे। प्रार्थना षुरू हो चुकी थी। अतः स्वयंसेवाओं ने हामारी गाडी़ पहली चैकी पर ही रोक दी। प्रार्थना समाप्त होने तक हमें रूकना पडा़ और बाद में भीड़ का ऐसा रेला आया कि हम आगे बढ़ ही न सके। परंतु पंड्या दिल्ली के जानकार थे। उन्होंने स्वयंसेवक के कान में न मालूम क्या मंत्र पढा़ कि हमारी मोटर को अंदर जाने की इजाजत मिल गयी।

देवदासभाई के घर पहुेचे तब बापू अपने कमरे में जा चुके थे। मैंने परची भेजी। उन्होंने तुरंत बुला लिया। पंड्ा मोटर में ही बैठे रहे। उस दिन सोमवार था। बापू का मौन था। वात्सल्यभरे स्मित से उन्होंने मेरा स्वागत किया। मेरे हाथों में कोरे कागजों का ऐ पुलंदा थमा दिया। फिर लिख कर मुझे बताया कि उनका मौन होने के कारण वे मेरी बातों का उत्तर लिख कर देगें। और मैं भी अपने प्रष्न लिख कर ही पूछूं। कोई चालीस-पैंतालीस मिनट तक यह क्रम चलता रहा। आखिरी परची में उनका आदेष प्राप्त हुआ। ''जीवन के इस दलदल में तुम इतने गहरे उतर गये हो कि तुरंत बाहर नहीं निकले तो फिर बहुत देर हो जायेगी। फिर तो ज्यों-ज्यों निकलने का प्रयत्न करोगे त्यों-त्यों गहरे धंसते जाआगें। अत ईष्वर पर श्रद्धा रख कर यह नौकरी तुरंत छोड़ दो। यह तुम जैसे लोगों का काम नहीं है।' '

मैं चरण स्पर्ष करके उठ खडात्र हुआ। बापू घूमने जाने की तैयारी करने लगे। मैं सीढ़ियों से उतर रहा था पर मन हिचकोले खा रहा था। नीलमनगर से निकलते समय जिस मानसिक महाभारत की आगाही हुई थी वह युद्ध अब छिड़ चुका था। एक ओर सुखविलास की वृत्तियां किसी वारांगना के से आकर्शण से प्राणों को परवष बना रही थी। दूसरी ओर अंतरात्मा अनाविल अभीप्सा की बुझती हुई चिनगारियों पर जमी हुई प्रसाद की राख को फंूक मार कर उडा़ने का प्रयत्न कर रही थी।

मेरे पीछे-पीछे बापू भी उतरे। किसी के कंधे पर हाथ था, दूसरे हाथ में लकडी़ सांझ हो चुकी थी पर रात का अंधकार सघन नहीं हुआ था। उस अस्पश्ट प्रकाष में बापू ने पुनर्दर्षन हुए। उनके चरणों में मानो अंतःकरण पर अपने पदचिन्ह आगे बढ़ गये पर मुझे उचित दिषा दिखलाते गये।

दूसरे ही दिन नीलमनगर जाकर नौकरी का त्यागपत्र दे दिया और मैं मुक्त हो कर चला निकला।

50

पेरिस की मध्यरात्रि

रात के नौ बजे थे। पेरिस की षाही ओपेरागृह प्रकाष से जगमगा रहा था। जिसे देखने की जीवन में प्रबल आकांष थी उस अपिरागृह को देख कर मन आनंदित हो उठा। उसकी रचना, उसकी सुविधाएं, उसका स्थापत्य, प्रकाष-संयोजन, सभी आंखों से पहले कभी न देखी हुई अद्भुत बातें थी। उस रात को महाकवि होमर के

विष्वविख्यात वीरकांव्य ओडिसी का गीत-नाट्य प्रस्तुत हुआ था। डेढ़ सौ कलाकारों का समहवादन मैंने जिंदगी में पहली बार सुना। कई वाद्य तो ऐसे थे जिन्हें सुना तो क्या देखा भी नहीं था। फिर भी उस विविधता में से आकार धारण करने वाला संगती मनोहर और सुसंवादी था।

ट्रॉ की लड़ाई के बाद यूनानी प्रजाजनों का गृहागमन इस नाटक की केन्द्रीय कथावस्तु है। दस बारह साल के भयानक संघर्श के बाद यूनानियों ने इथाका लौटने के प्रसंग पर खास तौर से जोर दिया गया था। नाटक में संवाद बिलकुल नहीं थे। सारा-दारोमदार संगीत पर था। परदा उठने से पहले ही आर्केस्ट्रा ने लड़ाई की भनक-अनुभव कराने वाला संगती वातावरण में बहा दिया। पराद उठने के बाद ट्राॅय का मैंदान और युद्ध दिखया गया। योद्धाओं को अलग-अलग पैंतरे बदलकर लड़ना, मोरचे बांधना, सैनिकों का मरना, हार या जीत होना इत्यादि युद्ध के सारे प्रसंगों का निरूपण समूह संगती और मंूक अभिनय रंगभूमि के द्वारा हुआ। जिस भाव की जमावट का संगीत छिड़ता उसी भाव या रस का अभिनय रंगभूमि पर होता। दोनों के बीच इतनी अधिक संवादिता और इतनी एकात्मता कि कहीं त्रुटि या विसंवादिता के दर्षन भी न हों। षास्त्रों की खनकार, आहतों की चीखें, विजय-पराजय का हर्श-षोक, षरणागति का विशाद, इतना ही नहीं युद्ध से भयभीत हो कर भागनेवाले जानवरों की भगदड़ तक के सारे प्रसंग संगीत में अपनी संवादी षक्ति से निरूपित किये। साथ ही इस प्रभाव को जरा भी हानि पहंुचाये बिना, उसके साथ तादात्म्य साधने वाला अभिनय रंगभूमि पर होता रहा। इसके बाद लड़ाई बंद हुई और यूनानी प्राजाजन अपने मवेषी और बचे-खुचे सरसामान के साथ वापस लोटे। इस दृष्य की प्रेरणा और संचालन भी संगीत ने ही किया। अभिनय करने वाले प्रायः मौन ही रहे पर कभी-कभी वाद्यसंगीत के अनुकूल पुरोने लोकगीत गा कार साथ देते रहे।

स्मूचे संगतीनाट्य में विदा और स्वागत के प्रसंग तो अविस्मरणीय ढंग से प्रस्तुत हुए। विदा के समय का करूण संगती रोमांच उत्पन्न कर दे इतना प्रखर और भाववाही था और स्वागत का संगती उनता ही आषाप्रेरक और उत्साह के अभिनिवेष का सूचक। परंतु इस स्वागत के पीछे से भयंकर सर्वनाष की गहरी विशण्णता झांक रही थी। विनाष का हाहाकार कंदन कर रहा था। यूरोपीय वाद्यसंगीत का सामुदायिक प्रभाव इतना अद्भुत होता है यह जीवन में पहील बार जाना। सच है कि अभिजात संगीत बाह्य भेदों को नहीं मानता, सांस्कृतिक भिन्नता को नहीं पहचानता। वह तो हृदय की भाशा है। जो अंतःकरण को स्पर्ष करती है, मनुश्यता का आवाहन करती है और अंतरात्मासे सख्य जोड़ती है।

आधी रात बीते मह ओपेरा हाउस से बाहर निकले। लोग इतनी षंाति से बिखर रहे थे कि कही संगीत द्वारा उत्पन्न प्रभाव टूट न जाय। हम ओपेरा के राजमार्ग से चल कर बूलवा-द - हसमां स्थित अपने होटल कोमोदोर की ओर जा रहे थे। कुछ आगे चलते ही मोड़ पर एक संुदरी मिली। वह सामने के फुटपात से जा रही थी। मगर हमें देखते ही इस तरफ के फुटपात पर आ गयी और कुछ झिझक कर हमारे सामने रूक गयी। मुझे लगा कि उसे या तो कुछ काम होगा या कुछ पूछना होगा। उसने हंस कर 'हेलो' कहा और हाथ बढा़या। यूरोपीय सभ्यता से अभ्यस्त मेरा हाथ भी आगे बढ़ गया। वह फ्रेंच लहजे में अंगरेजी बोल रही थी। पूछा कि हम ओडिसी देख कर लौट रहे है क्या। मैंने हां कहीं। वह तुरंत मुस्करा कर बोली कि ऐसे सुंदर अनुभव के बाद हमें किसी साथी की जरूरत होगी ही और वह रात भर के लिए हमारा साथ निभाने के लिए तैयार है।

प्रज्ञाचक्षु खुले और समझ में आया कि अरे, यह तो रात-रात भर सड़कों के चक्कर काट कर देहव्यापार करने वाल सुप्रसिद्ध (या कुप्रसिद्ध) फ्रेंच वारांगनाओं में से एक है। हमारे सधन्यवाद इनकार करते ही उसके चेहरे पर का हास्य उड़ गया। मादकता और विलासिता का सारा आवरण एक झटके में लुप्त हो गया। हम भी चलते-चलते रूक गये। वह गिड़गिडा़ कर कहने लगी कि आधी रात तक भटकने पर भी उसने एक फेंक भी नहीं कमाया। अब उसे खाली हाथ घर लौटना पडेगा। पैसों के अभाव में षाम का खाना भी नहीं खाया। ओडिसी का

करूणोत्पादक संगीत-नाटक देख कर उन निराधार यूनानियों के दूख से व्याकुल हमारा हृदय का एक असहाय, भूखी स्त्री की सहायता करने की इच्छा नहीं करता . . . इत्यादि।

मैंने ओवरकोट की जेब में हाथ डाला। ओपेरा के टिकट खरीदने के बाद कुछ फैंक बचे थे, वे उसके हाथ में टिका दिये। बदले में उसने अहसान प्रदर्षित किया या उपहास इसकी चिंता किये बिना हम आगे बढ़ गये।

51

अनामिका

लंदन में एक रोज़ सुबह मार्बल आर्च के ट्यूब स्टेषन पर खड़ा उपनगर की गाडी की राह देख रहा था। हजारों लोगों के आनेजाने की विविधता इतनी आकर्शक लगी कि एक गाडी मैंने छोड़ दी। प्लेटफार्म पर खड़ा इस महानगर के बहुरंगी जनप्रवाह को देखता रहा। दूसरी गाड़ी आने तक प्लेटफार्म पर फिर भीड़ हो गयी। सांप की तरह सरसराती हुई गाड़ी आयी, स्वयंचलित दरावजे खुले, और मैं एक डब्बे में चढ़ गया। इतने में एक स्त्री एक छोटे से लड़के का हाथ पकड़े भागती हुई आयी। ट्यूब रेल के दरवाजे चलते समय अपने आप बंदहो जाते है। हु यह कि लड़का तो अंदर आ गया पर स्त्री प्लेटफॉर्म पर ही रह गयी और दरवाजे बंद हो गये।

लड़के की उम्र चारेक वर्श की होगी। जरा भी घबराये बिना वह बडे इतमीनान से मेरे पास वाली सीट पर बैठ गया। मेरे पूछने पर मुस्करा कर जवाब दिया कि उसे नोर्टिंग हिल जाना है। नोर्टिंग हिल का स्टेषन आते ही लड़के के साथ मैं भी उतर गया और उसे आष्वासन दिया कि उसकी मां दूसरी गाड़ी से आयेगी तब तक मैं रूक जाउंगा। बडे आदिमियों की सी स्वस्थता से उसने आभार माना। बातचीत से मालूम हुआ कि उसकी मां मार्बल आर्च के लायन्स कॉर्नर हाउस नामक बडे रेस्तरां में पियानों बजाती है। रोज रात को आठ बजे मां-बेटे खाना खा कर घर से निकलते है। मां आधी रात तक नियानो वादन करती है। लड़का तब तक तहखाने के एक छोटे से कमरे में सोता रहता है। सुबह नाष्ता करके वे होटल से निकलते है और बाजार से आवष्यक सामान खरीद कर घर लौट आते है।

हमारी बातचीत हो रही थी कि दूसरी गाडी आ गयी। वह स्त्री जल्दी से उतरी और भागती हुई आ कर लड़के से लिपट गयी। मैं पास ही खड़ा था। लड़के ने मेरे सद्भाव और सहायता की बात कही। मां ने अत्यंत उपकृत भाव से कृतज्ञता प्रकट की। मैंने सोचा कि अहसान मान कर मां-बेट अपने घर चले जायेंगे और मैं दूसरी गाड़ी पकड़ कर अपने स्ािान पर चला जाऊंगा। पर वह स्त्री बोली, ''बदला चुकाने की भावना से नहीं कह रही, पर आप हमारे घर चले तो हमें बहुत खुषी होगी।' ' मुझे आष्चर्य हुआ। पर उसके उद्गार इतने सहज औश्र स्वाभाविक थे कि मैं इनकार न कर सका।

महिला का घर वैसे तो साधारण था पर था बहुत ही व्यवस्थित और सुघड़। और कुछ पीने से इनकार कर देने पर वह मेरे लिए चाय बना लायी। अगरेज स्त्री, और समय छोड़ कर ऐसी कुबेला में चाय पेष करें, यह कम आष्चर्य की बात नहीं थी।

चाय पीते विभिन्न विशयों पर बातचीत होती रही। मुझे भारतीय संगीत में दिलचस्पी है यह जान कर उसने कहा, ''आप हमारे पाष्चात्य संगती को सहन कर सके, तो आपको पियानो पर एक गती सुनाऊँ।' ' मैंने कहा कि ''सहन करने का प्रष्न ही उपस्थित नहीं होता। यह तो मेरा सौभाग्य होगा। संगीत तो हृदय की भाशा है। वह अपना काम खुद व खुद करेगा।' ' उसने पियानो पर 'एकाकिनी' नामक प्रसिद्ध गीत संुदर ढंग से बजाया और गाया। षब्दावली समझ में आते ही भाव भी स्पश्ट होता गया। महिला के कंठ में जो दर्द था उसने वातावरण में करूण्य फैला दिया। गीत समाप्त हुआ पियानो बंद हुआ। लेकिन वातावरण में एकाकीपन छाया राहा। चलते समय वह एकाकिनी स्त्री बोली, ''अपना कीमती समय दे कर अपने जो सद्भाव प्रकट किया उसके लिए अनेकषः धन्यवाद।' ' मैंने कहा, ''मैंने तो सिर्फ अपना फर्ज अदा किया है।' '

घुमक्कड़ 'जिप्सी' होने में यही सुख है कि इस प्रकार की हरी-भरी मानवता के दर्षन करने के मौके अनायास सी मिलते रहते है। इस विचार में डूबा मैं कब नोर्टिंग हिल स्टेषन पहुंच गया यह मालूम ही नहीं पडा़।

52

मातृप्रेमकी सुगंध

ट्रांन्स वल्ड एयर-लाइन्स का विषाल स्कईमास्टर प्लेन षाम को छ ' बजे न्यूयाॅर्क पहुंचा। सिर्फ साठ घंटे पहले मैं बम्बई में था और मित्रों से विदा हा रहा था। इन साठ घंटो में हम स्पप्नचलित की भांति अरब के दरहान, मिस्र के काहिरा, यूनान के एथेन्स, इटली के रोम, स्वीत्जरलैंड के जिनीवा, फ्रान्स के पेरिस, आयर के षेनोन और न्यूफाउंडलैंड के गादा आदि षहरों से हो कर गुज़रे थे।
छरहान रात को दो बजे पहंचे थे। वातानुकूलित प्लेन से बाहर निकलते ही ऐसा लगा जैसे धरती का तप्त लावा अभी पूर्ण रूप से ठंडा नहीं हुआ। पायलट ने बताया किय तापमान 1222 अंष था। पेट्रोल भरते ही प्लेन चल दिया। सूर्योदय के समय हम स्वेज़ नहर पर से उड़ रहे थे। हमारी मंजिल थी काहिरा। मार्ग में नील नदी के दर्षन हो रहे थे। यह नदी मिस्र की जीवनदात्री सिद्ध हुई है। उसकी अनेकविध लीलाएं देख कर आंखे तृप्त हो गयी। आनेक सम्राज्यों और संस्कृतियों के उदयास्त की साक्षी, मंथर गति से बहने वाली यह गंभीर नदी वाकई मिस्र की लोकमाता है।

एथेन्स के पुराने खंडहरों को देख कर मन विशण्ण हो गया। उन पर चढी़ हुई विस्मृति की परतें मानो घोशणा कर रही थी। कि हैलेनिक संस्कृति का विगत स्वप्न अब कभी साकार नहीं होगा। जिनीवा के रास्ते में बर्फ की चद्दर ओढे ध्यानस्थ बैठे हुए अल्प्स के दर्षन हुए और सागर जैसे विषाल लेमन सरोवर का विलीनाॅय के पास अंत होते हुए देखा। विलीनाॅय देख कर संत रोमां रोलां का स्मरण होना स्वाभाविक था। पेरिस पहंुचे तब रात हो चुकी थी। लेकिन पेरिस की जिंगदी में तो दिन रात को ही होता है। आधी रात बीते षेनाॅन उतरे। यहां प्लेन की अतलांतिक महासागर को एक ही छलांग में पार करने की क्षमता की परीक्षा की गई।

चैदह घंटो की अनवरत यात्रा थी। सुबह आंख खुली तब नीचे महासागर के सीमाहीन नीले जन और ऊपर उस से स्पर्धा करने वाले अनंत आकाष के दर्षन हुए। किसी कट्टर नास्तिक को भी ईष्वरी सत्ता में विष्वास करने की प्रेरणा हो ऐसी प्राकृतिक भव्यता को दखकर आंखे कृतार्थ हो गयी, वाणी मूक हो गयी और अंतःकरण आकुलता से किसी के आषीर्वाद की कामना करने लगा। अगाध और अनंत की साधना करने वाले मनुश्य के मन में भी इस समय तो इस महासमुद्र के पार जाने की उत्कंठा ही सर्वोपरि हो उठी। न्यूफाउंडलैंड का किनरा देख तब कही मन को चैन मिला।

षाम को न्यूयार्क पहंुंच तब मन अकेलेपन के विशाद से अकुला रहा था। एयर पोर्ट पर कोई लेने नहंी आया था। इसकी अपेक्षा भी नहीं थी। मेरे पास मेरी मेबान मिसेज़ पेज का पता था। टेक्सी वाले को बताया-दि डोवर 687, लेक्सिग्टन एवेन्यू। एक चैदह-मंजिले मकान के सामने टेक्सी रूकी। मैंने मकान का नाम और नंबर दोने जांचे। इतने में एक आदमी मुझे देख कर बाहर आया। मेरा नाम ले कर पूछा। मुझे आष्चर्य हुआ। उसने मेरा सामान उतारा। ग्यारहवें तल्ले पर बाईस नंबर के अपार्टमेंट में वह मुझे ले गया। फिर मुझे बताया कि मिसेज पेज को किसी अनिवार्य कारण से बाहर जाना पडा़ था। मेरा सामन एक कमरे में लगा कर और अपार्टमेंट की चाबी मुझे दे कर वह चला गया। भीतर सोफे पर मेरे नाम के तीन-चार पत्र पडे थे। एक मे मेरा स्वागत किया गया था और उन्हें अचानक जाना पडा़ इसके लिए दुःख प्रकट कर के क्षमा मांगी गयी थी। अन्य लिफाफों में किस कमरे में कौनसी वस्तु कहा रखी है, मुझे भोजन करने कहा जाना होगा, मेरा पिट्सवर्ग जाने का टिकट, डाकखाने और तारघर का पता इत्यादि आपवष्यक सूचनाएं थी। चार दिन आराम से बिता कर मैं पिट्सवर्ग जाने के लिए निकला। मैंने भी मिसेज पेज के नाम आभार प्रदर्षन का पत्र लिख कर सोफे पर रख दिया। पिट्सवर्ग पहुंच कर दूसरे पत्र में अपना अनांद व्यक्त किया। प्रत्युत्तर में उनका स्नेहसिक्त पत्र मिला। उसमें अमरीकन

लोगो के स्वभाव और खासियतों के संबंध में उन्होंने बडी़ महत्वपूर्ण जानकारी दी थी। लेकिन अब तक हम प्रत्यक्ष मिले नहीं थे।

न्यूयार्क लौटने पर मैं सबसे मिसेज़ पेज से मिलने गया। जाने से पहले फोन कर दिया था। मुझे देखते ही वे माता की सी उमंग से मुझसे मिली। कोई पैसठ वर्श की उम्र की इस स्नेहमयी नारी से मिल कर बेहद आनंद हुआ। इस उम्र में भी सौंदर्य में उनका साथ नहीं छोडा़ था। उत्साह और जिज्ञासा में उनका मुकाबला करने वाला व्यक्ति मेरे देखने में नहीं आया। मिलनसार स्वभाव, किसी भी बात के ब्योरे और गहराई में उतरने का कुतूहल, मोहक तेजस्विता और खानपान मंे षुद्ध षकाहार का पालन। हम मित्रों की हैसियत से मिले। सबसे पहले उन्होंने अपनी अनुपस्थिति के बारे में विस्तारपूर्ण खुलासा किया। न्यूयार्क में एक ‘प्रोक्सी-पेरेन्ट्स’ नामक संस्था है। किसी परिवार के माता-पिता को कम-अधिक समय के लिए लंबे सफर पर या विदेष जाना हो, तो बच्चों की देखभाल के लिए माता, पिता या दोनों की उम और स्वभाव से मिलते-जुलते स्त्री पुरूश उपलब्ध कर देने की व्यवस्था यह संस्था करती है। मिसेज़ पेज इस संस्था की सदस्य थी। उन्हें इसी प्रकार का, किसी की माता बनने का काम मिला था। मैं न्यूयार्क पहंुचा उससे पहले दिन उन्हें काम संभाल लेना था। इसी कारा वे एयरपोर्ट पर नहीं आ सकी थी। उन्हीं से मालूम हुआ कि उपरोक्त संस्था मुख्यतः सेवा की भावना से चलती है। परिश्रमिक तो नाममात्र का किया जाता है।

जिस परिवार में वे गयी थी उसके मुखिया मि॰ मर्ल अर्मिटेज के साथ उनका पंद्रह दिनांे में ही प्रगाढ़ मित्रता का संबंध स्थापित हो गया था। इस मित्रता के आधार पर उन्होंने मिस्टर अर्मिटेज से मेरी मुलाकात करवाई। वे ‘दि लुक’ नामक जग-प्रसिद्ध अमरीकन साप्ताहिक के कला विभाग के संचालक है। मुद्रणकला के क अधुनातम निश्णात के रूप में उनकी ख्याति है। अतः उनके साथ का परिचय उपयोगी सिद्ध हुआ। ‘नोट्स आॅन माॅडन प्रिंटिंग’ नामक अपनी पुस्तक की एक प्रति उन्होंने मुझे भेट दी। इतना ही नहीं, बिली रोज के नाम एक परिचय पत्र भी दिया। अर्मिटेज में कला और विज्ञान का विरल मणिकांचनयोग हुआ है। स्वभाव कलाकार का पर सप्तरंगी विषदता और चैकस बुद्धि वैज्ञानिक की। उनसे घनिश्ठता होने पर यह भी दिखाई दिया कि यह आदमी रिहंकारी और मानवता का सच्चा पुजारी है।

बिली रोज ‘दि लुक’ साप्ताहिक के ‘वाइन, विमने अण्ड वर्ड्ज’ नामक स्तंभ के लेखक के रूप में पूरे अमरीका में और पर्याप्त से पूरे संसार में प्रसिद्ध है। न्यूयार्क के छठे ऐवेन्यू के ‘जिगफील्ड फाॅली’ नामक अतिषय सुंदर और आधुनिक नाटयगृह के वे मालिक है। छठी मंजिल के उनके दीवानखाने में मैं उनसे मिला तब वे अपनी टाइपिस्ट को कोई लेख लिखवा रहे थे। साढे ग्यारह बज चुके थे, पर उन्हें कपडे बदलने की भी फुरसत नहंी मिली थी। स्फूर्ति, संस्कार और स्वभाव से नितांत अमरीकन बिली रोज न्यूयार्क के प्रसिद्ध नाइट कलब ‘डायमंड हाॅर्स षू’ के भी संचालक है। मैं उनके साथ सिर्फ चार घंटे रहा, लेकिन उतने में ही उन्होंने औसत आदमी को चार हफते ले इतनी जिंदगी लुटायी। उनकी बातचीत, रंगढंग, बर्ताव-व्यवहार, सब में लवरेज जिंदगी के मानो फुहारे उड़ते है। मैं भौतिकता का पुजारी नहीं। परंतु इतना अवष्य कहूंगा कि पुनर्जन्म की चिंता में इस जन्म को करीब-करीब व्यर्थ गंवा देने वाले हम भरतवासियों के लिए बिली रोज जै अमरीकनों की एक जन्म में ही अनेक जिंदगियां जी लेने की तमन्ना और कला वाकई नवजीवन का संदेष प्रस्तुत करती है।

हमने एक साथ भोजन किया। खाना खाते-खाते ही उन्होंने उस रात की प्रमुख नर्तकी से महत्व की बाते कर ली, सचिव को षम के कार्यøम की सूचना दी, परोसने वाले को षाम के खाने की फहरिष्त लिखवायी और नाट्यगृह के प्रबंधकर्ता को रात के खेल की व्यवस्था के बारे में आवष्यक बाते बता दी। भोजन के बाद हम जाॅन डे कंपनी में श्रीमती पर्ल बक से मिलने गये। निकलने से पहले टेलीफोन कर के सूचना दे दी।

पर्ल बक से मिल कर अतिषय आनंद हुआ। अमरीकन नारीदेह में पौर्वात्य स्त्री के दर्षन हुए। गंभीर, गरिमामयी और प्रगल्भ। अमरीकन स्त्रियों के सामान्य तौर पर दिखाई देने वाली चंचलता और छिछलेपन का संपूर्ण अभाव।

षरीर की अवस्थता के बावजूद अत्यंत प्रसन्न और खुषमिजाज। हमारे वार्तालाप के दरमियानउनकी एक ने मुझे विषेश रूप से प्रभावित किया। उनका कहना था कि भारत जैसे देष में कभी-कभी एक ही महामानव अनेक व्यक्तियों का काम पूरा कर लेता है। अमरीकन प्रजा तुलना में अभी षिषु है। ऐसी प्रतिभा और ऐसी विभूतियों के प्रकट होने में अभी बहुत समय लगेगा। लेकिन अनेक महनती लोग मिल कर एक महान विभूति का काम पूरा कर लेते है। अमरीका की षायद यही लाक्षणिकता है।

न्यूयार्क छोड़ते समय 'क्वीन एलिजाबेथ' के डेक पर खडे हो कर मैंने मिसेज पेज से कहा, ''आप मेरी प्राॅक्सी-माता ही नहीं, सचमुच की माता भी है।' ' वृद्धा खुष हो गयीं। उनके उन्मुक्त हास्य ने मातृप्रेम की मोहक सुगंध बिखेर दी।

53

आत्माविश्कार

स्न् 1948 का अक्टूबर महीना। षुक्रवार को तीसरे पहर पह पिट्सवर्ग से नायागरा जाने के लिए निकले। हम चार जने थे। चार्ली, आल्फे्रड, हेनरी ओर मैं। वार्ली वांकुवर क निवासी था। जन्मजात कनेडियन। मिलनसारऔर उदार। आल्फे्रड अमरीकरन था। स्वभाव से कुछ गंभीर। और हेनरी हम तीनों का नीग्रो दोस्त था। तबीअत से मस्त और मृदुभार्शी।

चार्ली की नयी प्लमथ गाडी़ थी। चार्ली और हेनरी दोनों मोटरों के षौकीन और कलपुरजों के जानकार थे। अतः हम बेखटके आगे बढे। चार सौ मील का सफर था। ढेरांे खाना साथ था। मध्यरात्रि से पहले ही नायागरा पहंुच जाने का इरादा था। एलेगनी नदी के किनारे-किनारे हमारी कार हंसगति से आगे बढ़ रही थी। नदी का तट बेहद सुंदर था। पेडों के झुरमुटों के बीच में मुड़ती हुई ऐलगनी भारत की किसी सलज्ज यौवना जैसी मोहक और मनोरम दिखाई दे रही थी। मेरी इस उपमा से खुष होकर चार्ली ने गाडी़ रोक दी। चारों मित्रों ने जी भर कर कौतुकमयी नदी के सौंदर्या का पान किया। इच्छा तो सब की उस संुदर स्ािान पर कुछ देर रूक कर आराम करने की थी। पर अधिक रात बीतने से पहले नायागरा पहुंच जाने का निष्चय के कारण तुरंत आगे बढ़ना पडा़।

एकाध मील भी आगे नहीं गये होंगे कि अगले पहिये का टायर जोर की आवाज के साथ फट गया। गाडी़ बिलकुल नयी थी और हमारे पास एक अतिरिक्त पहियां भ्ज्ञी था। उम्मीद यही थी कि कुछ देर में ही पहिया बदल कर हम आगे बढ़ सकेगें। परंतु दुर्भाग्य से स्अेपनी में किसी पुरजे की कमी थी जिससे कई बार प्रयत्न करने पर भी पहिया बैठा नहीं। चार्ली और हेनरी दोनों मायूस हो गये। पसीने से तरबतर, हाथ चीकट से सने हेतु, आंखों में असहायता।

कुछ देर बाद हम मोटर को धकेल कर मोड़ के पार कुछ नीचे की ओर ले गये। वहां कुछ दूरी पर एक और कार खडी़ देख कर हमारे मन में आषा का संचार हुआ। चार्ली और मैं उस गाडी़ के पास गये तो देखा कि दो विचित्र दिखाई देने वाले आदमी मषीन में कुछ सुधारने का प्रयत्न कर रहे थे। कपड़े, बालचाल या बर्ताव से वे अमरीकरन मालूम नहीं दिये । पहले तो हमने सोचा कि वे दक्षिणी अमरीका के किसी देष के निवासी होगें। चार्ली ने अंगरेजी में पूछा कि क्या वे हमारी कुछ सहायता कर सकेगें या हम उनके कुछ काम आ सकते है? उन्होंने दोनों बातो से सहमति दर्षायी और तुरंत एसा वर्ताव षुरू किया मानों हमें बरसों से पहचानते हों। अत्यंत स्वाभाविक और स्नेहपूर्ण ढंग से, अपना काम अधूरा छोड कर वे हमारी कार के पास आये। हमारी परेषानी को समझा। हमारी गाडी़ क्यों अटक गयी थी इसका कारण जान कर वे खिलखिला कर हंस पडे। षीघ्र ही अपनी गाडी़। में आवष्यक पुरजा़ ले आये और दोनों ने मिल कर मिनटों में नया पहिया चढा़ दिया। गाडी़ तैयार हो गयी। इस आनंद के उत्साह में हेनरी ने हमारी कार में से बीयर की चार-छः बोतलें निकाल कर उन्हें भंेट दी।

उन्होंने स्वीकार किया पर बोतलों को उसी समय, वहीं का वहीं खोल कर सब के साथ उनका सदुपयोग किया। बीयर जैसे पेय की इस से अधिक सार्थकता और क्या हो सकती थी?

इसके बाद हमने उससे पूछा कि हम उनकी क्या सहायता कर सकते है। उन्होंने मुस्करा कर जवाब दिया ''भाई, हम तो जिप्सी है। अस्थिरता ही हमारा जीवन है। खनाबदोष भटकते रहना ही हमारा दर्षन है और आकस्मिक रूप से होने वाली दुर्घटनाएं हमारी दालदरोटी है। गाडी़ बिगड़ गयी है। चलो, एक बहाना मिल गया। अब रात भर हम यहीं रहेंगे।' ' हमने बहुत आग्रह किया। अपनी कार के पीछे बांध कर उनकी गाडी़ को आसपास के किसी षहर तर पहंचा देने का प्रस्ताव भी किया पर वे टस से मस नहीं हुए। उनमें से एक ने कहा, ''जब तक हम दूसरों को सहायक हो सकते है, तभी तक ऐसा लगता है कि हम जीवित है। जब दूसरों की सहायता लेने की वृत्ति जगेगी तब हम जीवित हीं नहीं रह सकेंगे। आप लोग जाइये। देर हो रही है।' '

मुझ से रहा नहीं गया। पूछा बैठा ''आप लोग कहां के निवासी है?'' . . . और निवासी? . . .'' आष्चर्य से वे ठहाका मार कर हंस पडे। ''भाई, हम तो जिप्सी है। जन्म हुआ है मिस्र में। पर पूरा जगत हमारा देष है। हमें कही भी परदेष या परायपन महसूस नहीं होता। हमारे देष में हमने हजारों वर्श पुराने मुर्दे (ममी) देखे है। इसलिए इस दुनिया के जिंदा लोगों को देख कर हमें बेहद खुषी होती है। प्यार करते रहना हमारा धर्म है और चलते रहाना हमारी जिंदगी है।' '

नामधाम के अनजान पर सच्चे अर्थ में जीवित इन लोगों को देख कर अस्तिव ने क्षण, भर के लिए रोमांच का अनुभव किया। विचार आया कि हम भी जिप्सी बन जाये. . . ? षीघ्र ही मैंने इसे अपना तखल्लुस बना लिया। आज कहने को तो जिप्सी बन गया हूं। पर स्वभाव और कर्म से बन सकू तभी कुछ बात बने।

54

बडे दिन की षुभ-कामनाएँ

पिट्सबर्ग की सब से बडी़ दूकारन है का ॅफमेंन्स। बम्बई की व्हाइटवे लेडला ॅ से पचीस-तीन गुनी बडी। मैं वाहं ओवरकोट खरीदने गया था। अमरीका में उन दिनां े गेंबरडीन का ओवरकोट पहनने का फैषन था। मेरे पास इंग्लिस गेबरडीन का कोट था। पर अमरीका आते समय ट्रान्स-वल्र्ड एयरलाइन्स की एयर-ओस्टेस की गतती से एथेन्स में कोई ग्रीक सहयात्री उसे ले गया था। मिान कंपनी ने मेरे बिना मांगे ही, उसकी कीमत के रूप में पचहत्तर डा ॅलर भेज दिये थे। इन पचहत्तर डा ॅलरों का सदुपयोग करने को ही मैं का ॅफमेंन्स में गया था।

पैसठ डा ॅलर में सुंदर ओवरकोट मिल गया। ठंड और वर्शा दोनों से रक्षा कर सके ऐसा। अमरीका में अधिकांष कपडे सिल-सिलाये तैयार बिकते है। ग्राहक के नाप के अनुसार थोडा़ बहुत रद्दोबदल उसी समय कर दिया जाता है। मैं ओवरकोट खरीद रहा था उसी काउण्टर पर एक अमरीकन युवक कुछ ऊनी कोट देख रहा था। एक कोट की कीमत थी बीस डा ॅलर। वह उसे इतना पसंद आ गया कि वह बारबार उसे हाथ में उठा कर देख रहा था। लेकिन न मालूम क्यों, हर बार देख कर वापस रख देता था। उसके चेहरे पर खुषी आ-आ कर अस्त हो रही थी। कुछ देर में वह उदास हो उठा। लड़का स्वस्थ, सुंदर और तेजस्वी था। मेरी ओर देख कर कुछ सम तक तो उस के मन में कषमकष हुई, पर फिर कुछ निष्चय करके उसने कहा, ''आप मुझे पांच डा ॅल उधार दे सकेंगें? कल सुबह मैं आपके घर पहं ुचा दूंगा।' ' मैंने उनका नाम-पता पूछे बिना ही पं ाच डा ॅलर का नोट उसके हाथ में थमा दिया। पंद्रह डा ॅलर उसके पास थे। कोट उसने खरीद लिया। उसके चेहरो पर आनंद छा गया। हमने स्टोर के रेस्तरां में साथ बैठ कर का ॅफी पी। उसने अपना कार्ड मुझे दिया। वहां के षिश्टाचार के अनुसार मैंने भी अपना कार्ड दिया।

दूसरे दिन सुबह, कुछ जल्दी ही, दरवाजे पर दस्तक हुई। देखा तो वही युवक दरवाजे में खडा़ था। मैंने उसे अंदर बुलाया। मुस्कराते हुए उसने पांच डा ॅलर का नोट वापस किया और आभार-प्रदर्षन किया। मैं अपने काम से

जाने की तैयारी कर रहा था। हम साथ ही घर से निकले। रास्ते में यूनवर्सिटी के कॅफेटरीया में हमने एक साथ नास्ता किया। कुछ आगे चल कर हमारे रास्ते अलग होते थे। उसनसे पहले मैंने उससे पूछा, ''अमरीका में क्या सभी लोग तुम्हारी तरह ईमानदार और सज्जन होते है?'' उसकी आंखे गर्व से चमकने लगी। फिर कहा, ''हमारे देष में इससे भी कई गुना ईमानदार और सज्जन लोग बसते है। मैंने तो किसी विषेश ईमानदारी का परिचय नहीं दिया। सिर्फ अपना कर्ज चुकाया है।' ' मेरे मन में विचार आया कि जीवन के प्रति यह निश्ठा और सहृदयता ही अमरीकन प्रजा की उन्नति कर रही है। हाथ मिला कर हम एक-दूसरे से विदा हुए।

उसी साल की बडे दिन की छुट्टियों में उसका षुभ-कामनओं का कार्ड मिला। उसके नाम ग्रिफिथ के साथ नीचे किसी मेरी के भी हस्ताक्षर थे। यह परोक्ष रूपा से उसके विवाह की सूचना थी। नीचे लिखा था, ''आपके उन पांच डाॅलरों ने जीवन में इमानदारी व्यक्त करने का मैका दिा। ''आपकी-सद्भावना से प्रेरित हो कर मैं अधिकाधिक ईमानदार बनने का प्रयत्न कर रहा हूॅ। इससे हृदय का आनंद भी बढ़ता जा रहा है। एक अजनबी का विष्वास करने के लिए धन्यवाद!''

55

ईमानदारी और चालाकी

किसी देष-विदेष की पूरी प्रजा निरपवाद रूप् से ईमानदारी या बेईमान होती है यह स्थापित कने का हेतु बिलकुल नहीं है। सिर्फ लंबी जीवनयात्रा के दरमियान आंखों में भरने वाले औश्र याद रह जाने वाले कुछ प्रसंग यहां दर्ज किये गये है।

1. अमरीकन

हम न्यूयाॅर्क से वाॅषिग्टन जा रहे थे। रेल से नहीं, ग्रेहाउन्ड बस से। ग्रेहाउन्ड बस की संस्था अमरीका में रेल से अधिक व्यापक, त्वरित, सुविधाजनक और सस्ती है। इन्हीं कारणों से लोकप्रिय भी अधिक है। बैठने की व्यवस्था, आराम और स्वच्छता में रेल से किसी प्रकार कम नहीं। इसके अलावा, रेल की तरह षहर के बाहर-बाहर स्टेषनों से छूटने के बजाय बसे षहरों के ठीक बीच से गुजरती है। अजनबी यात्रियों के दर्षनीय स्थानों पर जाने के लिए ये बसें ही अधिक अनुकूल रहती है। रेल की तरह बसें भी एयरकण्डीषन होती है। रास्ते में रेलों के समान ही स्टेषन, विश्रामगृह, काॅफी-हाउस, भोजनालय इत्यादि की व्यवस्था होती है। ये बसें दस-पांच मील का स्थानीय सफर भी करती है और न्यूयाॅर्क से लाॅस एन्जल्स तक तीन हजार मील की लंबी यात्रा थी। उनके चालक अत्यंत निपुण और अनुभवी होते है। बेगवान इतनी कि अमरीका के किसी भी हाईवे पर ग्रेहाउन्ड बस जा रही हो, तो तेज से तेज रफतार से जाने वाली मोटरे भी उसे आगे निकल जाने का मौका देती है।

हम फिलाडेल्फिया से दस-पंद्रह मील आगे गये होंगे कि किसी गांव के बाहर एक आदमी ने हाथ उठा कर बस को रोका। ग्रहाउन्ड बसे अकसर इस तरह बीच में से सवारियों नहीं लेती। पर उस आदमी ने चालक को समझाया कि उसे किसी अत्यंत आवष्यक काम से वाषिंग्टन जाना है। चालक ने उसे बैठा लिया और कहा कि किराया वाषिंग्टन पहंुच कर बस के अड्डे पर देना। रात को आठ बजे हम राजधानी पहंुंचे। हम तीनों मित्र अपनी वज़नदार सन्दूक बस-स्टैण्ड के चैकीदार को सौप कर वाई.एम.सी.ए. में हमारे निवासस्थान की पूछताछ करने चले गये। रहने का स्थान निष्चित करके हम कोई डेढ़ घंटे बाद वापस लौटे। देखा तो आधे रास्ते से बस पर सवार होने वाले सज्जन चितातुर मुद्रा में बसस्टैन्ड पर ही खडे हुए है। पूछने पर मालूम हुआ कि अभी तक उसने किसी ने किराया नहीं लिया। उन्होंने बस में यात्रा की है इसका कोई प्रमाण न होने के कारण कम्पनी का कोई भी अधिकारी किराया स्वीकार करने को तैयार नहीं था। आखिर हमने जा कर गवाही दी कि उन्होंने वाकई यात्रा की है। किराया अदा कर दिया गया और केन्टीन में साथ बैठ कर काॅफी पी कर हम अपनी-अपनी राह चले गये।

एक बार हम कोलंबस से सेंट लई जा रहे थे। हम होटल से स्टेषन पहुंचे। साथ में एक अमरीकन मित्र थे जिनसे कोलंबस में ही परिचय हुआ था। गाडी़ छूटने में कुल दस -पद्रह मिनट की देर थी कि उन्हें याद आया

कि वे होटल का बिल चुकाना भूल गये है। उनकी परेषानी छिपी न रह सके इतनी स्पश्ट थी। एक झण में उन्होंने निष्चय कर लिया। मुझसे कहा, ''देखिये, मैं होटल का बिल चुकाने जा रहा हूं। कोषिष तो मैं समय से पहले ही आ जाने की करूंगा। पर गाडी़ छूटने तक मैं न आ सकूं तो मेरा सामान आप अपने साथ ले जाये। आप वाल्डाॅर्फ होटल मे ही ठहरेगें न? मैं दूसरी गाडी़ से आ जाऊंगा।' ' इतना कह कर वे लपक कर स्टेषन से बाहर हो गये।

गाडी़ छूटने में सिर्फ दो मिनट रहे। गार्ड डब्बे के सामने से गुजरा तब सारीबात मैंने उससे कही। वह सुन कर इतना प्रभावित हुआ कि आवष्यकता पड़ने पर गाडी़ दो-चार मिनट देर से छोड़ने का उसने वचन दिया।

घडी़ की सुइयों ने सूचना दी कि गाडी़ छूटने में अब सिर्फ आधा मिनट बाकी है। इतने में सज्जन दौड़ते हुए डब्बे में आ गये। उनका दम फूल रहा था। पर चेहरे पर जो संतृप्ति का आनंद हुआ था उसे देख कर मूजी से मूजी आदमी को भी प्रसन्ता होती।

अमरीका में भूगर्भ रेल के स्टेषनों पर टिकट नहीं दिया जाता। टिकट देने वाला भी कोई नहीं और जांचने वाला भी कोई नहीं। दस सेंट का सिक्का स्वयंचलित मषीन में डालते ही दरवाजा खुल जाता है। एक बार गाडी़ पर सवार हुए बादआप एक स्टेषन जाये चाहे बीस, किराया वही रहता है। निर्दिश्ट स्थान पर पहंुचने पर आप दरवाजा खोल कर बाहर जा सकते है।

अमरीका के बडे षहरों में जो ट्राम, बस आदि चलती है उनमें भी टिकट देने का रिवाज़ नहीं है। चढ़ते समय या उतरते समय चालक के पास लगे हुए बक्स में दस सेंट या पांच सेंट का सिक्का डाल दीजिये कि काम खत्म।

अमरीकन प्रजा इस साधारण ईमानदारी का पालन बडी़ दक्षता और स्वाभाविकता से करती है। सांस्कृतिक दृश्टि से अभी अपने षैषव काल में हाने पर भी इस प्रजा का चिरित्रनिर्माण कितनी पुख्ता बुनियाद पर हो रहा है इसका प्रमाण उपरोक्त छोटी-छोटी बातो से मिलता है। बस का किराया अदा करने के लिए डेढ़ घंटे तक राह देखने वाला नागरिक और छूटती हुई गाडी़ से उतर कर, भागते हुए जा कर होटल का बिल चुकाने वाला प्रजाजन किसी भी राश्ट्र के लिए गौरव का विशय हो सकता है।

2. अंगरेज

अक्टूबर महीने की एक षाम। लंदन के आॅलविच स्थित इण्डिया-हाउस में प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के सम्मान में एक समारंभ आयोजित किया गया था। इस मौके पर पंडितजी ने अपना हृदय खोल कर कुछ खरी-खरी बातें कही। भारतीयों की समीओं और दुर्बलताओं के संबंध में अपना मंतव्य अत्यंत स्पश्ट षब्दों में प्रकट किया। अंगरेजों को पंडितजी की यह स्पश्टवादिता बहुत पसंद आयी। समारंभ अत्यंत मेल-जोल के वातावरण में सम्पन्न हुआ। पंडितजी के तीखे नष्तरों के बावजूद हमस ब के हृदय खुषी से भर गये।

समारंभ समाप्त होने पर हम इण्डिया हाउस से निकले और सामने के बस-स्टेंण्ड पर बस के इंतजार में खडे हो गये। बस की राह देखने वालों की कतार बहुत लंबी थी। विभिन्न नंबरों की बसें आती जाती थी और कतार छोटी होती जा रही थी। अनुषासन की भावना तो मानो लोगों के खून में मिल चुकी थी। कहीं निराषा का सुर नहीं, व्यर्थ की टीका-टिप्पणी नहीं, बस-कंपनी के प्रति आक्रोष नहीं, सुधार के सुझाव नहीं। हमारे नंबर की बस आते ही हम बैठ गये। कंडक्टर ने हमारा गंतव्य स्थान पूछ कर उचित मूल्य के टिकट दे दिये।

हमारे पास एक अंग्रेज बैठा था। उसने एक पेनी का टिकट लिया। यह टिकट रसेल स्क्वेयर तक ही चल सकता था। लेकिन वह आदमी उसके तीन स्टाॅप बाद उतरा। बेईमानी की यह हलकी सी झलक कंडक्टर की आंखों से छिपी नहीं रही। वह बोला कुछ नहीं, पर आंखों की अदा से एक मर्मभेदक स्मित-कटाक्ष छोड़ कर उसने व्यक्त कर दिया कि ऐसा बर्ताव उचित नहीं।

बस से उतर कर एक बढ़िया रेस्तरां में खाना खाने गये। बाहर फलक पर विज्ञापित किया गया था कि भोजन के साथ डबलरोटी के तीन-तीन स्लाइस मिलेंगें। राषन के उस जमाने में लंदन में तीन स्लाइस ब्रेड मिलता उदारता की चरमसीमा माना जाता था। हमें भी तीन स्लाइस मिले पर इतने पतले मानो एक में से ही तीन किये गये हो। कानूनन इसे बेइमानी नहीं कहा जा सकता। पर नैतिक दृश्टि से यह षुद्ध धोखाधडी़ के सिवा और कुछ नहीं था।

मन में विचारक उठने गले। अंगरेज प्रजा की ईमानदारी का तो चारों दिषाओं में डंका बजता है। उनके साम्राज्य पर सूरज कभी अस्त नहीं होता ऐसा मानने वाली यह प्रजा अत्यंत ईमानदार होने का भी दावा करती है। आज साम्राज्य का सूरज तो अस्त हो चुका है। अनेक प्रकार की कठिनाइयों की तलवारें भी इस प्रजा के सिर पर लटक रही है। लेकिन ईमानदारी का क्या हुआ? क्या वह समृद्धिकाल में व्यक्त होने वाला सुविधाजनित ढकोसला मात्र था? इस नैतिक पराजय के मूल में स्वार्थ और उससे उत्पन्न क्षुद्रता काम कर रही है या यह स्वार्थ और हीनता भौतिक पराजय के दृश्ट परिणाम मात्र है?

3. भारतीय

न्यूयाॅर्क में एक ब्रिटिष पाउंड की कीमत सिर्फ तीन डाॅलर देनी पड़ती है जब कि लंदन में उसी पाउंड का मूल्य चार डाॅलर है। सरकारी नियमानुसार कोई भी व्यक्ति पांच पाउंड से अधिक अंग्रेजी मुद्रा लेकर इंगलैड के किनारे पर नहीं उतर सकता। नियम भंग करने वाल यदि पकडा़ जाय तो उस पर कडा़ जुरमाना होता है।

रात को हम साउदेम्पटन पहंुचे और दूसरे दिन सुबह रेल से लंदन जाने को निकले। मेरे साथ एक भारतीय सज्जन थे। मेरे पास के पांच पाउंड कुछ तो स्टीमर में और कुछ साउदेंम्प्टन से लंदन का टिकट लेने में खर्च हो गये थे। अतः मैंने उनसे एक पाउंड उधार मांगा। उन्हें कुछ विस्मय हुआ। मैंने अमरीका से चलते समय सिर्फ पांच पाउंड ही खरीदे थे य जान कर तो उन्हें बेहद आष्चर्य हुआ। लंदन में अब मुझे प्रति पाउंड एक डाॅलर अधिक देना पडेगा इसका उन्हें हार्दिक मलाल हुआ। मेरी बेवकूफी और अक्षमता पर कुछ दया भी आयी। अपनी दूरदर्षिता के प्रमाण-स्वरूप उन्होंने यह भी बताया किय वे तो लगभग सौ पाउंड गुप्त रूप से साथ लाये है। न्यूयाॅर्क में ही उन्होंने यह विनिमय कर लिया था और नोटों को पतलून के भी जांघिये की जब में छिपा कर ले आये थे। अपनी इस काबलियत और दूरअंदेषी पर उन्हें समुचिन मात्रा में गर्व भी था।

लंदन छोड़ने के आठ रोज बाद हमारा जहाज पोर्ट सैयद रूका। कई दिनों की अनवतर समुद्रयात्रा के बाद धरती के दर्षन होना और जमीन पर पांच रखना बडा़ आनंददायक होता है। एक भारतीय मुसलमान की टेक्सी में हम षहर घूमने गये। किराया तय हुआ डेढ़ रूपया प्रति मील। कोई दसेक मील का चक्कर लगा कर हम बंदरगाह लौट आये और उसे पद्रह रूपये देने लगे। वह कुछ तैष में आ कर बोला कि उसने तो प्रति व्यक्ति डेढ़ रूपया मील तय किया था। हम चार जने थे अतः साठ रूपये देने चाहिए। जाते समय प्रति व्यक्ति अलग-अलग किराये की कोई बात ही नहीं हुई थी। उसने षाद जानबूझ कर इस प्रति व्यक्ति वाली बात को अध्याहार रहने दिया था और मौके पर मनमाना अर्थ लगा कर रूपया ऐंठना चाहा। हम इस तरह बेवकूफ बनने को कतई तैयार नहीं थे। आखिर पुलिस थाने जाना पडा़। पुलिस के धमकाने पर उसे पंद्रह रूपये में ही संतोश मानना पडा़। हम स्टीमर पर वापस आ गये। . . . लेकिन उस रात बहुत देर तक नींद नहीं आयी।

4. भारतीय और अंग्रेज: एक पुरानी याद

यह अत्यंत पुरानी बाता है। मैं पहली बार बम्बई गया था। षाम को एडवर्ड थियेटर में ‘एक ही भूल’ नामक गुजराती नाटक देखने के इरादे से निकला। ट्राम से धोबीतलाब तक तो पहुंच गया, पर काफी देर तक इधर-उधर देखने पर भी एडवर्ड थियेटर नहीं मिला। आखिर थक कर धोबीतलाब के चैक से टेक्सी पकडी़। कहा, एडवर्ड थियेटर चलो। टेक्सी वाला आंखे फाडे देखता रहा, पर मैं कुछ समझ न सका। उसने क्रोफर्ड माकेट का चक्कर लगा कर मुझे थियेटर पर उतार दिया। मैंने पैसे चुका दिये, वह हंसता-हंसता चला गया। बाद में मालूम हुआ कि

टेक्सी वाला मेरी मूर्खता पर ही हंसा होगा। उसने मुझे बताया नहीं इसका कोई गिला नहीं। पर उसकी विद्रूप भरी कुटिल हंसी ह्रदय में चुभ गयी।

पहली बार लंदन गया तब भी इसी प्रकार का अनुभव हुआ था। आॅक्सफर्ड सरकस के मोड़ पर खडा़ था कि इश्तहार देखा कि केम्ब्रिज सरकस के किसी सिनेमागृह में 'हिस्ट्री इज मेड एट नाइट' नामक संुदर चित्र चल रहा है। मैं बिलकुल अनजान था। सोचा कि आॅक्सफर्ड औश्र केम्ब्रिज नामवाले चैकों के बीच कुछ दूरी तो होगी ही। अतः टेक्सी पकडी़। एक मिनट भी नहीं हुआ होगा कि टेक्सी वाले ने थियेटर के सामने उताद दिया। पैसे देने लगा तो हंसते हुए कहा, ''साहब, आप अजनबी है। आपको मालूम नहीं था। पैसे रहने दीजिये। इसे एक अंगरेज की एक भारतीय को नाचीज भेट समझ लें।' '

बात बहुत मामूली थी। पर पहली बार मक्कारी ने अज्ञान को हास्यास्पद बना दिया था। इस बार समभाव ने उसमें ममता उडेल दी।

56

ह्रदय धर्म का प्रसाद

अच्छी तरह से याद है। वह षाम भुलाई जा सके ऐसे नहीं थी। प्रकृति की सुंदरता और मनुश्य-ह्रदय की मधुरता कई बार विस्मृति की खाई मंे खो जाती है। परंतु किसी की मूक दृश्टि, करूणा से छलकता किसी का निश्राम, सूना पडा़ हुआ कोई निर्जन खंडहर या ह्रदय की निगूढ श्रद्धा के समान, उजाड़ वन में खिला हुआ कोई एकाकी कुसुम स्मृति की नमी से पोशण प्राप्त कर के अंतर में चिरंजीव स्थान बना लेते है।

मन 1949 की अट्ठाइसवीं जून। तीसरे पहर चार बजे हम नैरोबी से नैवाषा जाने के लिए निकले। इरादा था नैवाष सरोवर देखने का। रास्ते में किकुयु सरोवर भी देखना थ। यह किकुयु सरोवर दुनिया का एक अजीब चीज़ है- प्रकृति का एक अजीब चमत्कार है। उसके संबंध में बहुत कुछ पढा़ था। अमरीकन और पष्चिम के अन्य प्रवासियांे ने इसका वर्णन आष्चर्यमुग्ध होकर किया है। देख कर आंखे देखती ही रह गयी। वैसे यह सरोवर बहुत बडा़ नहीं है। अहमदाबाद के कांकरिया तलाब से भी छोटा होगा। पर खासीयत यह है कि उसका पानी दिखाई नहीं देता। पानी पर दो तीन फुट मिट्टी की परत जमी हुई है और ऊपर घास ऊग आयी है। इस सतह पर चला जा सकता है। चलते समय ऐसा अनुभव होता है मानो किसी बहुत मोटे कालीन पर चल रहे हो औरपांच जमीन में धंस रहे हो। पांव न जाने कब भीतर चले जायेगें एकसा डर लगता है। बीच में दसेक फुट चैडा़ई का खड्डा खोद रखा है। यह दिखाने के लिए कि सिर्फ तीन फूट गहराई पर गहरा पानी भरा हुआ था।

हमने चलकर देखा। इतनी दूर से आने पर अनुभव प्राप्त करना ही था। कुदरत के करिष्मे का प्रत्यक्ष दर्षन करना ही था। अनुभव मिला। पर पचहत्तर षिलिंग के जूतों की मिट्टी पलीद हो गयी। मन दुःखी हो गया। पर बुद्धि हार मानने को तैयार नहीं थी। उसने तर्क किया कि कुछ भी हुआ, पर आज प्रकृतिका एक अजीब चमत्कार देखा। कुदरत की अनेकविध विचित्रताओं में से एक के दर्ष किये। खैर, मन जैसे-तैसे षांत हुआ . . . पर विशाद कम नहीं हुआ।

यहां से हम नैवाषा की ओर चले। मोटर तेज रफतार से जा रही थी, पर गति महसूस नहीं हो रही थी। कोलतार की सड़क इतनी समतल और स्वच्छ थी कि मोटर से उतर कर पैदल चलने का मन हो। हमारे मेज़बान ने बताया कि यह सड़क इतालवी कैदियों ने बनायी थी। पिछले महायुद्ध के दरमियान केनिया में योरोपीय युद्ध-बंदियों के लिए छावनियां खोली गयी थी। अधिकांष इतालबी थे। उनमें के अनेक अनुभवी इंजीनियर, दक्ष कारीगर और कुषल मजदूर थे। केनिया की सरकार ने उनके श्रम का सदुपयोग किया। यह सत्तर मील लंबी सड़क उसीका परिणाम है। मुझे रोम, मिलान और फलोरेेन्स की संुदर सड़कों का स्मरण हो आया।

मित्र ने किस्सा आगे बढाया। केनिया में यह सड़क सर्वोत्तम मानी जाती है। ऐसी सड़क आपको समूचे पूर्वी अफ्रीका में कहीं नहीं मिलेगी। लेकिन यह तो उन बंदियों की सेवा से प्राप्त स्थूल लाभ हुआ। उनके परिश्रम का एक सूक्ष्म पर अधिक षक्तिषाली प्रभाव भी अफ्रीका प्रजा पर पडा है। अफ्रीका निवासी तब तक यही मानते थे कि गोरी चमडी वालों की उत्पत्ति सिर्फ षासन करने के लिए ही हुई है। वे लोग देवताओं की संता है और उनका आषीर्वादप्राप्त करने वाली भाग्यवान प्रजा है। यह मान्यता उनके हृदय में गहरी श्रद्धा का रूप धारण कर चुकी है। लेकिन उन्हीं अफ्रीकियांे ने गोरी चमडी वाले इतालवी बंदियों को मजदूरी करते देखा। खुदाई करते, मलबा उठाते, जलती हुई दोपहर में खुल बदन पसीना बहाते देखा। और चरम आष्चर्य की बाता तो यह कि उस पर अपने ही बंधु, काले अफीकी सिहपाहियों को पहरा देते और हुकूमत चलाते देखा। इस परिस्थिति ने अफ्रीका वासियों के मन में नयी चेता का संचार किया। वे समझने लगे कि ये गौरांग प्रभु भी उन्हीं के जैसे मनुश्य है। उन्हें भी अभिषाप भुगतने पड़ते है, कैदियों के रूप में कमरतोड़ मजदूरी करनी पड़ती है। अरे कृश्णवर्णीयों की ताबेदारी भी करनी पड़ती है। इस भावना ने उनके मन की हीनताग्रथि को सुलझाने में सहायता पहुंचायी। उसके स्थान पर उनकी चेता में समानता, मनुश्यमात्र के समानाधिकार आदि स्वास्थ परिवर्तन ने अफ्रीकी मानव का मानो कायाकल्प कर दिया। अफीकावासियों के स्वतंत्रता-संग्राम में उत्क्रांति की दृश्टि से इस परिवर्तन को एक महत्त्वपूर्ण सीमाचिन्ह मानना होगा।

कार रूक गयी। देखा कि हम एक गहरी घाटी के सिरे पर खडे है। पष्चिम के क्षितिज पर एक प्रषांत ज्वालामुखी अधिकार भ्रश्ट नेता के समान निश्प्रभ बैठका था। उसके षिखर पर बादलों की महफिल जम रही थी। षरारती बादल सूरज के झांकने में बाधा डाल रहे थे। लेकिन उनकी बंदिष में आ जाय तो सूरज कैसा? घनी घटा के बीच में जो छोटेमोटे झरोखे रह गये थे उनमें से प्रकाष के पुंज नायागरा के प्रपात की तरह नीचे को बह रहे थे। षुभ्र आलोक की इस अद्भुत और गतिमान धारा को देख कर आंखे विभोर हो गयी। मन ही मन उसकी जीवन की गति के साथ तुलना होने लगी। स्थिरता और स्फूर्ति का ऐसा अद्भुत संगम, भव्यता और सामथ्र्यका ऐसा समन्वय देख कर हृदय आष्चर्यमुग्ध हो उठा। इस दृष्य पर से हट कर नज़र नीचेकी ओर गयी तो अस्त होते हुए सूर्य के प्रकाष से सिंचित विस्तीर्ण घाटी दिखाई दी। इसे ही विष्वविख्यात ‘रिफट वैली’ कहते है। धरती की काया में पडी हुई यह दरार पेलेस्टाइन से लगा कर दक्षिणी अफ्रीका तक चली गयी है।

सूर्य उस मृत ज्वालामुखी के पीछे उतर गया था। संध्या के आगमन की नौबत बज रही थी। हम नैवाणा की दिषा में आगे बढे। कुछ दूर जाने पर, सड़क जहां से मोड़ ले कर घाटी में नीचे उतरती हे वहां एक कगार पर एक सुंदर इमारत दिखाई दी। उसका मुखद्वार घाटी की ओर था। स्थापत्य की सुंदरता व रचना की कलात्मकता के कारण वह कोई गिरजा मालूम दे रहा था। जिस स्थान पर, और जिस प्रकार से उसका निर्माण किया गया था वहीं उसकी असाधारण चित्रात्मकता के पर्याप्त प्रमाण थे। कार रोकी और उतर कर देखा। हमने गलती नहीं की थी। गिरजा ही था। दीवारों पर जाॅन, संत पीटर और ईसा के जीवन के हृदयस्पर्षी चित्र अंकित थे। बीच में मेडोना की प्रतिमा थी। बांहों में षिषुरूप मसीहा। मालूम हुआ कि इसका निर्माण भी डन्हीं इतालवी वॅदियों ने किया था-लेकिन स्वेच्छा से। सड़क बनने के बाद बचा हुआ मालसामान इसमें लगा है। पत्थर वहीं घाटी के किनारे के पहाडो से तराषे हुए है। चित्र भी उन्हीं कलाकारों के बनाये हुए है। पूरा खर्च वंदियों ने अपनी मज़दूरी के पैसों में से किया था। गिरजे की आकृति, उसका रूप उसकी कलात्मकता सब कुछ अनूठा था। सड़क उन इतालवी बंदियों के परिश्रम का परिणाम थी, पर यह गिरजा उनके हृदयधर्म का प्रसाद मालूम दिया।

संध्या उतर आयी। सांध्यप्रकाष की अपनी अलग ही अभा होती है। उसमें दिन के प्रकाष की प्रखरता भी नहीं होती और रात के अंधकार की घनता भी नहीं। दिन के प्रस्थान और रात्रि के आगमन का संगम संध्या के अंक में ही होता है। मेरे अंतर मं इस संध्या ने अवर्णनीय करूण-मंगल भावों को जन्म दिया। विवाह के बाद पीहर से विदा हो कर पति के घर जाने वाली सौभाग्यवती के मन में माता-पिता, बांधवों से बिछड़ने का दुख भी होता है

और पतिगृह में प्राप्त होने वाले नवजीवन का मंगल स्वपन भी। कुछ उसी प्रकार की अनुभूति से हृदय विभोग हो गया।

लेकिन उस संध्या का प्रधान स्वर था कारूण्य। मृत ज्वालामुखी के गतवैभव की गमगीन याद मन में जाग्रत थी, धरती की छाती पर पडी़ हुई दरार का दुःख था, दिवस के अवसान का विशाद था, और अस्त होते हुए प्रकाष की उदासी थी। सब ने मिल कर उस संध्या को अत्यंत उदास बना दिया। पर इन सब से मुकाबिल थी उन इतालवी बंदियां के हृदय-दीपक की पाकज्वालामानवता की चिरंतन, चिरयुवा और नित्यनूतन आस्था। और था मानव हृदय की अभिनव मंगलता का स्पप्न-उसकी श्रद्धा के दृढ़ निष्चय का बल।

पत्थरों में प्रकट हुए, मनुश्य हृदय की श्रद्धा के उस काव्य को देख कर दृश्टि अनायास ही झुक गयी। विशाद का कोहरा नश्ट हो गया।

इसके बाद हम नैवाषा नहीं जा सके। षायद उसकी आवष्यकता भी नहीं रही।

57

प्रष्न और उत्तर

पूर्वी और दक्षिणी अफ्रीका से आने वाले मेरे अनेक मित्रों से मैं वहां की आदिवासी वन्य जातियों के विशय में कुतूहलपूर्ण प्रष्न पूछा करता था। उनके रहन-सहन, आदतें, चलन-व्यवहार, विचारसारणी भावनाएं आदि मुझे गहराी दिलचस्पी थी और मैं अनेक प्रकार के प्रष्न पूछता। परंतु किसी भी कित्र ने स्वानुभव की या सुनी हुई कोई निष्चित बात नहीं बतायी थी। पूछने पर मालूम हुआ कि उनमें से किसी को इन बातों में न तो कोई दिल्चस्पी थी न इस संबंधी कोई अनुभव। दो-एक मित्रों ने जो थोडी़-बहुत बाते बतायी, उनसे मेरे मन में उन आदिवासियों को देखने की और उनके संबंध में कुछ अधिक जानने की इच्छा तीव्रतर ही हुई। वैसे तो हमारी सारी उत्कट इच्छाएं फलीभूत होती हों, ऐसा अकसर नहीं होता। पर यह इच्छा पूरी होने का योग आया।

पूर्वी अफ्रीका में भटकत समय जब भी मौका मिला मैं वहां बसने वाली अनेक आदिम जातियों से मिला। मन में महत्वकांषा तो यह थी कि मानवचेतना की उत्क्रांति की दृश्टि से उनका गहन अध्ययन किया जाय। पर इनका समय मेरे पास नहीं था। सौभाग्य से, इन कबीलों का वैज्ञानिक दृश्टि से अध्ययन करने वाले एक अंगरेज सज्जन से मुलाकात हो गयी। उनका नाम है डाक्टर लीको। वे नैरोबी म्यूजियम के क्यूरेटर है। उनके सान्निध्य में कुछ घंटे बिताने का मौका मिला। इस दरमियान उनके साथ किकुयु आदिवासियों के संबंध में विचारों का आदान-प्रदान करने का जो अवसर प्राप्त हुआ उनमें मन को बेहद आनंद हुआ। इसी बहाने अफ्रीकी प्रष्नों के उस निश्णात सामजषास्त्री के विचारों को समझने का मौका भी मिला।

अगस्त के दूसरे सप्ताह में मैं नैरोबी से माॅम्वामना जाने का विचार कर रहा था। एक मित्र ने सुझाया कि वाखाम्बा कबीले के लोगों से मिलने का ऐसा मौका फिर नहीं मिलेगा। वाखम्वाओं के विशय में जब से कुछ जानकारी मिली थी तब से उस कबीले के लोगों को देखने की व उनसे मिलने की इच्छा मन में प्रबल हो उठी थी। कुछ समय पहले ही वहां की गोरो सरकार ने जब वाखाम्बाओं के जंगलात में बडी़ संख्या में मवेषी अनिवार्य तौर पर कल्लखाने भिजवाने का फरमान निकाला था तब उस जाति के अहिंसक सत्याग्रह से उसका प्रतिकार किया था। लगभग चार-पांच हजार वाखाम्बा स्त्री-पुरूश अपने बालबच्चों के साथ नैरोबी में धरना दे कर पडे रहे। इस अहिंसक सत्याग्रह के परिणाम-स्वरूप् सरकार को समझौता करना पडा़ था। परंतु उनके मुखिया सेम्यअल मोहिदी को देषनिकाला दिया जाने के काराण् असंतोश बना रहा था।

इन हंसमुख, सीधे-साधे और भोले किसानों से मिलने का मौका मिलते ही हम दोपहर के भोजन के बाद मोटर से नैरोबी से पचास मील दूर मचाकोस जाने के लिए निकले। मचाकोस की गिरिमालाएं ही वाखाम्बाओ का निवास-स्थान है। कोई पचीस मील जाने के बाद हमने आथी नदी पर की। रास्ते में वन्य पषुओं के झुंड के झुंड दिखाई

देने लगे। षेर छोड़ कर सभी अफ्रीकी जानवार दिखाई दिये। जिराफ, जेबरा और हिरनों के सैंकडों के झुंड। आथी नदी का पूरा प्रदेष इन पषुओं की नैसर्गिक निवासभूमि है।

मचाकोस गांव में हमने कार छोड़ दी। वहां के एक भारतीय परिचित ने हमारे लिए जीप की व्यवस्था की थी। उसी में हम पहाडी़ पर चढे। साथ में उस प्रदेष का जानकार स्थानीय वाखाम्बाओं को नेता फिलिप भी था। उसकी सहायता से वाखाम्बा स्त्री-पुरूशों से संपर्क स्थापित हो सका। बातचीत तीसरे नहीं बल्कि चैथे मुख से पूर्ण होती थी। हमारे साथ के मित्र स्वाहिली जानते थे और फिलिप स्वाहिली एवं वाखाम्बा दोनों भाशाएं जानता था। अतः क्रम इस प्रकार चता कि मैं गुजराती में सवाल पूछता, मेरे मित्र उसका स्वाहिली अनुवाद कर के फिलिप से कहते और वह अपनी भाशा में वाखाम्बाओं से पूछ कर हमें समझाता। वार्तालाप का यह तरीका बडा़ मनोरंजक सिद्व हुआ। वाखाम्बाओं से मिलते-मिलते फिलिप के साथ हम एक ऊंची पहाडी़ पहुंच गये। रास्ता खराब था और दिन ढल रहा था। लेकिन जीप-चालक की कुषलता के कारण हम सूर्यास्त से पहले ही फिलिप के घर पहुंच गये। प्रदेष की बीहड़ता को देखते हुए यह अच्छा ही हुआ।

मचाकोस की उस पहाडी़ पर से जो सूर्यास्त देखा वैसा भव्य और काव्यमय दृष्य जीवन में क्वचित् ही दिखाई देता है। मेरे मित्र तो मुग्ध हो कर गायत्री मंत्र का उच्चारण करने लगे। फिलिप ने आदमी भेज कर अपनी दोनों पत्नियों को खेत से बुलवाया। पष्चिमी क्षितिज पर आकाष रंगों का क्रीडांगन हो रहा था। फिर चमकीले, तेजस्वी रंग धीरेधीरे धुंधले होते गये और आकाष की सघन नीलिमा ने उन्हें अपने उदर में समा लिया। अंधेरा अभी उतरा नहीं था। तेज-छाया और अंधेरे-उजाले की इस आंख मिचैनी का दृष्य और पीठ पर नाज के बोरे उठाये पहाडी़ चढ़ने वाली फिलिप की पत्नियों की मूर्तियां मानस पर सदा के लिए अंकित हो गयी। मानो समस्त पददलित मानवजाति के प्रस्वेद ने धनीभूत हो कर उन दो आकृतियों का निर्माण किया हो इस प्रकार वे दोनों स्त्रियां जीवन का बोझ पीठ पर लादे, हांफती हुई, पहाडी़ चढ़ रही थी। उनकी चाल में जिस विवषता, जिस धैर्य और जिस कारूण्य के दर्षन हुए उसका वर्णन करने की षक्ति मेरी लेखनी में नहीं है। वे ऊपर पहंुती तब तक अंधेरा हो चुका था। घर में इतने मेहमानों को देख कर वे भौचक्की रह गयी। साथ ही उन्हें आनंद और संतोश भी हुआ।

अंधेरा घना होने से पहले ही हमने पहाडी़ से उतरना षुरू कर दिया। घाटी में पहुंचने पर हमारी जीप के भारतीय चालक ने बताया कि पास ही के जंगल में एक हिन्दुस्तानी बूढा़ रहता है जो पूर्णतः वाखाम्बा बन चुका है। उसका नाम है पूरन। पास वर्श से भी अधिक समय से वह यहां रता है। खान-पान, बोली भाशा, रहन-सहन, सब दृश्टियों से वह उनमें घुलमिल गया है। सिर्फ नमक, षक्कर या दियासलाई जैसी चीजे खरीदने के लिए ही वह बस्ती में आता है। मेरे मन में जिज्ञासा जाग्रत हुई। मैने मित्रों से कहा और कुछ देर में ही हम उसके आंगन में पहुंच गये। बिलकुल अफ्रीकी आदिवासियों के से ‘‘झुम्बो’ ’ (झोपडे) में वह रहता था। उसकी एक प्रिय गाय और दो बकरियां भी उसी झोपडी़ में साथ रहती थीं। पूरन की मातृभाशा हिंदी ही होनी चाहिये यह मैं तुरंत पहचान गया। पर हिंदी बोलने की उसकी बिलकुल इच्छा नहीं थी। षायद इस से पुरानी यादें जाग्रत हो उठने की संभावना थी जिसे वह टालना चाहता था। अपनी मरजी से तो वह वाखाम्बा भाशा ही बोले जा रहा था। मैंने उसे धीरे-धीरे और बेमालूम हिंदी के रास्ते पर मोडा़। बुढ़ऊ बहुत खुष हुआ। मैं भारत से आया हूंू यह जान कर तो वह मुझ से लिपट गया। षीघ्र ही उसे विष्वास हो गया कि मैं कोई ‘साहब’ या फोटो खींच-खींच करके परेषान करने वाला ‘टूरिस्ट’ नहीं हूं। बल्कि उसके साथ मित्रता करने को इच्छुक स्वदेषबंधु हँू। उसका संकोच दूर हो गया। बातें होने लगी।

बीस-पचीस साल की उम्र में वह यहां आया था। इस बात को कितने वर्श हुए, उसक मालूम नहीं। जानने की इच्छा भी नहीं। अतीत उसका रास्ता नहीं रोकता और भविश्य की उसे परवाह नहीं। इस समय उसकी उम्र अस्सी से भी अधिक होगी। दुनिया की प्रगति की उसे कुछ खबर नहीं थी। नमक या षक्कर खरीदने के लिए

मचाकोस गांव जाने पर, भारत या विलायत हो आने वाले जिन लोगों से मुलाकात होती थी उन्हें देख कर तो उसे अपनी जिंदगी और भी भली लगने लगती थी। पष्चिमी सभ्यता के रंग में रंग कर क्र्या पाया इन लोगों ने? उसका जीवन बाह्य दृश्टि से भले ही सुसंगत या प्रगतिषील दिखाई न दे, इतना ही नहीं, वह असभ्य और अधोगति की ओर बढ़ता हुआ दिखाई दे, तो भी उसकी बातों में तथ्य अवष्य था। मुझे उसकी बातें दिलचस्प लगी और उसका व्यक्तित्व आकर्शक। अस्सी नब्बे वर्श का यह वृद्ध छोटे बालक के समान निर्दोश और निष्छल था। वह साहबी ढंग के कपडे और बाहरी टीपटाप वाले हृदयहीन मनुश्यों के जैसा छिछला और दंभी मालूम नहीं दिया। मैले और नाममात्र के कपडो़ और जंगली झाडी़ के समान बढ़ने वाली दाढी़-मूछों के कारण बदसूरत दिखाई देने वाला यह आदमी भीतर से संतुश्ट और भयरहित मालूम दिया। मैंने उससे पूछा कि जेट की रफतार के आगे बढ़ने वाले इस युग में यहां इस प्रकार रहने में उसे क्या संतोश मिलता है। उत्तर में उसने मुझे एक घटना सुनायी:

एक दिन षाम को वह नदीपार से आ रहा था। प्रतिदिन वह जिस प्रकार नदी पार करता था उस रोज़ भी उसी प्रकार कर रहा था। पहाडी़ पर जो की वर्शा हुई थी यह उसे मालूम नहीं था। वह लगभग नदी के बीच में पहुंचा होगा कि पानी कमर तक बढ़ गया और प्रवाह के वेग असहाय हो उठा। आगे बढ़ने की तो बात ही छोड़ियें, जहां खडा़ था वहां जमे रहना भी मुष्किल हो गया। वापस लौटना नहीं था और लौटना संभव भी नहीं था। जाना तो आगे था। अतः पूरी रात वह प्रवाह के बीच में ही खडा़ रहा। पूरी रात प्रवाह के साथ वह जाने से बचने के पुरूशार्थ में बीती। सुबह बहाव का जोर कम हुआ, तब सामने के किनारे पर पहुंचा।

कुछ देर षांत रह कर उसने कहा, ''इस दुनिया में अज्ञान के प्रवाह का जोर बहुत बढा गया है, साहब। अभी तो उसमें बह न जाऊँ इसका पुरूशार्थ करना पड़ रहा है। बहाव की गति कम होने पर पार उतर सकूंगा। बह कर चाहे जहां पहंुंचना नहीं चाहता। मुझे तो निष्चित दिषा में, आगे बढ़ना है। इसके लिए कुछ देर तक रूके रहना पडे तो कोई हर्ज नहीं।' '

इतने में उसकी बकरी मिमियाई। गाय ने भी रँभा कर मानो उसे बुलाया। हमारी अनुमति मांगे बिना और हमारी रंचमात्र भी परवाह किये बिना वह उठ कर चला गया। सभ्यता के इन बंधनों को तो वह कभी का तोड़ चुका था। अंधेरे में मैं उसे जाते हुए देखता रहा। मेरे मन में प्रष्न उठा कि आज का मनुश्य उद्देष्यहीन भटकते हुए चाहे जिस अनिष्चित स्थान पर पहुंच जाने को या अपने ही इर्दगिर्द चक्कर काटते रहने की ही तो प्रगति नहंी मान बैठा?
पूरन ने यही प्रष्न उठाया था। इसका उत्तर वह खुद था।

58

आस्था गहरी उतर गयी

स्न् 1949 का जुलाई महीना। हम नैरोबी से गुथंगुरी विद्‌यालय देखने के लिए जा रहे थे। इस विद्‌यालय के विशय में जानकारी मुझे एक अमरीकी महिला से प्राप्त हुई थी। महिला ने इस संस्था का उल्लेख अत्यंत श्रद्धा और सहृदयता पूर्वक किया था। अतः जिज्ञासा तो थी ही। नैरोबी से चले तब प्रभात के प्रसन्न वातावरण की ताज़गी के कारण गन्तव्य स्थान के प्रिति और भी सद्भावना उत्पन्न हुई। मैं मानता हूॅं कि यह संवेदना तर्कसंगत नहीं थी। पर हुई जरूर।

गुथंगुरी विद्‌यालय किकुयु कबीले के विष्वविद्‌यालय जैसी पर उसे अधिका व्यापक संस्था है। किकुयु लोग पूर्वी अफ्रीकामें और खास तौर पर केनिया में बसने वाली आदिवासी जातियों में राजनीतिक दृश्टि से सबसे अधिक जाग्रत और जोषीली कौम है। अपने अधिकारों के लिए वे केनिया सरकार से सदा लड़ते रहे है। सरकार का विरोध करने के लिए उन्होंने अपनी इस संस्था के लिए सरकारी अनुदान लेना भी बंद कर दिया और अपने ही धन से विद्‌याप्रसार की प्रवृत्ति आगे बढा़यी। ईसाई धर्म-प्रचारकों ने उनकी सांस्कृतिक एकता पर आक्रमण किया

इसलिए उन्होंने अपने अलग गिरजे स्थापित किये। सरकार औरमिषनरी, इन दोनों के सद्भाव, सहयोग और सहायता के बिना संस्कृति, षिक्षा या सेवा का प्रसार करने वाली संस्थाएं उस पिछडे हुए प्रदेष के आदिम निवासी कैसे चला सके यह बारहवालों के लिए विस्मय की बात हो सकती है। पर वाकिकुयु जाति ने इस अषक्याता के स्थान पर षक्यता का वृक्षारोपण करके दिखाया है। आज उस वृक्ष पर श्रद्धा और आषा के फल लगने लगे है। इन षिक्षाप्रवृत्ति द्वारा इन जाति के लगभग पैंतालीस हजार बालकों को तालीम मिल रही है।

इस पूरी प्रवृत्ति के संचालन की आत्मा और इसके सर्वाधिकारी है पीटर कोईनांगे। लेकिन वे प्रसिद्ध है बीओं के नाम से। पूरी किकुयु जाति में वे इसी स्नेहभरे नाम से परिचित है। कोइनांगे उनके गांव का नाम है। उनके पिता वहां के प्रधान जमींदार है। उन्हौंने लंदन में षिक्षा पायी है। वहां के लंदन स्कूल आॅफ इकनाॅमिक्स के वे स्नातक है। अमरीका-यात्रा भी कर आये है। स्वास्थ और षक्तिषाली देह, तेजस्वी, निष्चल आंखे, और बालकों जैसा निश्कपट और निर्मल हृदय। यह आदमी देखते ही अच्छा लगने वाला और परिचय होते ही मित्रता करने का मन हो ऐसा है।

हम जब गुथंगुरी विद्यालय देखने गये थे तब वे भारत आने की तैयारी कर रहे थे। भारत के कई विष्वविद्यालयों ने उन्हें अफ्रीकी षिक्षाप्रणाली पर व्याख्यान देने के लिए निमंत्रित किया था। अनेक भारतीय मित्रों ने उनकी निश्ठा और सचाई की तारीफ की थी। भारतीयों और अफ्रीकियों के बीच के दूशित होने जाने वाले संबंधों को सुधार कर समभाव और सहकार की बुनियाद पर उनकी पुनर्रचना करने का जो पुरूशार्थ नैरोबी के कतिपय अग्रणी भारतीय कह रहे है उनके बीओ परम मित्र और सहायक है। ऐसे एक उदातरा और निश्ठावान अफ्रीकी से मिलने की स्वाभाविक उत्कंठा मन में थी। अतः गुथंगुरी विद्यालय देखने की इच्छा के पीछे कोरा कुतूहल था यह नहीं कहा जा सकता।

नैरोबी से करीब पचीस मील दूर स्थित गुथंगुरी अत्यंत रमणीय स्थान है। किकुयु जाति के निवास-प्रदेष के लगभग बीच में एक संुदर पहाडी़ पर विद्यालय की झोंपड़ियां खडी़ है। एक मात्र पक्का मकान है उनका गिरजा। और कई इमारते बन रही है। बीओं की अनुपस्थिति में विद्यालय संचालक जोमो केनियाटा ने हमारे साथ घूम-घूम कर पूरी संस्था हमें दिखायी। बारीब-बारीक तफ़सीलें समझायीं। पूरी प्रवत्ति के पीछे ध्येयवाद और इतिहास का ब्योरा दिया। ज्यों-ज्यों वे बोलते जाते थे त्यों-त्यों उनका व्यक्तित्व प्रकट होता जाता था। षरीरिक दृश्टि से देखने पर, मेरे मित्र षिवाभाई अमीन द्वारा दिया हुआ विषेशण ‘नरषार्दूल’ उन पर पूर्णतः चरितार्थ होता था। व्यक्तित्व की परतें ज्यांे-ज्यों खुलती गयीं त्यों-त्यों कौषल और महत्वकांक्षा के दर्षन होने लगे। वर्तालाप में बीच-बीच में अपने प्रति सूक्ष्म अभिमान और भारतीयों के प्रति श्रद्धा और अविष्वास भी झांक जाते थे। छः-सात घंटो के सहवास मे ही उनके पराक्रमी प्राण की छवि मेरे अंतर में सहा के लिए अंकित हो गयी।

विद्यालय दिखाने का कार्य पूरा होने पर उन्होंने अपनी पुत्रि बाम्भूई से हमारा परिचय करवाया । लड़की इसी विद्यालय में षिक्षिका है। हमें चाय पिला कर उसने समूचे विद्यालय के बालकों को मैंदान में एकत्रित किया और अफ्रीकी ढंग की कसरत, कवायद और कूच का कार्यक्रम दिखाया। किंकुयु संगीत की सहायता से किकुयु नृत्य भी दिखाया। सब देख कर मन प्रसन्न हो गया। षीघ्र ही बच्चों की यह भीड़ विषाल सभा में परिवर्तित हो गयी। बालाकों के साथ षिक्षक और अन्य कर्मचारी भी सम्मिलित हुए। मित्रों के सज्ञथ पहले से ही निष्चित हो चुका था कि कुछ बोलने का मौका आये, तो भारतीय-अफ्रीकी संबंधों में जिन नये प्रवाहों और नयी भावनाओं का उदय हुआ है उन्हीं की बात की जाय। उसका कुछ भी प्रभाव इस उदयोन्मुख पीढी़ पर पड़ सका, तो इससे दोनांे प्रजाओं को लाभ होगा। मैं अंगरेजी में बोलता गया और केन्याटा उसका किकुयु अनुवाद कर के सुनाते गये। भाशण के दरमियान मैंने यही कहा कि भारतीय लोग अफ्रीकी प्रजाओं का षोशण करने के लिए उनके देष मं नहीं आये। वे बडी़ संख्या में यहा आ कर बसे है और इसी देष के नागरिक हो गये है। उनका प्रधान उद्देष्य अफ्रीका के मूल निवासियों की सहायता करना ही है। उनके स्वातंय-संगाम में भी वे सहयोग और सहायता देना

चाहते थे . . . इत्यादि। लेकिन ये बाते किकुयु भाशा में समझोत समय केन्याटा के मुख पर बार-बार जो विद्रूप भरी हंसी आ रही थी उसमें एक क्षण में स्पश्ट हो गया कि उन्हें इन बातों पर न तो श्रद्धा थी न विष्वास। अतः बाद में मैने स्पश्टीकरण किाया कि भारतीयों का भविश्य का बर्तावा ही इस निश्ठा को सत्य प्रमाणित कर सकेगा। गतकाल का स्मरण करने से कोई लाभ नहीं। परंतुइस बार तो उन्होंन स्मित भी नहीं किया। मूर्तिमंत गंभीरता बने सुनते रहे। ऐसा महसूस हुआ कि विशवृक्ष की जडे बहुत गहरी उतर चुकी है। उसमें अमृतफल षायद ही कभी लगे।

मेरी षुभेच्छाओं का उत्तर मेट्रिक के एक विद्यार्थी ने किकुयु भाशा में दिया। विद्यार्थी के भाशण का अंगरेजी तरजुमा भी केन्याटा ही करते गये। साथ ही उनकी भाशा की अस्पश्टता और अषुद्धियों को सुधरते जाते थे और बीच-बीच में अपना भाश्य और मर्मभेदक कटाक्ष जोड़ते जाते थे। अंत में उन्होंने आषा व्यक्त की कि अफ्रीकी - भारतीय संबंध यदि सचमुच ही मेहमान द्वारा व्यक्त की गयी भावनाओं के अनुसार विकसित हो सके, तो उस प्रदेष में भारतीयों का बाल भी बांका नहीं होगा।

ऐसे वातावरण में कोरी षुभ-कामनाओं से कोई स्थायी परिणाम नहीं निकल सकेगा। यह स्पश्ट था। मरे मेजबान षानभाई पटेल के गले भी यह बात उतरी। अतः एक किकुयु विद्यार्थी को आरंभ से लगा कर मेट्रिक्युलेषन तक की षिक्षा के लिए छात्रवृत्ति देने का वादा भी किया। इसका अपेक्षित प्रभाव पडा़। केन्याटा की भाशा और भाव दोनों कुछ मृदु हुए और उनके विचारों में अभिमाना और अश्रद्धा के स्थान पर कुछ हद तक सद्भाव और आस्था की अभिव्यक्ति हुई।

अब मन में निष्चय हुआ कि यहां तक आये है तो कोइनांगे जा कर बीओ और उन के परिवार से मिल लेना चाहिए। केन्याटा ने स्वयं ही साथ आने का सुझाव रख अतः हम तुरंत कोइनांगे जाने का निकले। मन में रह-रह कर विचार उठ रहा था कि इस भूमि पर षांतिनिकेतन और सत्याग्रह आश्रम का समन्वय करने वाली कोई संस्था स्थापित हो, तो मानवता का वटवृक्ष पनपते देर न लगे।

कोइनांगे जाते समय रास्ते में कियाम्बु नामक स्थान पर किकुयु लोगों के प्रधान न्यायालय का अधिवेषन देखा। केन्याटाने वरिश्ठ न्यायाधीष से हमारा परिचय कराया। चारों ओर से खुले हुए एक विषाल छप्पर के नीचे अदालत चल रही थी। किनारे-किनारे मिट्टी का नीचा बरामदा था। उस पर लोग बैठे थे। बीच में कुछ ऊँचे आसन पर प्रधान न्यायधीष बैठे थे। उनके पास ही बीस-पचीस छोटी-छोटी लकड़िया पडी़ थी। दोनों पक्षों के तर्कों और प्रमाणों की इन लकड़ियों के सहारे गणना और तुलना करके वे निर्णय देते जाते थे। फरियादी और मुलज़िम सामने ही चबूतरे पर बैठे थे। पहले फरियादी की सुनवाई, फिर मुलज़िम की सफाई और आद में तुरंत निर्णय। वकील नहीं, दस्तावेज़ नहीं, लिखा-पढी़ नहीं। सब कुछ मौखिक। पेषी और तारीख का झंझट भी नहीं। जो भी निर्णय हो, उस पर सख्ती और निश्पक्षता से तुरंत अमल। 'सह वीर्य कारवा है' की भारतीय जीवनदृश्टि वहां चरितार्थ होती दिखाई दी।

किआम्बु से पगडंडियों के निकट राते में चल कर बीओ का छोटा भाई हमारे आगमन की सूचना देने के लिए और हमारे सत्कार की व्यवस्था करने के लिए हमस े पहले ही कोउनांगे पहुंच गया था। सड़क काफी घूम कर जाती थी। पूर्वी अफ्रीका मे हमने सब जगह यही देखा कि वहां के आदिवासी लंबे अंतर तय करने के लिए सबसे करीब पड़ने वाली पंगडंडियों का उपयोग करते है। उनका यह स्वभाव किसी रोज जीवन-सार्थक्य का भी कोई छोटा रास्ता ढूंढ निकाले तो आष्चर्य नहीं।

कोइनांगे में बीओ के वृद्ध पिता से मिल कर बेहद आनंद हुआ। वे वहां 'सीनियर चीफ आॅफ कोइनागे' कहलाते थे। कियाम्बु, कोइनांगे, किकुयु और गुथंगुरीके सौ-डेढ सौ मील के प्रदेष में तीन-चार कमरों का पक्का मकान सिर्फ यही दिखाई दिया। ईट पत्थर के मकानों में संपत्ति का व्यय करना षायद अफ्रीकी लोगों को मंजूर

नहीं। इस साधारण मकान का वर्णन हमारे ड्राइवर ने 'महल' कह कर किया था। वृद्धि कोइनांगे हमसे मिल कर बहुत खुष हुए। खेत में से ताजा मक्की के भुट्टे मंगवा कर हमें नाष्ता करवाया। बीओ के संबंध में सिफारिष की कि वह बज भारत आये, तब मैं उनकी देखभाल करूं और उसे हिफाजत के साथ वापस भेज दूं। हम गुथगुरी विद्यालय देख कर आ रहे है यह जान कर तो उन्हें अतिषय आनंद हुआ। बाहर विषाल आंगन में एक वृक्ष के नीचे वे हमें ले गये। कुछ देर षांत रह कर उन्होंने कहा, ''यह वृक्ष बहुत ही बड़भागीय है। कई वर्श पहले विन्स्टन चर्चिल यहां आये थे और कुछ रोज पहले ही भारत की औंध रियासत के वयोवृद्ध राजा साहब भी यहा पधारे थे। उन दोंनों से बातचीत इसी पेड़ के नीचे हुई थी। तुम्हारे जैसे तरूण भारतवासियों को देखकर मेरा हृदय प्रसन्न हो उठता है। तुम्हारी ही उम्र का मेरा लड़का भारतीयों के निमंत्रण से भारत जायेगा इसका ख्वाब भी मैं कुछ वर्श पहले नहीं देख सकता था। इन अप्रत्याक्षित घटनाओं से एकसा लगता है कि अफ्रीकी-भारतीय संबंधों के विशय में तुम्हारी सद्भावना सच्ची हो कर रहेगी। समभाव पर आधारित ये संबंध फलीभूत हो सके तो मुझे दोनों प्रजाओं का भविश्य उज्जवल मालूम देता है।' '

उनके सद्भाव से प्रोत्साहित होकर मैंने पूछा ''आप सच सच बताईये। आपको भारतीयों पर विष्वास है कि या अंग्रेजों पर? आप को अपना और अधिक निकट का कौन मालूम देता है। आप लोगों का भला कौन चाहता है? आपकी सहायता कौन कर सकता है?'' बुढ़ऊ कुछ गंभीर हो गये। मेरे प्रष्ना के उत्तर में उन्होंने एक घटना सुनायी। सुनात-सुनाते वे गद्‌गत हो रहे थे।

' 'एक बार हमने बच्ची की देखभाल करने के लिए एक नर्स रखी। देखने मं तो वह बहुत संुदर थी। बालचाल में भी चतुर, काम में दक्ष और फुर्तीली। हमें लगा कि बच्चों की परवरिष अब ठीक तौर से होगी। लेकिन छः महिने बाद ही बच्चे सूचने लगे। मुझे चिंता हुई कि कही फल, साग-सब्जी या दूध-मक्खन की कमी के कारण तो ऐसा नहीं हो रहा। लेकिन यह बात नहीं थी। इन चीजों की कमी नहीं थी। इसके अलावा, उन्हें संतरे-मौसंबी की फांके चूसते हुए भी देखते। अतः विष्वास हो गया कि खानपान तो ठीक चल रहा है। लेकिन फिर बात क्या था? तीन-चार महीने और बीते। बच्चों का स्वास्थ्य और भी गिर गया। आखिर एक रोज मेरी बडी़ लड़की को इस का भेद मालूम पडा़। उसने देखा कि बच्चों के लिए खरीदे जाने वाले फल-सब्जी और दूध-मक्खन वह अपने बच्चों को खिला देती थी। हमारे बच्चे तो बंूद-बूंद को तरसते थे। उनके मुंह पर लगा हुआ दूध या मक्खन तो हमारी आंखांे में धूल झोंकने की तरकीब मात्र थी। ज बवह आयी थी उसके बचचे कमजोर और रोगी थे। आठ-दस महीनों में ही वे तंदुरस्त और ह्रश्टपुश्ट हो गये जब कि हमारे बच्चों का दम होंठों पर आ रहा था।ष्

' 'आखिर हमने उस नर्स को निकाल दिया। उसकी जरूरत पूरी हो गयी थी और हमारा जी भर गया था। फिर एक दूसरी नर्स रखी। यह स्त्री दिखने में अत्यंत साधारण थी पर स्वभाव से भली और कार्य कुषल लगी। उसके भी बच्चे थे। हमने उसे पहली नर्स वाला ही कमरा दिया। तीन-चार महीनों में ही हमारे बच्चों का स्वास्थ्य सुधरने लगा और छः महीनों में तो वे पहले से कही अधिक तगडे हो गये। बच्चो साथ भी बहुत अधिक रहने लगे। मुंुह पर दूध या मक्खन लगा किसी रोज दिखाई नहीं दिया। लेकिन सात-आठ महीने बाद नर्स का एक बच्चा बीमार हो गया। वह उसा बसे छोटा बच्चा था। हमने पूछताछ की। बहुत आग्रह किया तब उसने अत्यंत संकोचपूर्वक बताया कि मालिक के बच्चों की देखभाल में वह अपने बच्चों की ओर बिलकुल ध्यान नहीं दे पाती थी। मेरे हृदय में यह बात चुभ गयी। तुरंत उसकी सहायता के लिए एक नौकरानी रखी गयी। उनके बच्चों के लिए अलग से खानपान की व्यवस्था की ।तब कही जा कर, दो-तीन महीने बाद उसके बच्चे स्वस्थ हुए।

' '. . . अब आप ही देखिये, साहब। एक नर्स ने हमारे बच्चों के स्वास्थ्य की कीमत पर अपने बच्चों को खिलाया और दूसरी ने हमारे बच्चों की देखभाल में अपनो की उपेक्षा की। अंगरेज लोग पहली नर्स के भईबंद है

जब कि भारतीय दूसरी के समान होता है। हम लोग चाहे जितने असंस्कृत और अषिक्षित हों, पर इस भेद को अच्छी तरह से समझते है।' '

इतना कह कर उन्होंने मेरे सिर पर हाथ रख कर आषीर्वाद दिया और दूसरे हाथ से आंखों की कोरों में झलक आने वाले आंसू पोंछे। मैंने झुक कर उनकी चरणरज ली। वृद्ध के दर्षन से जीवन के प्रति मेरी आस्था और भी गहरी हुई और मनुश्यजाति के भविश्य के प्रति आषा और भी उज्जवल बनी।

59

जीवन का मूल्य

हम अरूषा से नैरोबी जा रहे थे। अरूणा टंेगानिका की उत्तरी सीमा पर स्थित छोट सा संुदर षहर है। सौंदर्य और जलवायु दोनों के लिए प्रसिद्ध। इससे कुछ उत्तर को बढ़ते ही केनिया की हद षुरू हो जाती है। अरूषा से नैरोबी के रास्ते पर लगभग बीच में, मसाई कबीले का निवासप्रदेष पड़ता है। हमें इस जंगल के बीच से जाना था। अतः रास्ते में अनायास ही मसाई लोगों से मिलना हो सकेगा इसकी पूरी आषा थी। मेरे लिए यह बहुत बडा़ आकर्शण था। पूर्वी अफ्रीका की आदिम जातियों में मसाई सब से अधिक बहादुर, जीवंत और विरल जाति मानी जाती थी। आधुनिक संस्कृति का उन्हें स्पर्ष भी नहीं हुआ। कमर से लिपटा हुआ वल्कल का एक टुकडा़ उनकी पोषाक है और लगभ्ग अपने कद जिनता ऊँचा बल्लमनुमा कातिल हथियार जंगली पषुओं और संस्कृत मनुश्यों से रक्षा पाने का उनका प्रमुख साधन है। छह फुट से भी अधिक ऊंचा उनका कद्दावर षरीर किसी षिल्पमूर्ति जैसा मनोहर और सुगठित होगा। मानववंष-विज्ञान और इतिहास की दृश्टि से उनका जो भी स्थान हो, दर्षनीयत ामंे वे बेजोड़ होता है और उन्हें देख कर भय और सम्मान की भावनाएं एकसाथ उत्पन्न होती है। उनके संबंध में उस परे प्रदेष में यह कहावत प्रचलित है कि षेर और मसाई इन दोनों में से कौन अधिक बलवान और क्रूर होता है, यह कहना मुष्किल है।

इस प्राणवान जाति से मिलने का कुतूहल प्रतिपल बढ़ता जा रहा था। महाईयों से मिलने के लिए ही मह नैरोबी जाने का छोटा रास्ता छोड़ कर यह लंबा मार्ग पसंदकिया था। जंगल षुरू होते ही हामरे मजबान ने कार की खिड़की-दरवाजों के कांच चढा़ देने की सूचना दी। कारण यह कि मसाइयोंके इस जंगल में षेरों की बस्ती भी बडी़ संख्या में है। हमारे पास सिर्फ एक रायफल थी और इस आरक्षित वन में उसका उपयोग सिर्फ प्राणरक्षा के लिए ही किया जा सकता था। हम जंगल में बीस मील के करीब आगे बढ़ चुके ोि। मैंने भारत के बरडा़, गी, विध्य और टेहरी के जंगल देखे है। पर इस वन की रौद्रता के सामने आंखें झुक गयी। भयानक सन्नाटा छाया हुआ था। मध्यान्ह का ताप परी जवानी पर था। हमारी कार की आवाज के सिवा और कोई षब्द सुनाई नहीं दे रहा था।

इतने में हमने जिराफांे के एक बहुत बडे झुण्ड को सड़क की एक ओर से दूसरी ओर भागते हुए देखा। अनुभवी इस्माइल ने कहा, ''निष्चित ही षेर पीछे पडा है, वनरा जिराफ यों भागने वाला जानवरी नहीं।' ' षीघ्र ही हारे भय ओर विस्मय की पुश्ट करने वाली दहाड़ सुनाई दी। लेकिन वह षेर भी जिराफों की तरह ही मानों प्राण बचा कर भाग रहा था। देखा तो हाथ में बल्लम िलिए एक तरूण मसाई ने बल्लम तौल कर षेर पर फैंका। हमारी कार कुछ और करीब आ गयी थी। सिंह लड़खडा़या, पर गिरा नहीं। देखते-देखते उस भयानक समाई ने भाग कर अपनी कटार उसकी गरदन में उतार दी। जाने पर खेल कर षेर ने छल्लांग लगायी परन्तु उसे बचा कर मसाई ने बल्लम उसके पेट में झोंक दिया। खूनभरी कटार फिर एक बार षेर के गले में उतर गयी।

आठ-दस विकराल मसाई अपने हथियारों सहित इस खंूख्वार युद्ध को देख रहे थे, पर किसी ने दखल नहीं दिया। सिंह के मरने का विष्वास होते ही बाकी के मसाइयों ने उस जवान को कंधों पर उठा लिया और नाचते-नाचते कुछ गाने लगे। मोटर का दरवाजा खोल कर इस्माइल बाहर निकला। स्वाहिली भाशा का वह जानकार था। उसके पूछने पर एक मसाई ने बताया, ''इस जवान को अब मेरी लड़की से विवाह करने का अधिकार प्राप्त

हो गया। हमारे कबीले में तरूण मसाई जबतक दो षेरों को अपने हाथों से या बल्लम से मार नहीं लेता, तब तक उसे विवाह करने का अधिकार नहीं मिलता।' '

जिंगदीं के लिए मौत का मुकाबला करने वाले इन बहादुरों को देख कर मृत्यु के भय से जीवन को खो बैठने वाले सभ्य समाज के सफेदपोषों का स्मरण हा आया और उन पर बडी़ दया आयी।

आगे बढ़ने पर जंगल की भयानकता तो कम हो गयी। पर मेरे अंतर मंे सन्नाटा छा गया।

60

और जीवनका नषा

कोई पुत्र पिता के नाम से प्रसिद्ध प्राप्त करता है तो कोई अपने बलबूते पर। षहरों की षोभा की बात भी कुछ ऐसी ही होती है। कम्पाला पूर्व अफ्रीका के युगाण्डा प्रदेष की राजधानी है। इसीलिए उसका महत्तव है यह बात नहीं। इस षहर का अपना विषिश्ट व्यक्तित्व है, अपना अलग रूप है। सात पहाड़ियों के बीच में बसा हुआ यह नगर परीकथाओं के सात बहनों के बीच एक भाई के समान रमणीय लगता है। इसके परिसर में प्रकृति ने अपना वरदान दिल खोल कर लुटाया है। दिन ढल चुका हो, रात हुई न हो, और संख्या ने अपना सप्तरंगी आंचल फैलाया हो, तब इस षहर की असली षोभा दिखाई देती है। मानो अस्पश्ट अंधकार में सुखनिद्रा में लीन भोर का सपना। सात पहाड़ियों के उस ओर से उतर कर जब रात्रि के रूप मं कोई ष्यामा, तत्त नवयौवना ष्वेता हास्य कर रही हो। इतने सौंदर्य के बावजूद इस नगर के वातावरण में जीवन की ऊशमा नहीं है। है सिर्फ कारूण्य और विशाद। रात बीत कर दिन निकलता है, जीवन का करवां कुछ आगे बढ़ता है, और दिन डूब कर फिर रात हो जाती है। यही क्रम निरंतर चलता रहता है।

कम्पाला के बाजार में युगाण्डा के आदिम निवासी बागाण्डाओं को देख कर उनसे मिलने की और उनका निकट परिचय प्राप्त करने की इच्छा हई। पर मेरे पा उनकी भाशा का माध्यम नहीं था। किसी मध्यस्थ की जरूरत थी। अतः मैने अपने मेजबान डाक्टर मूलजी भाई पटेल से प्रार्थना की। सोचा कि और कुछ नही ंतो कम से कम उनके नृत्य-संगीत से तो परिचय हो ही जायगा।

डाक्टर साहब तीसेक साल से कम्पाला में रहते है। मेरी इच्छा तुरंत समझ गये। डाक्टर पटेल अत्यंत मिलनसार आदमी है। मेरी उनसे गुजरात में मुलाकात हुई थी। प्रथम भेट में यही भावना हुई थी कि यह आदमी अपने वतन में तो परदेषी के समान है। इका मन कही और बसता है। फिर भी उनकी विलक्षणताओं ने मुझे उनकी ओर आकर्शित किया था। कठिन परिश्रम और अध्यवसाय कर के कठिनाइयों मेंसे मार्ग निकालने का उनका कौषल आदरणीय लगा। आदमी परिश्कृत और असाधारण मालूम किया। धीरे-धीरे परिचय मित्रता में बदल गया। उनके स्नेह सिक्त मन और निष्चल अंत-करण की अधिकाधिक प्रतीति होती गयी। जीवन विशयक उनकी दृश्टि और कल्पनाओं के साथ निकट संपर्क हुआ। विशय के सूक्ष्म स्वरूप् को ग्रहण करके उसके अत्यंत नाजुक अंषों को आत्मसात् करनके की उनकी षक्ति आलौकिक मालूम दी। दुश्टता के प्रति रोश, दीतना की ओर पक्षपात, सच्चाई के लिए आग्रह और पष्चाताप के प्रति क्षमाषीलता ने उनकी अंतरात्मा को संस्कारिता की षुद्धि और सुगंध दी है। कठिन परिस्थितियें में जीवन यापन करने वाला यह मनुश्य इतना अंतर्निश्ठ न होता ताक कम्पाला के विशाद और जड़ता ने उसकी संवेदनषीलता को कभी का तहस-नहस कर दिया होता। सच पूछिये तो डाक्टर साहब से मिलने की इच्छा ही मेरी कम्पाला जाने की प्रधान प्रेरणा थी।

बगाण्डाओं का नृत्य-संगीत देखने की इच्छा व्यक्त करते ही वे मेरे मन की बात समझ गये। उन्होंने षहर से सात-आठ मील दूर जिनरी नामक स्थान पर इसकी व्यवस्था करवायी। हम दोपहर को भोजन करके कबरी दो बजे वहां पहुंच गये। षहर के और भी आठ-दस मित्र साथ थे। कुछ देर में ही एक मोटर-ट्रक में नर्तक-वादक आ पहुंचे। साज़ बजना षुरू हुआ। ढोल पर थाप पडी और दो आदमीयों ने सुर और ताल को जोड़ने वाला संचालन

षुरू किया। चार-छह लोगों का एक गिरोह गाता-बजाता हुआ हमारे सामने आ खडा़ हुआ। हमारे पावांे के पास बैठकर उन लोगों ने ताल-सुर का समां बांध दिया। मालूम हुआ कि मेहमानों का सम्मान करने की उनकी यह प्रथा है।

पास ही एक मंडप बना हुआ था। हम वहां बैठे। आस-पास के प्रदेष से चार-पांच बगाण्डा जमीनदार भी आ गये थे। नांचने-गाने वाले अब जम गये और वाद्य संगीत षुरू हुआ। ताल जमते ही, कमर में मृगचर्म लपेटे एक पुरूश नाचने लगा। उसकी थिरकन देख कर एक स्त्री को जोष आया और वह उसकी स्पर्धा में खडी़ हुई। नृत्यकारों ने पांवों और नितंब के लयबद्ध आंदोलन से ताल के साथ मेल बैठाया और एक संवादभरी गतिषीलता उत्पन्न की। इस नृत्य और संगीत के तंत्र से मैं परिचित नहीं था। फिर भी एक प्राणवान उत्तेजना का अनुभव हुआ।

संगीत के इन ताल सुरों की आवाज जहां-जहां पहंुची वहां-वहां से बगाण्डा स्त्री-पुरूशों के झुंड आने लगे। साथ ही स्थानी यकलाल देषी षराब के तूमडे लिये आ पहुंचे। फिर तो बारी-बारी से मंदिरा और संगती की बेहोषी षुरू हुई। सुर मानों मदमत हो उठे, ताल थिरक उठा और नृत्य फिर से षुरू हुआ। षीघ्र ही ताल की गति ने ऐसा जादू चलाया कि आगन्तुक बागाण्डाओं में से एक पुरूश और एक स्त्री नृत्य में षामिल हुए। ताल-सुर के सुमेल से उत्पन्न गति ने जीवन में छायी हुई जड़ता को झकझोर कर चेतना में कंप जगा दिया। पल भर के लिए प्राण जाग्रत हो उठे। जीवन की मूलगत वीर्यषक्ति संचेतन हो उठी। जीवन के नषे की अद्भूत अनुभूति हुई।

संागीत समाप्त हुआ। ताल ने विश्रांति ली। नृत्यकार भीड़ में मिल गये। पर वातावरण में अब तक सुरों की प्रतिध्वनि गूंज रही थी।

डाक्टर साहब ने मेरा हाथ पकड़ कर चलने को कहा, तब मानों में मूच्छा से जागा।

61

उसे कहां जाना था?

धुमड़ कर घिर आने वाली घनघोर बदली बरस नहीं रही थ। वातावरण स्तब्ध हो रहा था। सामने दूर-दूर तक दिखाई देने वाले लोग के पौधें गुमसुम खडे थे। जांजीबार के हवाई अड्डे पर हम दारेसलाम से आने वाले विमान की राह देख रहे थे। अतः मौसम के इस रूक्ष से हमारा मन उदास हो गया। मनुश्य और पकृति के बीच भाोंं का कैसा मूल आदान-प्रदान चलता रहता ह। परंतु हमारी उदासी अधिक देर तक नहीं टिकी। रिमझिम-रिमझिम वर्शा षुरू हुई औश्र उसके साथ खेलती हुई पपवन की लहरें भी आयी। बयार के झोंके लौंग की मादक खुषबू अपने साथ लाये। पल भर पहले के सुन्न वातावरण में मानों जीवन की बहार आ गयी। बदलियां बरसती जाती थी। और आगे बढ़ती जाती थी। इतने में सागर की ओर से धनष्याम बदलियों का एक नया पंुज आया। वाह, क्या उसकी धीर-मंथर गती थी। र्गात में छंद था और छंद की अपनी छटा थी। वे इस तरह बरसने लगी मानो आपस मेंसलाह कर के आयी हो। उनमें से ष्यामल रंग निचुड़ने लगा। थोडी़ देर बाद वर्शा कम हो गयी। धूसर वातावरण कुछ प्रकाषित हुआ। ऊपर नजर की तो दिखाई दिया कि समुद्र से आने वाला घनसमूह बरस कर, हलका हो कर चला गया। वर्शा थम गयी। लौंग के वन से सुवास ला क रमंद समीर ने वातावरण को महका दिया। उदासी का स्थान आनंद ने ले किया। अंतर और आंखों का आपस में कुछ गुप्त समझौता हुआ।

षीघ्र ही, हम जिसकी राह देख रहे थे वह विमान आ पहुंचा। बडे आत्मविष्वास से वह धरती पर उतरा। हवाई अड्डे पर आये जब विशण्ण थे, उड़ तब आल्ह्ादित। इस आल्ह्ादित में डूबी दृश्टि अदृष्य होत हुए, गहरे हरे रंग के लौंग के झुरमुटों को देखती ही रही। जांजीबार और पेप के द्वीपों के बीच से मार्ग निकालता हुआ जहाज सामने वाले किनारे की ओर उड़ रहा था। मन में रंग था, अंतर में उमंग थी, और अवस्था थी स्पप्न की सी। लौंग की महक पीछा नहीं छोड रही थी। मनमयूर अस्तित्व की धरती र नृत्य कर रहा था। एकाएक जोर से

झटका लगा। हवा के बदलते हुए दबाव को विमान सहन नहीं कर सका था। पर दूसरे ही क्षण सर्रर से ऊँचा उडा़ और फिर ऐ उसने स्वस्थता धारण की। पीछे मुड़ कर देखा तो जांजीबार और पेम्पा के टापू ध्यानस्थ योगियों की तरह आसन जमाये बैठे थे। दृश्टि सामने के किनारे की ओर मुडी़ तो एक अपूर्व चमत्कार देखा। बरसने से पहले, रूंधे हुए हृदय की तरह बोझिल बदलियां देखी थी। बरसने के बाद हल्ी होकर बिखर जाने वाली बदलियां भी देखी थी। पर यह दृष्य तो अदृश्टपूर्व था। निर्मल, निभ्र्रान्त, निस्तेज बदलियां सागर की गहरी नीली अगाध जलराषि पर उतर रही थी। फि, पानी पर पसर कर, अठखेलियां कर के, गहन वारि में डुबी लगा कर, उस पानी का आकंठ पान करके और ष्याम रंग धारण कर के बाहर निकल रही थी। मानों नवजीवन की अपेक्षाओं से अपना अंतर भर कर बोझिल हृदय से गगनविहार करने निकली हों। रास्ते मंे सखियों से छेड़छाड़ होती रही, मनसूबे रचे जाते रहे, अपेक्षाओं का आदान-प्रदान होता रहा। जीवन और यौवन के भार से लचकती हुई उन घनष्याम लावण्यमयी सुरांगनाओं को देख कर हृदय पुलकित हो उठा।

यह सौन्दर्यमूच्छा हुई तब विमान एक सांस से माॅम्बासा की ओर बढे जा रहा था। नीचे हिंद-महासागर की अपार जलराषि सामने अफ्रीका महाद्वीप की विस्तृत धरती और ऊपर अनंत आकाष। प्रकृति के माहतत्वों का कैसा निरूपम त्रिवेणी-संगम! तीनों की विभूति भिन्न-भिन्न। फिर भी एक्य का कैसा अद्भुत साक्षात्कार!

दूर माॅम्बासा दिखाई दिया। इस बंदरगाह को पूर्वी अफ्रीका का प्रवेषद्वार माना जाता है। सागर की संकरी खाडी़ ने माॅम्बासा को तीन ओर से घेर रखा है। अतः वहां से भीतर की आरे जाते समय रेल पुलों पर हो कर गुजरती है। विमान में से माॅम्बासा किसी मध्यवित परिवार के जैसा सुघड़ मालूम दिया। स्टीमर से देखते समय उसका छोटा बंदरगाह जीर्णकाय और अनाकर्शक लगा था जब कि निवास कर के देखने पर वह किसी अतिसाधारण आदमी के जैसा तेजहीन और व्यक्तित्वषून्य मालूम दिया।

करीब पंद्रह रोज वहां रहना हुआ। एक रोज़ षाम को एक मित्र ने होटल में दावत दी। इन उपनिवेषों में अंगरेजों के प्रभाव के कारण कहे या स्थानीय अरब और अफ्रीकी लोगों की पराधीन मनोवृत्ति की देखादेखी कहें, पर यहा बसने वाले भारतीय पाष्चात्य संस्कृति के अनन्य भक्त हो जाते है। अतः दावत में षराब की नदियां बहीं। भोजन के बाद घर जाने को निकले तब तक मेरे साथी की हालत नाजुक हो चुकी थी। फिर भी, सब के चले जाने के बाद उसने दो-चार पेग औरपिये। मेरी बिनती और राय, दोनों उसने नहीं मानी। आधी रात बीते हम उसकी कार में घर जाने को निकले। ड्राइवर था नहीं। वह खुद ही चला रहा था। लड़खडा़ते हुए मोटर में बैठ कर उसने घोशणा की, ‘‘मुझे मेरी अरब माषूका के यहां जाना है। वैसे तो अब कोठा बंद हो गया होगा। पर मेरी पुरानी मुलाकात है। दरवाजा जरूर खोलेगी।’ ‘

अत्यंत आग्रहपूर्वक मैंनें उसे रोकने की कोषिष की और समझाया कि अब सीधे घर चलने में ही सार है। पर वह नहीं माना। मेरी उलझन का पार नहीं रहा। पहले तो मन में आया कि उसे छोड़ कर चल दूं। पर फिर विचार आया कि मित्र को इस हालत में अकेला कैसे छोडा़ जा सकता है। इसके अलावा मैं षहर से अपरिचित और अजनबी था। इस कषमकष में ही मोटर चल दी। गाडी़ जिस तरह स ेचल रही थी उससे बार-बार यही लग रहा था कि कहीं टकराये बिना घर पहुंच जाये ंतो गनीमत समझो।

कुछ देर बाद मैंने विस्मित होकर देचा ा कि गाडी़ मित्र के घर पर ही आ कर रूकी थी। मैंने सोचा कि भगवान ने इसे सुबुद्धि दी। पर साने अपना घर देख कर उसे भी आष्चर्य का झटका लगा। उसे तो उस अरब वारांगना के यहां जाना था। तुरंत कार वापस मुडी़ और हम फिर होटल आ गये। होटल देख कर उसे फिर अचरज हुआ कि अरे, यह तो होटल है। जाना ता कही और है। रूके बिना मोटर फिर घूमी। मैं चितिंत हो उठा। आज निष्चित ही कोई दुर्घटना होगी।

राम जाने उस षराबी के मन में क्या प्रक्रिया चल रही थी, पर थोडी देर इधर-उधर घूम-घाम कर गाडी़ फिर उस के घर आ कर खडी़ हो गई! डसने देखा िकवह तो फिर उसी का घर आ गया! मुझे फिर लगा कि अब की बार तो उसे निष्चित ही सद्‌बुद्धि सूझी है। चलो, राजी-खुषी घर पहुंच गये। मैंने उतरने का प्रयत्न किया। पर उसने क्रोध से गालियां बकते हुए मोटर घुमा दी और हम फिर होटल पर आ खडे हुए। अब उस के गुस्से का पर नहीं रहा। नषे का प्रभाव अभी तक गहरा था। फिर भी मैंने समझाने का प्रयत्न किया कि घर चलो। तुम्हारी तबीयत अच्छी नहीं है। इस तरह घूमने में खतरा है। लेकिन मेरी कौन सुने। उसने मदहोष षराबी के निष्चय से घोशणा की कि मर जाऊंगा, पर जाऊंगा नहीं। ठीक है। मोटर चल दी। गति बढ़ती गयी। दुर्घटनाओं से कैसे बचे, यह तो नहीं कह सकता। पर पहुंचे फिर भी घर ही। अब मेरी सहनषक्ति का अंत हो गया। मैं जबरदस्ती उतर ही पडा़। घसीट कर उसे भी उतारा। कार को आंगन में खडी़ कर के दरवाजा खुलवाया। उसे उसकी पत्नी के सुपुर्द किया और मैं अपने कमरे में जा कर सो गया।

सुबह मित्रपत्नी ने बताया कि वे जाग रही थी और जितनी बार कार आयी उतनी बार उन्होंन उठ कर दरवाजा खोला था। लेकिन दरवाजा खोल कर देखें तो कार नदारद। मैंने उन्हें न जाने क्या-क्या बे-सिर-पैर की कहानियों से समझाना चाहा। पर नारी का मन। समाधान नहीं हुआ। सत्य स्थिति समझ गयी। षायद यह उनका राज का अनुभव हो।

मेरा मन विचार-तरंगों में डूब गया। आदमी षराब में सरावोर था। जाना चाहता था वेष्या के यहां, लेकिन पहुच रहा था अपने घर! करना था कुछ, हो रहा था कुछ। यह कैसी विवषता थी? यह मजबूरी कैसी? यह लाचारी कैसी?

अंतर में एक ही उत्तर सूझ रहा था। श्रद्धा के दीपक का प्रकाष सतेज होता जा रहा था। लगा कि बुनियादी तौर पर तो मनुश्य सच्चा है। पर उसकी अतृप्त वासनाएं और बेलगाम कामनाएं उसे भड़काती है। हवस उसे अंधा बना देती है। उसका परम अंष पामर बन जाता है। मनुश्य सच्चा है, झूठा उसे बनना पड़ता है।

62

किसे मालूम

‘आर.एस.एस. कम्पाला’ ने माॅम्बासा बंदरगाह में लंगर डाला ही था कि पूरे षहर मंे समाचार फैल गया िकइस जहाज से दक्षिणी अफ्रीकी और पुर्तगाली पूर्वी अफ्रीका के कई भारतीय परिवार स्वदेष जा रहे है। हम भी इसी जहाज से बम्बई जाने वाले थे अतः इतने सारे लोगों का साथ रहेगा यह जान कर आनंद हुआ। ‘‘कम्पाला’ ’ ने माॅम्बासा छोडा़ तब तक डेक पर खड़े हुए यात्रियों को दख कर यही लगा कि पूरा जहाज भारतीयों से ही भरा हुआ था। कुछ अंगरेज भी थे लेकिन वे राजपूताने की रियासतों के बीच अजमेर या विषाल सरोवर के बीच के छोटे-मोटे टापुओं के समान नगण्य लग रहे थे। उन दिनों भारतीयों का पूरे पूर्वी और दक्षिणी अफ्रीका से निशकासन हो रहा था। जहां इन परिवारों ने पीढ़ियां गुजारी थी और अपार संपत्ति अर्जित की थी। उन प्रदेषों को छोड़ते हुए उनके मन की चलविचल स्थिति होन स्वाभाविक था। माॅम्बासा दिखाई देता रहा तब तक इस समुदाय के मन में मचने वाली हलचल का षमन नहीं हुआ। हसरत भरी निगाहों से वे षहर के प्रतिक्षण अस्पश्ट होते हुए दीपकों को दखते रहे मानों इस से उनके कुछ आष्वासन मिल रहा हो। फिर ये दीपक भी दृश्टि से ओझल हो गये। ऊँचा प्रकाषस्तंभ भी विस्तृत होत अंधकार में, भूली हुई याद की तरह लुप्त हो गया। उसकी आखिरी रोषनी को एक विषाल तरंग ने अंधकार की सहायता से अपने उदर में गड़प कर लिया। माॅम्बासा छोड़ते हुए हमे भी स्वजन वियोग का सा विशाद हुआ।

दूसरे दिन सुबह वातावरण अधिक जीवंत और उत्साहपूर्ण दिखाई दिया। लोगों ने षायद प्राप्त परिस्थिति से समझौता कर लिया था। एक दूसरे से मिलने की उत्कंठा ने और अब सात दिन यों ही बताने है इस विचार से नये परिचयों और नये स्नेह संबंधों को जन्म दिया। यात्रियों में से कई लोग तो बीस-बीस, पचीस-पसीच साल बाद भारत आ रहे थे। स्वदेष संबंधी बडी़ ही मनोरम और मधुर कल्पनाओं से उनके मन भरे हुए थे। जब वे

भारत से आये थे तब तो देष अंगरेजों की गुलामी भुगना रहा था। आज पूर्णतः स्वतंत्र है। धीरे-धीरे मेल-मिलाप और परिचय बढ़ने लगे, पते-ठिकाने लिखे जाने लगे, नाम-ठाम, जाति-व्यवसाय, रस-उत्साह इत्यादि की पूछताछ होने लगी। जीवन के अनेकविध पहलुओं से संपर्क स्थापित होने लगा।

इनमें से अधिकांष लोग भारत की वर्तमान परिस्थितियों से पूर्णतः या अधिकांष में अपरिचित थे। देष के प्रति स्नेह या ममता की कमी नहीं थी, पर जानकारी अधूरी और भ्रामक थी। कुछ लोग जो दस-पांच साल पहले भारत हो आये थे वे अपनी मुलाकात को बिलकुल कल-परसों की बात मान कर उसे वर्तमान के सही और प्रमाणिक चित्रण के रूप में पेष कर रहे थे। एकाध वर्श पहले ही भारत आ कर अपने कार्य में निराष हो कर लौट जाने वाला कोई व्यापारी अत्यंत कटुता से नयी सरकार की नयी नीतियों और नयी व्यवस्थाओं की आलोचना करता तो बाकी लोग बडे निभ्रम में पड़ जाते।

इस पूरे मजमें में मेरी दृश्टि एक व्यक्ति पर स्थिर हुई। यह महाषय लगभग चैबीस-पचीस वर्श बाद दक्षिणी अफ्रीका से स्वदेष लौट रहे थे। पढाई तो सिर्फ अंगरेजी की तीन-चार किताब तक ही हुई थी। पर अपने परिश्रम से ऊपर उठे थे। दक्षिणी अफ्रीका में गांधीजी ने सत्याग्रह में भाग ले कर जेल भुगत चुके थे।

ट्रान्सवाल की किसी जंगली बस्ती में उनका बहुत बडा स्टोर था। युरापियनों के संपर्क के कारण अंगरेजी अच्छी बोल लेते थे। वेषभूशा पाष्चात्य और अत्याधुनिक। उनके तौर-तरीके से ऐसा लगता था कि सामने वाला आदमी उनकी प्रतिभा से प्रभावित होना ही चाहिए। ऐसा निःसंषय आत्मविष्वास उन्हें है। उनके पूरे बर्ताव से एक प्रकार की सुनिष्चित आत्मश्रद्धा टपकती थी यद्यपि उस में अभिमान की मात्रा नहीं बे बराबर थी। उनकी ओर के मानसिक आकर्शण के कारण स्वाभाविक रूप से उनके परिचय बढा। मालूम हुआ कि भारत आने की तैयारी वे साल भर से कर रहे थे और स्वदेष में ही स्थायी होना चाहते थे।

यहां तक तो सब ठीक था। पर उनकी बातचीत से उनके अंतर की कुछ सुशुप्त आषा-आकांक्षाओं की भी झलक मिलता। उन्हें कहीं से ऐसी विष्वसनीय जानकारी मिल थी कि भारत में आजादी की लडाई में जेल हो आने वाले बहुत से लोग अषिक्षित या अर्धषिक्षित होने पर भी केवल किसी नेता या मंत्री के साले, बहनोई, दामाद, भतीजे या भान्जे होने के बलबूते पर कांग्रेसी सरकार के बड़े-बडे आहदों पर विराजमान है। इस वर्ग के एक महाषय अमुक राज्य में मंत्री है, दूसरे अमुक देष में राजदूत है, तीसरे फलां मंत्री के सचिव है, चैथे अमुक कंट्रोल विभाग के नियंत्रा है, पांचवे किसी प्रान्तीय समिति के अध्यक्ष है, छठे . . . उनकी सूची काफी लंबी थीऔर इन सारे स्वानामधन्य महापुरूशों के संबंध में उन्हें व्योरेवार जानकारी भी थी। उन्हें पूरा विष्वास था कि स्वदेष की धरती पर पांव रखते ही उनका भी इसी प्रकार कहीं न कहीं डौल बैठ ही जायगा।

सातवें रोज जहाज के कप्तान ने फलक पर सूचना लगवायी कि जहाज अगले दिन दोपहर को बम्बई पहुच जायगा। सुबह से ही यात्रियों के उत्साह की सीमा न रही। लंबे समय के बाद स्वदेष लौटने वाले लोगों के हृदय का कुतुहल और स्नेह आसानी से समझ में आने वाली बात थी। उन सज्जन ने भी षायद इसी अवसर के लिए खास तौर से सिलाये हुए षुद्ध खादी के कपड़े पहन लिये। सूट तो सूट, टाई भी खादी की थी। किष्तीनुमा खादी की टोपी! इन लिबास से वे अपनी अभिलाशाओं के जैसे ही विचित्र दिखाई दे रहे थे। इतने में छह महीने पहले ही भारत का चक्कर लगा जो वाल वह व्यापारी उन से मिला। खादीधारी सज्जन को देखते ही उनके फिकरा कसा ''वाह साहब, क्या कहने! टाप तो षायद सीधे ही कहीं के मंत्री या राजदूत बनने चले है।' ' इस व्यंग्य ने उनकी सुशुप्त आकांक्षाओं को झंझोड़ दिया। फूले हुए गुब्बारे में से जैसे हवा निकल गयी। पर बाह्य रूप से विस्मित हो कर उन्होंने पूछा: ''क्यों भाई, खादी पहनना कोई गुनाह है क्या?'' व्यापारी ने कहा, ''गुनाह तो नहीं है, पर स्वातय-प्राप्ति के बाद खादी के पहनावे के साथ बहुत से हेतु जुड़ गये है, और खादीपहनने वाले सिद्धांतवादी होने के बजाय ढोंगी और स्वाथी हो गये है। लोग खुले आम यह इल्जाम लगाते है।

आज के भारत में खादी षुद्धि या स्वाथासाधन का प्रतीक नहीं बल्कि बुद्धिलता और स्वार्थसाधन की नकाब मानी जाने लगी है। मानो न मानो आपकी मरजी है। पर मैं ठीक कर रहा हूं। बिलावजह गलतफहमी पैदा होगी और व्यर्थ ही किसी कठिनाई में फंस जाआंेगे . . .।' '

इतना कह कर वह व्यापारी तो हंसता हुआ चला गया। हम भी अपने काम से लगे। बम्बई पहंुचने पर देखा कि इन महाषय ने खादी के कपडे उतार कर अगरेजी लिबास पहन लिया था।

इस नये वेष-परिवर्तन के पीछे उसकी क्या कामना थी . . . किसे मालूम।

63

मृत्यु और जीवन

सन् 1935। आष्विन महीने की षुद्ध चतुर्दर्षी। षांतिनिकेतन ने बनारस, इलाहबाद, लखनऊ होता हुआ आगरा गया था। गुजरात विद्यापीठ के पुराने मित्र प्रा॰चन्द्रभाल जौहरी के भाई के यहा ठहरा था। चन्द्रभाल ने परिचय दिया था कि भाई पुराने क्रान्तिकारी है। मनुश्य को पहचानने की दृश्टि रखते है। हम मिले। दोनों को आनंद हुआ। परिचय बढा। स्नेह उत्पन्न हुआ। मित्रता हुई। बाद में तो हम रात-दिन साथ रहने लगे।

दूसरे दिन पूर्णिमा थी। रात तो ताजमहल देखने जाना तय हुआ। जौहरी बोले कि बारह बजे तक तो बडी भीड होती है। अतः मध्यरात्रि के बाद जाना निष्चित हुआ। मेरे अंतर में कुतुहल था। अपरिचय जन्य अपेक्षा थी। ताजमहल देखेंगे . . . । . . . कैसा होग जाजबीबी का रौजा? काव्य के जैसा अद्भुत-रम्य? स्वप्न के जैसा अस्पश्ट-संुदर? मैंने कल्पना की लगाम खींची। अब तो साक्षात् ही देखेंगे।

. . . और ताजमहल देखा। षाहजहां जैसे दिलदार षाही प्रियतम का प्रेमतर्पण। . . . मुमताज की स्मति का अषरीरी प्रतीक। अत्यंत रक्ष मनुश्य को भी पिघला कर काव्यमय बना देने वाला प्रीतिपंकज। पुरूश के हृदय का करोडो वर्श पुराना अतंनाद। . . . नारी की अभीप्सा का परम सौभाग्या। जड़ में छाया हुआ चैतन्य। संगमरमर मंे निहित प्रेम का मूर्तस्वरूप।

तो, ताजमहल देखा। . . . क्या है उसका जादू? वैसे देखिये तो संगेमरमर का निर्जीव मकबरा। फिर यह काव्यसौन्दर्य काहं से आया? मानव मन की कल्पन में से? मनुश्य के अंतःकरण की संवेदना से? . . कवियों की बात समझ में आयी। कविता बाहर नहीं है। कवि के हृदय-मन में है। उसके अंतर्मन में से काव्य-सरिता का मूल स्रोत है। इस प्रकार का स्पश्टीकरण करता हुआ मैं ताज के चबूतरे पर जा खडा हुआ। भीड़ धीरे-धीरे छट रही थी। पास ही यमुना बह रही थी। आकाष निरभ्र था। चांदनी दिल खोल कर बरस रही थी। षरद पूर्णिमा काा चंद्र कितना निकट और कितना प्रिय मालूम देता है। और उसके चेहरे पर का स्मित? मानो अपनी प्रियतमा षर्बरी को अपने-आप मंे समा कर ज्योत्सना रूप से प्रकट करने का आनंद झलक रहा हो। न मालूम कितनी देर तक उसे अनिमेए नेत्रों से देखता रहा। . . . बस देखता ही रहा।

वापस लौटने का समय हुआ। चांदनी में नहाता हुआ काव्यसौंदर्य पीछे छूट गया। अंतर को अनुभूति साथ रही। पत्थर की पगडंडियों पर हो कर बाग से गुजर रहे थे। एक ओर सरो वृक्षों की कतार थी। दूसरी ओर पानी से भरे हुए होज़। देखा कि एक पेड की छाया जीवित हो उठी है। साये में दिखाई दिये दो षरीर। एक स्त्री और एक पुरूश। दोनों एक-दूसरे में मस्त। बाहर की दुनिया से बेखबर। दिन और रात के समान, महाकाल के दो प्रतिनिधि एक बन कर जीवन का साक्षात्कार कर रहे थे।

षाहजहां और मुमताज के षरीर तो कब्र में पडे है। पर प्रेम की भावना अमर है। व्यक्ति नाषवान है ... पर वातावरण चिरंतन है।

(2)
योरप-मात्रा हो चुकी थी। इटली के जिनोआ बंदर से लाॅइड-ट्रीएस्टीनो कंपनी का ‘विक्टोरिया’ जहाज पकड़ना था। हम एक रोज पहले ही जिनोआ पहुंच गये थे। पूरा षहर और बंदरगाह घूमे। षाम के पांच बजे होगें। मैं थाॅमस कुक के दफतर में हमारे समान की व्यवस्था करवाने गया। न मालूम किस संदर्भ में मैं कह बैैठा कि इटली के अन्य षहरों की तुलना में जिनोआ मंे दर्षनीय कुछ भी नहीं है। सिर नीचा किये काम करनेवाल कुक कंपनी का एक कर्मचारी क्षणभर के लिए तो मेरे सामने देखता रहा। फिर बोला, ‘‘आपने यहां की दफ़न-भूमि देखी है?’’ मैंने ना कही। उसके मुख पर स्मित छा गया। बोला, ‘‘यह स्थान परी दुनिया में मषहूर है इससे सुंदर कब्रगाह षायद पूरे संसार में नहीं होगी। विचार आया कि ष्मषान-भूमि ही देखने जाना है, तो उसमें भी सौंदर्य देख सकने वाले इस रसिया जीव के साथ हो जाना चाहिए। उसने स्वीकार कर लिया। आधो घंटे बाद, काम सामप्त करके हम निकले।

रास्ते मंे विचार आने लगे। ष्मषान के सौंदर्य का आस्वादन कर सकने वाले रसिक रोमन अब भी इस दष में मौजूद है। ष्मषान! जहां षरीर की अंतिम निषानी मिट जाती है देह का विलय हो जाता है। क्या ऐसा स्थान भी सौंदर्यसिक्त हो सकता है? उस स्थान पर तो जीवन का अंत हो जाता है। वहां सौंदर्य कैसे जी सकता है। उत्तर मिला-क्यों नहीं। सिर्फ देखने की दृश्टि चाहिए। खैर, विचार चलते रहे और हम निर्धारित स्थान पर जा पहंुचे।

यह षमषान था? . . . यह कब्रगाह थी? . . . नहीं, नहीं . . . यह तो जीवन की बगिया थी। इस चमन में तो जिंदगी आराम कर रही थी। जीवन भर की हाय-हाय से थके हुुए षरीर जम्नदात्री धरती की गोद में विश्राम कर रहे थे। अद्भुत, अपूर्व और अनुपम षांति का साम्राज्य छाया हुआ था। पंच-सहाभूत अपने-अपने मूल स्वरूप को प्राप्त करके उल्लसित हो उठे थे। इस मौन का उत्सव भी कैसा सजीव था! सिर्फ अंत हो चुकने वाले जीवन को ही यहां षंाति मिलती थी? नहीं, नहीं . . . अंत की ओर अग्रसर होने वाले जीवों की भी यहां थकान उतर रही थी। उन्हें सांत्वना मिल रही थी। अंतषांति की अविकृत अनुभूति हो रही थी। मृत्यु के आंगन में जीवन का ऐसा महेत्सव कैसा? जहां अंत की कल्पना की हो वहीं से पुनरारंभ कैसा? उत्तर मिला, यही तो आदि और अंत की सनातन लीला है। अंतःकरण आष्चर्यमुग्ध हो गया।

संध्या उतर रही था। षांति गहन हो उठी। प्रकाष छिपता जा रहा था। अंधकार फैल रहा था। इनते में एक युवती आयी। हम बैठे थे उस के पास वाली कब्र पर उसेने फूल चढा़ये। कब्र का चुंबन किया और फिर उसे आलिंगन में ले कर मानो उस पर लोट पडी। कुछ देर बाद उठ कर फिर उस निर्जीव पत्थर को चूमा। फिर खडी़ होकर मानों उस में लेटने वाले जीव को एकटक निरखती री। मृत्यु को पूज कर जीवित रहने वाली यह साक्षात् कविता बिना विषेशण की संज्ञा जैसी स्वयंपूर्ण और स्वयंसुंदर मालूम दी। उसने किस की आराधना की? कौन भगवान उस कब्र के भीतर लेटा हुआ था?

(3)
योरप के सब देषों में इंगलैड मुझे सब से अधिक प्रिय है। क्यों, यह नहीं कह सकता। 1948 में हम न्यूयाॅर्क के संसार के सब से बडे जहाज ‘क्वीन एलिजाबेथ’ द्वारा साउदॅम्पटन आये तब घर लौटने जैसा आनंद हुआ। वत्सराज वाॅटरलू स्टेषन पर आ गये थे। लंदन पहुंचकर तो ठीक बम्बई पहंुचने जैसा अनुभव हुआ। योरप की पहली यात्रा के दरमियान छह महीने लंदन रहने का योग आया था। तभी से इस षहर से एक प्रकार की ममता हो गयी है। पिकेडिली सरकस, रीजेन्ट स्ट्रीट के मोड़, हे मार्केट का व छाटा सा रेस्तरां, मार्बल आर्च के पास लायन्स काॅर्नर हाउस का तहखाना, 28 नंबर ग्रेट कंवरलैड स्ट्रीट का हमारा वह पुराना मकान, ट्रेफाल्गर स्केवेयर के कबूतर, स्ट्रेंण्ड की सेक्सनी जूतों की वह पुरानी दुकान, नैष्नल आर्ट गेलरी में मेरी प्रिय बैठक, दस श्रोताओं के सामने भी हजारों की भीड़ को संबोधन कर रहा हो ऐसे आवेष से बोलने वाला हाइड-पार्क का वक्ता, पास ही खडे होकर उसे अत्यंत निर्विकार भाव से सुनने वाला स्थितप्रज्ञता की साक्षात् मूर्ति जैसा सवा-छह फुटा पुलिस का सिपाही, डिसन्स के उस प्रसिद्ध उपन्यास में से सजीवन हो उठी हो ऐसी लिकन्स इन फील्ड की वह छोटी सी,

पुरानी क्यूरिओं की दूकान, अनेक अजनबी स्त्री-पुरूशों को परिचित बनाने वाला पिकेंडिली सरकस का ट्यूब स्टेषन, चेलसी का वृक्षों के झुरमुट से छाया प्रसिद्ध कविपथ, वेस्टमिन्स्टर एबे में अलग पड़ जाने वाल कवियों का कोना, इन सब के साथ एक स्वाभाविक स्नेह संबंध जुड गया था।

ऐसे घर-जैसे लंदन को छोड़ कर एक बार एडिनबरा जाना पडा। वहां के हॅरिएट वाॅल्ट काॅलेज में कुछ काम था। मैं एडिनबरा पहली बार ही जा रहा था। स्टाॅटलैंड की उस परातन राजधानी को देखने का कुतुहल सार्थक हुआ। द्वितीय महायुद्ध के समय वहां के समुद्रमुख फॅर्थे आॅफ फॅर्थे के पास हजां लाॅर्ड माउण्टबेटन के षुद्धपोतों को पीदे हटना पडा था, वह स्थान देखा। पहाडी पर के राजमहल के आंगन में रोज सुबह बजने वाले विष्वविख्यात स्टाॅटिष बेंगपाइप के बेण्ड की सुरावली सुन कर हृदय प्रसन्न हो गया। हेरिएट वाॅट काॅलेज के मुद्रण विभाग के प्रधान मि. रस्टेल की बातों-बातों में मालूम पड़ गया कि मैं अंगरेजी कविता, नाटक और उपन्यास का षौकिन हूं और कभी-कभी कलम भी चला लेता हूं। वे मुझे वहां का एक प्रसिद्ध स्थान दिखाने ले गये।

सर वाॅल्टर स्काॅट के एक उपन्यास मंे जिस कब्रगाह का वर्णन है, उस में जाकर हम एक बेंच पर बैठ गये। सामने एक विरक्त-सा एकाकी वृक्ष खडा था। कहा जाता है कि स्काॅट घंटो उस वृक्ष को ताकते हुए बैठे रहते थे। वह उन्हें किसी मित्र के समान प्रिय थज्ञ। स्काॅट संबंधी प्रचलित कहानियों और उनके विविध प्रेम-संबंधों की चर्चा होती रही। इतने में कब्रिस्तान का संरक्षक एक बाल्टी में पानी लिय वहां से निकला। हमारी बेंच के पास ही एक छोटा-सा पौधा था। उसने पानी उसकी क्यारी में डाल दिया और पौधे को हाथ से सहलाया। हम दे। कर उसने कहा, ''यह पौधा जब बडा वृक्ष हो जायगा, तब इसका रूप देखियेगा। यह सामने वाला पेड़ मेरे दादा ने लगाया था उस तरफ जो वृक्ष लहरा रहा है वह मेरे पिता ने बोया हुआ है।' ' मैंने पूछा, ''आप क्या वंष-परंपरा से यहा के रक्षक है?'' गौरवपूर्ण स्मित से उसने उत्तर दिया: ''जी, हां। हमारा सौभाग्य है। हमारे परिवार को इस पर नाज़ है।' ' हंसता-हंसता वह आदमी चली गया।

जहां मृत्यु को जमीन में गाडा जाता है वहां जीवन की कोपली की परवरिष करने का सुभग कार्य करने वाल इस पुरूश के सामने मेरा मस्तक झुक गया। स्काॅटलैंड के ख्यातनाम स्त्री-पुरूश जहां चिरनिद्र ले रहे थे वहीं यह अनजान सहृदय पुरूश भी अंतिम विश्राम करेगा। इस विचार से मानवजाति की एकता और समानता आंखों के आगे तैर गयी। जीवन में आष्वासन का अनुभव हुआ। मन को षंाति मिली।

(4)
कम्पाला से चलने का दिन पास आता जा रहा था। जहां मित्र बसते हो उस षहर से भी दोस्ती हो जाती है, ममता हो जाती है। अतः जिस प्रकार मित्र से बिछुड़ने का रंज होता है उसी प्रकार स्थान छोड़ने से भी मन उदास हो जाता है। मेरी उदासी का रहस्य डाक्टर मूलजीभाई पटेल पहचान गये। उन्हें मालूम था कि केवल मनोरंजन से इस आदमी का विशाद दूर नहीं होग। अतः उन्होंने अपने भाई से कहा कि मुझे युगाण्डा के राजा कबाकाआंे की ष्मषान भूमि दिखाने ले जायें। संुदर जहग है। मुझे पंसद भी आयेगी और मेरी गमगीनी भी कुछ कम होगी।

डाक्टर अस्पताल चले गये और रमाकान्त और दो-तीन मित्रों के साथ हम गये दफ़न-भूमि देखने। ष्मषान या कब्रिस्तान के उल्लेख मात्र से मुझे कभी घबराहट नहीं हुई। न कभी क्षणिक वैराग्य हुआ। हां, विचार आते है, उसादी भी होती है, पर दुःख कभी नहीं हुआ। कबाकाओं की ष्मषान भूमि देखने के लिए खास परवाने की जरूरत पड़ती है। रमाकान्त ने वह प्राप्त कर लिया था। यह स्थान एक ऊँची पहाडी पर है। वैसे तो पूरा कम्पाला नगर ही पहाड़ियांे पर बसा है। मुख्य द्वार के सामने हम कार से उतर पडे। पूरे कब्रिस्तान के चारों और ऊँची चहारदीवारी है। मुख्य द्वारा के अंदर जाते ही एक विषाल मैंदान जैसा आंगन दिखायी दिया। इस आंगन के चारो तरफ छोटी-छोटी कोठरियां बनी हुई थी। हमारे जाते ही इन कोठरियों में से चार-पांच स्त्रिया निकल आयी।

फिर हम गुम्बद वाले बडे कमरे में गये। कब्र यहीं पर है। कमरा अत्यंत सादा था। जमीन थी तो गोबर से लिपी हुई पर अत्यंत साफ-सुतरी। दिवारें वल्कल से ढकी हुई थी। वल्कल का अपना अलग ही वातावरण होता है। अतः कब्रिस्तान हाने पर भी किसी महशि के आश्रम का भास हा रहा था। रक्षक ने कौन सी कब्र किस राजा की है इत्यादि ऐतिहासिक जानकारी दी। वे स्त्रियां आ कर कब्रों को प्रणाम कर के इर्द-गिर्द बैठ गयी। रक्षक से पूछने पर मालूम हुआ कि वे मृत की विधवा रानियां है। कबाका राजकुल की प्रथा है कि राजा की मृत्यु हो जाने पर उसकी विवाहित स्त्रियां षव के साथ कब्रिस्तान में ही रहती है। आंगन की कोठरियां इन्हीं के लिए थी। विधवा रानियां यहां आने पर सामान्य स्त्रियां बन जाती है और आमरण यहीं रहती है।

मन विशण्ण हो गया। विचार आया कि संस्कार ओर विवेकबुद्धि ष्मषान भूमि में भी जीन की परवरिष कर सकती और उससे आनंद प्राप्त कर सकती है। इसके दर्षन कई अन्य ष्मषानभूमियों में हो चुके थे। इसके विपरीत, अज्ञान और अविद्या ष्मषान मे जिये जाने वाले जीवन को कितना अर्थहीन और भयावह बना सकते है, इसका अनुभव आज हुआ। स्थानएक सा ही था। संयोग भी सामन थे। सिर्फ जीने वालों की दृश्टि अलग थी, उनका जीवनदर्षन अलग था। जीवन के प्रति स्वस्थ दृश्टि असहाय मनुश्य को कितना गौरवषाली बना सकती है। यह देख था। आज यह भी देखा कि स्वस्थ दृश्टि का अभाव उसे कितना दरिद्र, अनाथ और बेगार ढोने वाला का पुरूश बना सकता है। विशाद ने गला पकडा़। पर तुरंत ही होष आया कि परमता और पामरता दोनों ही मनुश्य की सृश्टि है। उसमें से क्या चुनना, यह उसके हाथ की बात है।

64
हाजी वज़ीर मुहम्मद

योरप से लौटे एक महीना भी नहीं हुआ था कि महाराजा पन्ना के साथ पटियाला जाने का योग आया। वापसी मं अंबाला से फ्रंटियर मेल पकड़ कर दिल्ली लौट रहे थे। सन 1938 का नवंबर का महीना था। ठंड पड़ना षुरू हो गया था। हम षाम को खाना खा कर पटियाला से कार में निकले थे। भोर होने से पहले ही अंबाला से मेल पकड़नी थी। महाराजा पटियाला की षाही खातिरदारी की सुगंध स्मरणपट पर फैल रही थी। इसी सुरूर में हाने अंबाला छोडा़। सहारनपुन पहंुचने तक मैं सौ गया। पहले दर्जे के बड़े डब्बे मे हम सिर्फ दा यात्री थे। मैं और ए.डी.सी. भगवंतसिंह। एकाएक दरवाजा खटखटाने की आवाज सुन कर मैं जाग गया। लगा कि महाराज का कोई सेवक बुलाने के लिए या कोई सूचना देने के लिए आया होगा। पर दरवाजा खोल कर देखा तो बक्सा बगल में बदाये एक बुजुर्ग मुसलमान को खडे हुए पाया। वह अंदर आ गया। गाडी़ चल दी। झांक कर देखा तो सहारनपुर स्टेषन था।

वृद्ध के डब्बे में आते ही वातावरण सुगंध से महक उठा। मैंने पूछा, ‘‘कहिये बडे मियां, इत्र बेचते हो?’’ उत्तर में सिर्फ ‘जी, हुकम’ कह कर उसने सलाम किया। यह ‘हुकम’ कहने की अदा से अंदाज लगा कर मैंने पूछा, ‘‘राजपूताने में कहां के बाषिंदे हो?’’ मियां को आष्चर्य हुआ। बोला, ‘‘सरकार, अपने कैसे पहचाना कि बंदा राजपूताने का बाषिंदा है?’’ मैंने हंस कर कहा, ‘‘आपने ‘हुकम’ जो फरमाया।’ ’ बुढऊ खुष हो गये। नींद मेंरी उड़ चुकी थी। वृद्ध ने अपना बक्सा खोला तो सुवास की सघनता और भी व्यापक हो गयी। कातिक के प्रभात की गुलाबी ठंड थी। वातावरण की मादकता ने भगवंतसिंह को भी जगा दिा। इत्रफरोष एक के बाद एक इत्रों के नमूने पेष करने लगा। छह बजे मेरठ पहुंचे तब तक तो बक्से की सिर्फ आधी चीजे देखी जा सकी थी। इसका कारण था। इत्र के नमूने के साथ कोई न कोई कहानी भी जुड़ रही थी। हर इत्र के साथ उसकी बनावट, बुनियाद, उपयोग या प्रभाव के बारे में कोई न कोई लतीफा वह अत्यंत रसपूर्वक सुनाता जाता था। मोतियों के इत्र ने नवलगढ की महारानी साहिबा किस तरह मस्त हो उठी थी। हिना के इत्र ने दीनापुर की बेगम साहिबा का अपने खविद के साथ का अबोला किस प्रकार चुटकियों में समाप्त कर दिया था, और मिट्टी के इत्र के प्रभाव से षिवराजपुर के युवराज ने मेघनगर की राजकुमारी को कैसा विव्हल कर दिया था इत्यादि। लतीफे सत्य घटना

की सी आस्था और अदा से वह सुनाये जा रहा था। दिल्ली पहुंचने तक तो उसने हमें विभिन्न प्रकार के इत्रों और उनके साथ जुडी़ हुई कहानियों में आकंठ डुबो दिया।

इस बुजुर्ग मुसलमान ने अपना नाम बताया-वज़ीर मुहम्मद। आगरे के किसी कदीम खानदान का वह वंषज था। उस के पूर्वज मुगल बादषाहों के अत्तार थे। अतः ज्ञान विज्ञान उस के परिवार में वंषपरंपरा से चला आ रहा था। आजकल वह राजा-महाराजाओं और नवाज-जागीरदारों को इत्र बेच कर जयपुर में एक बहुत बडे परिवार का गुजारा करता था। मुझे यह वृद्ध उस बीते हुए जमाने के अवषेश जैसा लगा। उसके बर्ताव में इतनी तहज़ीब, बातों मं इतनी खानदारी, आखों में इतनी मुरव्वत और ह्रदय मं इतनी दिलदारी दिखाई दी कि मुझे वह उस गुजरे हुए जमाने की पुरलिहाज इन्सानियत के जीते-जागते पुतले जैसा लगा।

देहली पहंुचने से पहले, गाजियाबाद स्टेषन पर उतर कर मैंने महाराज से उसका जिक्र किया और उनकी अनुमति से दो सौ रूपये का इत्र खरीदा। वह खुष हा गया। अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए उसने मुझे मोगरे के इत्र की एक खूबसूरत षीषी भेंट दी। देहली स्टेषन पर वह उतर गया। हम इलाहबाद की गाडी़ से बैठ गये।

वज़ीर मुहम्मद द्वार भेंट दी हुई षीषी में सिर्फ बढ़िया किस्म का मोगरे का इत्र ही नहीं था, बल्कि उस वृद्ध सज्जन की आत्मा की सुगंध भी भरी हुई थी। मोगरे की ‘रूह’ के साथ मनुश्य की ‘रूह’ का अद्भुत मणिकांचन योग उस बिल्लौरी षीषी में सुरक्षित था। न जाने क्यों, पर मेरे मन में यह बात घर कर बैठी और बाद के जीवन में जब-जब खुषी या खुषकिस्मती के प्रसंग आये, तब-तब उस खुषी को महकाने के लिए मैं इसी इत्र का उपयोग करता। आज उस बात को लंबा अरसा हो चुका है। पर उस छोटी सी, नाजुक नाजनीन सी षीषी के साथ मेरी स्मृति में वजीर मुहम्मद की याद और मेरी सुभागी संवेदना की एक मस्तभरी तवारीख जुडी़ हुई है।

(2) दस साल बाद

आठ-दस साल में जैसे ज़माने की सूरत ही बदल गयी। उसका थोडा़ बहुत प्रभाव मेरे ऊपर भी पडा़। हाल मे ही अमरीका से लौट रहा था। मेरी आंखे, मेरी वाणी, मेरा बर्ताव, सब में से मानों कुछ खो गया था। बडौ़दा छोड कर मैं बम्बई आ गया था। यह षहर तो आमूल बदला हुआ दिखाई दिया। उसकी पुरानी गरिमा के कहीं दर्षन नहीं हुए। विगत विष्वयुद्ध के परिणाम-स्वरूप पूरी दुनिया में मानवता का पतन हुआ है, पर युद्ध के साथ प्रत्यक्ष संबंध न आने पर भी उस गिरावट का जितना असर इस देष पर पडा़ उतना अन्यत्र षायद ही पडा़ हो। युद्ध की लपट में जल कर राख हो जाने वाले देषों में भी नहीं। खानदानी और संस्कृति दोनों का जिसमें नितांत अभाव था ऐसा एक बहुत बडा़ वर्ग युद्धोत्तर आर्थिक और नैतिक आलोडनों के परिणाम स्वरूप सतह पर आ गया है। येनकेन प्रकारेण धन कमाने को ही जीवन का चरम उद्देष्य मानने वाले इस वर्ग के लोगों ने समाज के स्वरूप को आज इतना बदसूरत और घिनौना बना दिया है कि अब उसमें सिर्फ दुर्गंध की ही कसर रह गयी है। युद्धपूर्व काल में अनायास और स्वाभाविक रूप से मिल जाने वाली जीवन की छोटी-मोटी खुषियां आज दुर्लभ हो गयी है। स्वार्थ और अवसरवाद की घिनौनी मिलावट ने मनुश्यता को नितांत सत्त्वहीन बना दिया गया है। सुबह से उठ कर रात तक दिल खोल कर हंसना भी मुहाल हो गया ह।

ऐसी विशय परिस्थिति में एक रोज़ एक स्नेहभरा पत्र मिला। पढ़ कर मन का गिला जाता रहा, रंज दूर हो गया। पत्र के विष्वास ने मन के विशाद को मिटा दिया और ह्रदय पर आनंद की मोहिनी डाल दी। बहुत दिनों के बाद अंतर्वल्लरी प्रफुल्लित हुई। मनुश्यजाति पर श्रद्धा फिर से जमने लगी। इस संवेदना को सुगंधित बनाने के लिए मैंने उस रोज़ वज़ीर मुहम्मद वाला इत्र लगाया। ऐसा लग रहा था कि आज इस स्वार्थी भूमि पर कोई बड़भागी दिन ऊगा है। अंतरात्मा प्रसन्न हो तो पूरी दुनिया रंगीन दिखाई देती है। समुद्र की लहरें मतवाली लगती है,

आकाष मनोहर दिखाई देता है। हृदय में भी दिलेरी और दिलदारी की भावनाएं जगती है। ऐसा लगता है मानो पूरी दुनिया हमारी खुषी में हिस्सा बंटा रही हो।

षाम को कामकाज से निवृत्त होकर, मरीन-ड्राइव जाने के लिए ताड़देव से भी रूट की बस में बैठा। सुबह का आनंद अब तक चल रहा था। गम की कोई घटना नहीं हुई थी। होंठों पर अब तक मुस्कराहट थी। बस चापाटा पहुंची। कुछ लोग उतरे, कुछ चढे। एक वृद्ध के प्रवेष करते ही पूरी बस में सुगंध छा गयी। सब यात्री उसकी ओर देखने लगे। वृद्ध मेरे बराबर वाली सीट पर ही आ कर बैठा। गोद में गहरे लाल रंग के कपडे में लपेटी हुई छोटी सी पिटारी थी। तेज़ खुषबू फैल गयी। मैंने सहज से पूछा, ''मिया जी, इत्र बेचते हो?'' जबवा मिला, ''जी, हुकम।' '

चेतना को एक झटका लगा। उसकी आवाज़, उसका पहनावा, यह 'हुकम' कहने की अदा, सब स्मृति के तारों को झंझोड़ने लगे और वह दस साल पीछे पहुंच गयी। मेरी हमदर्दी देख कर उसने एक कागज़ का पुरजा मुझे दिखाया। मैं जिस मकान में ठहरा हुआ था उसी के चैथे तल्ले पर रहने वाले एक प्रसिद्ध सेठ का नाम लिखा था। वृद्ध बम्बई में अजनबी था। उस पते पर जाना चाहता था। मैंने उससे कहा, ''आप मेरे साथ ही उतर जाना। मकान दिखा दुगा।' ' वृद्ध खुष हो गया। ''बडी़ मेहरबानी।' ' धन्यवाद के षब्द स्वाभाविक रूप से उस के मुंह से निकल पडे। पूछने पर नाम बताया, हाजी वज़ीर मुहम्मद। मेरी खुषी का पार रहा। पर बस में बैठे उसका प्रकटीकरण संभव नहीं था।

मरीन ड्राइव पर हम उतर गये। वृद्ध को मैंने सहारा दे कर बस से उतारा। फिर धीरे-धीरे दस साल पहले सहारनपुर और देहली के बीच रेल में हुई मुलाकात और इत्र खरीदने की बाद याद दिलायी। वृद्ध पिटारी नीचे रख कर मुझ से लिपट गया। सुबह हृदय की प्रसन्नता से भर देने वाला पत्र मिला था। स्मृति की सुवास को सजीवन कर देने वाला मोगरे का इत्र लगाया था। और षाम को प्राचीनता की मूर्तिमंद याद जैसे वज़ीर मुहम्मद से मुलाकात हो गयी। और यह आदमी भी कैसा था? जीवन की षिला पर अनुभव के बट्टे द्वारा पिसी हुई तहजीब की हिना के इत्र जैसा खुषबूदार और हृदयस्पर्षी। मैं उसे अपने मित्र के घर ले गया। अत्यंत आग्रह-पूर्वक मैंने वृद्ध को खाना खिलाया। भोजन के बाद बिजली की नीली रोषनी में उसने अपनी प्रियतमा जैसी पिटारी को खोला और वही पुराना क्रम षुरू हुआ। एक-एक इत्र का नमूना पेष होने लगा और साथ ही अनोखी अदा और दिलकष तहजीब वाली कहानियों के ताने-बान बुने जाने लगे:- ''हां, तो हुजूर' ' . . . परसाल कानपुर में इस इस्तम्बोली गुलाब ने वह गजब ढाया कि . . .''

रात के दस बज गये। मैं पराये घर ठहरा हुआ था। वृद्ध से कहा, ''बातों में रात हो गयी। सेठजी अब तो सा गये होंगें।' ' वृद्ध ने जवाब दिया, ''अजी गोली मारिये। सेठ-वेठ सब ठीक है। आज इन्सानियत कहा बची है? बम्बई में आ कर तबीयत खट्टी हो गयी लोगों को देख कर। अच्छा हुआ आप मिल गये। मेरा बम्बई आना बन गया!'' मैंने कहा, ''वजीर मुहम्मद, हज करने कब गये थे?'' उसने आष्चर्य से पूछा, ''आपको कैसे पता चला?'' ''बस में आपने अपना नाम जो बताया था हाजी वज़ीर मुहम्मद।' '

वृद्ध हंस पडा़। उसकी आंखे हंस पडी, होठ हंस पड¬े, पूरा चेहरा हंस पडा़। बोला, ''हां, हुजूर, हज नसीब में थी। कर आया तीन साल पहले। अब कयामत के दिन के लिए तैयार हंू।' ' वह संभाल कर पिटारी बंद करने लगा। मेरे मित्र ने थोड़ा बहुत इत्र खरीदा। मैंने दस साल पहले की षीषी उसे दिखाई। अभी कुछ बूंदे बाकी थी। वृद्ध की बाछें खिल गयी। मेरे मना करने पर भी उसने अत्यंत आत्मीयता और दिलदारी से षीषी को फिर मोगरे के इत्र से भर दिया। मैं उसे बस तक छोड़ने गया। मेरा हाथ उसने अखिर तक अपने हाथों में दबाये रखा। बस आयी और उसे लेकर चली गयी। अंत तक उसकी आंखे हंस रही थी। बस के अदृष्य होने तक मैं वहीं खडा़ रहा। कुरते पर मोगरे का इत्र महक रहा था और हृदय में महक रही थी हाजी वज़ीर मुहम्मद की याद।

इत्र और मिट्टी का तेल

सर्दी के दिन थे। एक रविवार को सवेरे मै ंऔर डाक्टर अली उनके यहां बैठे, ग्रामोंफोन पर रवीन्दनाथ के गीतों के रिकार्ड बजा रहे थे। डाक्टर मुस्तफा अली के सबंध में किसी एक ही विषेशण का प्रयोग कर उनके समग्र व्यक्तित्व का वर्णन करना मुष्किल बात है। इसका कारण यह कि जिस प्रकार उनके विचारों में अनेक विसंवादी भावों का सुभग मिश्रण हुआ है। गुलाबी स्वभाव में भी बहुत सी परस्पर-विरोधी बातों का सुरभ्य मिलन हुआ है। गुलाबी स्वभाव पर तेज मिजाज बहुरूपी मेधा पर बालसुलभ निष्छलता, बहुश्रुत भाशाषास्त्री और विद्वान पर संगीत के गजब के आषिक, नाम और धर्म से मुसलमान पर रंग-ढंग और बर्ताव से हिंदू, तुलनात्मक धर्मो के अध्यापक पर किसी भी धर्म के प्रति श्रद्धा का नितांत अभाव, मधुर व्यक्तित्व पर बहुत अधिक समय तक सहन न की जा सके ऐसी विलक्षण आदते, पुरूशों मं अप्रिय नहीं, पर बालकों और स्त्रियों के ता जन्मजात मित्र, ऐसे विसंवादी लक्षणों का समावेष करने वाले डाक्टर मुस्तफा अली वाकई अल्लाह मियां द्वारा फुरसत के क्षणों में निर्मित जीव थे। आप गमगीन हों, तो कभी आप को क्षण भर में खुष कर दे, तो कभी और भी अधिक रंजीदा कर दे। आप आनंदित हो, तो कभी आप के आनंद को अनेक गुना बढा़ दे, तो कभी आपको घसीट कर दुख दर्द से डुबा दे। जिंदगी का जानकार और मनुश्य का पारखी यह आदमी बडा़ खुषमिजाज और पुरमजाक था। लतीफों का तो उसके पास मानो अक्षय भंडार था।

रविन्द्रानाथ के गीत बज रहे थे। साथ ही उन पर डाक्टर अली के रसमय विवेचना और व्याख्या चलर ही थी। संसार का कोई भी विशय हो, उस पर मल्लिनाथी किये बिना उन्हें चैन नहीं पड़ता था। सहसा उन्हें एक नया लतीफा सूझा। रवीन्द्रनाथ ने अपनी एक पुस्तक किसी ‘विजया’ को अर्पण की है। बस अली को बहाना मिल गया। बोले ‘‘रवीन्द्रनाथ के जीवन में विजया नाम की किसी स्त्री का अस्तित्व नहीं था, यह तो निष्चित है पर मैंने बुढ़ऊ की प्रीति का एक नाजुक स्रोत ढूंढ निकाला है। वे जब दक्षिणी अमरीका गये थे तब ब्राजिल की सुविख्यात कवयित्री विक्टोरिया से उनकी घनिश्ठ मैत्री हुई थी यह बात सभी जानते है। वह विक्टोरिया ही इस पुस्तक में उल्लिखित विजया है।’ ’ उनकी यह गवेशणा किस तथ्य पर आधारित थी, यह तो मालूम नहीं हो सका, पर इस विशय पर उनकी बाग्धरा अविराम रूप से बहने लगी।

इतने मं दरवाजे पर दस्तक हुई। रविवार के दिन डाक्टर अली ने तो किसी से मिलते थे, कहा बाहर जाते थे। खटखटाहट सुनते ही वे चिड़चिडा़ कर चिल्ला उठे, ‘‘हू इज़ देर टूडे? जवाब में फिर किसी ने दरवाजा खटखटाया। हार कर अली ने दरजवाजा खोला। दो आदमी दिखाई दिये। उन्होंने कहा िकवे केरोसिन राषन विभाग के इन्पेक्टर है और जांच करने के लिए आये है। एक क्षण में अली के मुंह पर से आक्रोष और झाल्लाहट के भाव गायब हो गये ओर उनका स्थान सौजन्य और आतिथ्य न ले लिया। दोनों की आवभगत कर के वे उन्हें भीतर लाये। किसी स्त्री से भी अधिक माधुर्य और लोच से बातचीत की। मिट्टी के तेल की तंगी का भयानक वर्णन कर के वे अपने कोटा में प्रतिमास एक गेलन की वृद्धि करवा ली और बदले में दोनों को चया का एक-एक प्याला पिला का विदा किया।

अली का यह रूपांतर और केरोसिन के प्रति उनकी आसक्ति देख कर मुझे आष्चर्य हुआ। मैंने जानना चाहा कि यह नया नाटक किस लिये किया गया था। उत्तर में वे मुझे हाथ पकड़ कर अपने सोने के कमरे में ले गये। पलंग पर बिछी दरी खिसका कर, नीचे छिपा कर रखे हुए केरोसिन के दो डिब्बे दिखाये और बोले, ‘‘भाई, जापान बढा़ चला आ रहा है। कुछ दिनों में केरोसिन मिलना बिलकुल बंद हो सकता है। बममारी के भय से रात को बिजली बंद कर दी जाती है। ऐसे में मेरे जैसे आदमी क्या करे? मैं राज को ग्यारह बजे खाना खाने वाला ओर दो-तीन बजे तक पढ़ कर सोने वाला आदमी। अंधेरे में तो मेरा दम ही घुट जाय। अतः मरी नजर में मिट्टी के तेल की कीमत आजकल घी से भी ज्यादा हो उठी है। इसी लिए इन्सपेक्टरों की खातिर करनी पडी़ और केरोसिन पर संक्षिप्त भाशण देना पडा़। कम्बख्त कहीं यहां आ कर देख लेते तो गजब हो जाता।’ ’

लेकिन इतने मे ही किसी ने फिर से दरवाजा खटखटाया। अली फिर झल्ला कर चीेख उठे ''हू इज़ देर टुडे?'' जवाब में फिर दस्तक। वे और भी ज्यादा चिडचिडा़ कर बोले, ''इस मुल्क के लोग भी साले परले किसरे के अहमक होते है। बोलने में नया आफ़त पड़ती है? दरवाजा ठोक-ठोक कर जीना हराम कर देंगे। अंगली कहीं के!'' दरवाजा खोल कर देखा तो एक इत्रफरोष ने झुक कर सलाम किया। कहने लगा, ''हजूर, कुछ इत्र लाया हूं। लखनऊ, कन्नौज और बिजनौर की बेहतरीन चीजें है। आप . . . ''बस, अली का पारा सातवें आसमान पर चढ़ गया। चीख उठे, ''यह इत्र बेचने का जमाना है भले मानस? आपको मालूम नहीं कि जंग छिडी़ हुई है। आजकल केरोसिन पर भी राषन हो रहा है। . . . इत्र ले कर आये है बड़े आदमी . . .। मैं पूछता हूं, मिट्टी का तेल है?''

बेचारा बुजुर्ग इत्रफरोष सिटपिटा गया। किसी से इत्र के षौकीन के रूप में अली की ख्याति सुन कर आया होगा। उन्हें इत्र का षौक था भी। पर इस समय उन्होंने धडा़म् से दरवाजा बंद कर दिया और कुरसी पर बैठ कर खिलखिला का हंस पडे।

बाद में मुझे मालूम हुआ कि अली ने एक कनस्तर मिट्टी का तेल काले बाजार से बाईस रूपये में खरीदा था। पर उनकी दूरअंदेषी व्यर्थ सिद्ध हुई। जापान पीछे हट गया। राज को बिजली भी मिलने लगी और सब मिला कर अली के पास दो कनस्तर केरोसिन बच गया। कई दिनों तक तो उन्होंने डब्बों का प्राणों से भी अधिक जतन किया। लेकिन फिर उन्हें कलकत्ता जाना पडा़। जाते समय दो मित्रों को एक-एक डिब्बा सौगात के रूप में दे गये। कहने की अवष्यकता नहीं कि उनमें ऐ एक मेरे भी हिस्से में आया।

66

गुलाबी बुलबुल

जीवन में कभी-कभी योगायोगा का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण होता है। अपेक्षित बाते होती नहीं और अनपेक्षित हो जाती है। कुछ रोज पहले ऐसा ही अनुभव हुआ था। मैं उन दिनों बंबई रहता था। मरीन ड्राइव पर बाॅम्बे क्लब के बस-स्टाप से सुबह नौ बजे 'सी' रूट की बस पकड़ कर फोर्ट में जाना मैरा निम्यक्रम था। मैं यथासंभव नौ बज कर पांच मिनट वाली बस पकड़ता। षाम को करीब सात बजे उसके सामने एक विचित्र दिखाई देने वाले आदमी से मुलाकात होती। कभी-कभी हम एक साथ बस में बैठते। कभी मैं बैठता और वह रह जाता तो कभी वह भाग कर बस पकड़ लेता और मैं रह जाता। आँखों का परिचय बढ़ने लगा। कभी-कभी आंखों से ही मौन वार्तालाप भी होने लगा। बस मं एक ही बात को ले कर हम दोनां एक साथ हंस पड़ते या दोनों किसी बात पर एक साथ्ज्ञ आष्चर्य व्यक्त कर उठते। इस प्रकार मूक सान्निध्य घनिश्ठ होता गया। बस-स्टाप पर खडे हम दोनों अनमेश नेत्रों से सागर को देखा करते थे वह समानधर्म भी उजागर हो गया। लेकिन इतनी निकटता के बावजूद बातचीत का मौका कभी नहीं आया।

धीरे-धीरे यह आदमी मुझे विचित्र के बजाय विलक्षण लगने लगा। औरों से भिन्न और असाधारण। व रोज भड़कीले रंगो वाला नया बुषषर्ट पहनता। पतलून बुषषर्ट से बिलकुल विसंवादी रंग की हाती। बाल लंबे और उलझे हुए पर दाढीमूछों की रोज सफाईदार हजामत। गोरे चेहरे पर उस्तरे की नीली झांई साफ चमकती रहती। चेहरे की परिपक्ता से स्पश्ट मालूम देता था कि उम्र चाली को पार कर चुही है। पर आंखे बच्चों की सी चंचल, चमकीली और जिज्ञासु। रंगढंग षैषव को छोड़ने को तैयार नहीं। कंठ हमेषा मधुर ढंग से कुद गुनगुनाता रहता। चुटकियां ताल को संभालती रहती। कभी-कभी आरोह-अवरोह के साथ हाथ ऊपर-नीचे उठ जाते तो कभी सम पर स्थिर हो जाते। कभी कोई तान विद्युल्लता-सी चमक जाती। कौन होगा यह विलक्षण पुरूश? पर पूछा कैसे जाय? किस से पूछा जाय? यह षहर है बंबई। लोग अत्यंत सभ्य और संभ्रान्त। पष्चिमी रस्मोरिवाज के कायल। अपने पडो़सी के सबंध में भी अनजान और लापरवाह। यहां किसी को किसी से कोई सरोकार नहीं, कोई मतलब नहंी, सब अपने आप में मस्त। भद्र लोगों ने इस भीड में दूसरों के विशय में जिज्ञासा व्यक्त करने वाले की गणना गंवारों में हो सकती है।

लेकिन मैंने खतरा मोल लेने का निष्चय किया। मन में निष्चय किया कि दूसरे रोज़ वह बस-स्टेण्ड पर मिलेगा तब हिम्मत कर के अवष्य बातचीत करूंगा। दूसरे दिन नियत समय पर मैं बस-स्टाॅप पर पहुंचा। वह भी हाजिर था। एक पंजाबी स्त्री भी बस की राह देखते हुए खडी थी। बस आयी। सिर्फ एक आदमी की जगह थी। कतार में मेरा स्थान पहला उसका दूसरा और पंजाबी महिला का तीसरा था। क्षणार्थ मे हम दोनों ने एक साथ एक ही निर्णय किया। दोनों सरक कर एक ओर हो गये और महिला को जाने दिया। बस चली गयी। बातचीत का बहाना मिल गया। मालूम हुआ कि यह रहस्यमूर्ति और कोई नहीं, बम्बई के अंतराश्ट्रीय ख्याति वाले बेरिस्टर झाबवाला थे। बम्बई सी॰आई॰डी॰ के कानून विशयक सहलाहकार, फौजदारी कानून के अनेक प्रकाणिक गंथो के रचयिता, भारतीय षास्त्रीय संगीत के निश्णात षौकीन, उत्तम गायक, बेजोड़ हास्यरसिक, अद्वितीय लतीफागो और मानवता के सहृदय उपासक।

एक रोज हम नित्य नियामाुनसार चैपाटी जाने के लिए मरीन ड्राइव के बस स्टाॅप पर खडे थे। झाबवाला गुलाबी बुष-षर्ट और बसंती पतलून पहने हुए थे। मेरे साथा बातें करते-करते भीमाकौस के सुरों की फुहार उडा़ते जाते थे, सागर की तरंगों का सौंदर्य पीते जाते थे और चारों तरफ फैले हुए मानव समुदाय में से किसी को चुन कर मार्मिक पर दंषरहित विनोद करते जाते थे। इतने में एक नौजवान ने अपनी मोटर रोक रक हमें आमंत्रित किया। अपरिचय के बावजूद हमने इस आमंत्रण को स्वीकार किया। बदले में झाबवाला ने उस अपरिचित युवक को अपनी मादक मुस्कराहट की कई तरंगों का उपहार दिया।

उन दिनों स्वर्गीय भातखंडे जी की जयंती के उपलक्ष्य में भारतीम विद्याभवन में रोज संगीत-समारोह होता था। रात को मैं अपने मित्र बाबूभाई के साथ विद्या भवन की मजलिस में षरीक हुआ। बेरिस्टर झाबवाला का मधुर कंठ मालकौस राग अलाप रहा था। सार्जिदे बजा रहे थे, श्रोतागण मुग्ध हो कर सुन रहे थे। रसिक गायक के अभिजात्य ने सब के मन पर मोहिनी डाल रखी थी। सदा गुनगुनाते बुलबुल को चहकते हुए देख कर हृदय आनंद से भर गया।

एक रोज नित्य-नियमानुसार सुबह नौ बजे बस-स्टाॅप पर खडा़ था। बस -स्टाॅप से सटी हुई षेटो-मरीन नामक षही इमारत के आंगन में कुछ लड़के गुल्ली-डंडा खेल रहे थे। देखा कि बच्चों के साथ बेरिस्टर झाबवाला भी खेल में मस्त हो रहे थे। उनकी मस्ती देखने में मैं एक बस चूक गया। उसी मकान की चैथी मंजिल पर वह रहते थे। उस मकान के ही क्या, उस पूरे इलाके के लोग उन्हें पहचानते थे। मुहल्ले के बच्चे तो उनके मुरीद थे। लेकिन इन सब बातों से बेखबर झाबवाला खेल में डूबे, बच्चों के साथ बच्चे बने हुए थे।

इतने में प्रसिद्ध फिल्म अभिनेत्री नरगिस स्टूडियो से आ पहंुची। वह भी उन दिनों उसी मकान में रहती थी। उसे देखने के लिए दस-बीस लोगों का मजमा सदा फाटक के इर्द-गिर्द मंडराया करता था। लेकिन आज वे सारे लोग झाबवाला का खेल देखने में इस कदर डूबे हुए थे की नरगिस कार से उतर कर अंदर चली गयी और किसी को मालूम भी नहीं हुआ। लेकिन जाते-जाते वह कलावती हंसती हुई कहती गयी, ‘‘वल्लाह, क्या गुलाबी आदमी है।’ ’

67

अफलातून

फागून की पूर्णिमा की रात थी। होली की ज्वालाएँ बुझ गयी थी। मुहल्ले के लोग चैक में एकत्र हो कर, बुझती हुई होली के चहुँ और बैठे गपषप कर रहे थे। चैगान में एक बोर हम बच्चों का खेल चल रहा था। हमारा पक्ष अपेक्षाकृत कमजोर था। सिर्फ दो ही लड़के ऐसे थे जो विरोधी पक्ष वालों का मुकबला कर सकते थे। हमारा दांव पूरा हुआ। अब विपक्षियों की बारी थी। हम उनमें से किसी को पकड़ नही पाये। आठ-दस मिनट बीत गये। हम अधीर और उतावले हो उठे, पर किसी तरह जुगत लग रही थी। इतने में मेरी बारी आयी और मैने भाग कर

उस्मान को पकड़ लिया। उस्मान विरोधी पक्ष का नेता था। उसके पकड़े जाने पर विपक्षियों का हौसला पस्त हो गया। पटापट लड़के पकड़ाई में आ गये। खेल पूरा हुआ।

अब हमने दूसरा खेल पूरा किया। पक्ष वही कायम रहे। पहले दाँव में विरोधी पक्ष ने गढ़ संभाला और हमने हमला षुरू किया। मुख्य मोरचे पर उस्मान हिरन की सी चपलता से हमें रोक रहा था। लेकिन पांचेक मिनट बाद उसकी नजर बचा कर मै भीतर दाखिल हो गया। मोरचेबंदी के टूटते ही गड़बड़ी मच गयी और हमने किला सर कर लिया। तीन-चार मिनट में ही दांव पूरा हो गया। इस के विरूद्ध उनके दावं में हमने उन्हें आधे घंटे तक रोके रखा। इसके बाद खेल समाप्त हो गया। सब बच्चे गुड़ चने और गुड़धानी पर पिल पड़े। उस्मान क पास कुछ नही था। मैने उसे अपने हिस्से में से आधा भाग दे दिया। वह खुष हो गया। स्नेह का यह मूक आदान-प्रदान हमारी गहरी दोस्ती की बुनियाद बन गया। इस के कई दिनों बाद उस्मान ने मुझे बताया कि होली की रात को वह जानबूझ कर मेरी पकड़ाई में आ गया था। और गढ़ का मोरचा तोड़ने देने में भी उसका मेरे प्रति स्नेह ही कारणभूत था। बस, तब से हमारी दोस्ती पुख्ता हो गयी। मै और वह अभिन्न मित्र बन गये।

उस्मान की अम्मा को हम मरियम खाला कहते थे। वे मेरी मा ॅ की सहेली थी अतः हम उन्हें मौसी मानते थे। उनके घर में भयानक दारिद्रता था। उस्मान के पिता षुक्रवार की पैठ में भेड़ बकरिया ॅ बिकवा देने की दलाली करते थे। लेकिन इस से पेट का जुगाड़ भी मुष्किल से हो पाता था। कुछ आमदानी पतंग के मौसम में हो जाती थी। रहमान चाचा के कनकौवे पूरे षहर में मषहूर थे। एक बार बाजार में उनकी किसी और दलाल से मारपीट हो गयी। उसने उनके पेट में छुरा झां ेक दिया । दूसरे रोज उनके मृत्यु हो गयी। उस के बाद तो दारिद्र्ध की भीशण छाया उस परिवार पर छा गयी। मरियम खाला लोगों के कपड़े सी कर पेट भरती। उस्मान का स्कूल का खर्च मा ॅ दे देती थी। तब हम पांचवीं कक्षा में पढते थे। मा ॅ को भी उस्मान बहुत अच्छा लगता था। कभी कभी वह मेरे पुराने कपड़े भी उसे दे देती। इसी प्रकार लस्टम-पस्टम गाड़ी चल रही थी।

एक बार माँ की तबियत आच्छी नही थी। षाम को कई मेहमान भोजन करने आने वाले थे। घर में आटा नही था। मा ॅ की आटा पीस सकने की हालत नही थी। बिजली की चक्किया उन दिनों थी नही। अतः मैने चार-पांच सेर गेहूँ पीस देने का वीड़ा उठाया। चक्की का ठीक ठाक कर के मै बैठ ही था कि उस्मान आ पहु ॅचा। उसने मुझे उठा दिया और देखते देखते आटा पीस डाला । उसके बाद तो ऐसी प्रथा सी पड़ गयी कि घर के अनेक कामों में वह मा ॅ की सहायता करने लगा। कोई काम पड़ते ही मा ॅ मुझसे पहले उसे याद करती। मेरी और उसकी दोस्ती भी दिनोंदिन गाढ़ी होती जा रही थी। इधर उनकी गृहस्थी भी कुछ संभली। पिताजी मरियम खाला के स्वत्व को धक्का पहुंचाये बिना सहायता करते रहते। उस्मान मरियम खाला का इकलौता बेटा था इतना ही नही, वह उनके अरमानों और आषाओं का एकमात्र सहारा था। बड़ा जिंदादिल। ताबूत के दिनों में वह फकीरी धारण करता, सवील पर पानी पिलाता, हैदोस-दूला में भाग लेता, और कत्ल की रात को मुहल्ले के ताजिये का पहरा देता। मुहर्रम के जुलूस में नगाड़ा बजाने का काम भी उसी के जिम्मे था। ताल का पक्का था वह।

उस्मान सुंदर आकर्शक, कद्वावर और मिलनसार लड़का था। पर उसकी चाल में पुरूश की स्थिरता के बजाय स्त्रियों की सी लचक थी। उस की आंखों में नर की तेजस्विता के बजाय नारी की मोहकता थी और उसकी आवाज में पौगंड की कर्कषता के स्थान पर किसी मुग्धा की सी मृदुता थी। हम छठी कक्षा में आये तब तो उकसी चाल में और भी फर्क मालूम दिया। चलते समय कमर लचकने लगी, आंखों में लज्जा का सा भाव दिखाई देने लगा और चेहरे पर नखरों का खेल षुरू हुआ। उस उम्र में इन लक्षणों का अर्थ मेरी समझ में आया हो यह बात नही; पर मुझे यह परिवर्तन अत्यंत अप्रिय और विस्मयजनक लगता। मुझे कुछ विचित्रता का बोध अवष्य हुआ, पर मेरा नासमझ मन कुछ पहचान नही पाया।
उस दिन बटसावित्री का व्रत था। मुहल्ले की सुहागिन स्त्रियां बटपूजा के लिए जा रही थी। माँ भी पूजा की थाली लिये निकलीं। उस्मान सामने ही मिल गया। उसने माँ के हाथ से पानी भरा तांबे का लौटा ले लिया। और

उनके उसके साथ ही लिया। दोपहर की ग्यारह बजे मा ॅ पूजा कर के लौटी तब वह खाली बरतन उठा कर उन्हीं के साथ वापस आया। उस रोज मा ॅ ने आग्रह कर के उसे हमारे यहां ही खाना खिलाया उस रात को मैने एक अचरज देखा।

रात के आठके बजे मै बड़ी मौसी के घर से लौट रहा था। हमारे मूहल्ले के दक्षिण में एक ओर पीपल का बहुत बड़ा पेड़ था। मैने देखा कि अंधेरे में कोई वहां चक्कर लगा रहा है। किंवदन्ती थी कि उस पीपल पर भूत का निवास है। अतः पहले तो मै डर गया। पर फिर कुछ हिम्मत कर के पास जा कर देखा तो मालूम दिया कि हाथ में कच्चा सूत पकड़ उस्मान पीपल को फेरे लगा रहा था। मुझे देख कर वह झेंप गया। मैने पूछा, ''यह क्या हो रहा है?'' उŸार में वह मुझसे लिप्ट गया और रो पड़ा। उसकी आंखों से बहने वाले आंसू मेरे कंधे पर गिरने लगे। थोड़ी देर तक तो वह सुबकता रहा। फिर मैने उसकी पीठ ठोंक कर सांत्वना भरे स्वर में पूछा तब गद्गद कंठ से उसने जबाब दिया, भैया में अगले जन्म मै औरत बनना चाहता हूं। मुझे तुम्हारें जैसा षौहर चाहिये। इस लिए इस पेड़ की पूजा कर के कच्चे धागे से एक सौ आठ फेरे लगा रहा हूं।

' ' पर पगले, यह तो पीपल है। बड़ नही है। ''मुझे और कुछ सूझा नही इस लिए जो मुंह में आया सो कह बैठा।

' ' तो क्या हुआ? पीपल तो बड़ से भी ज्यादा पाक होता है। आज सूबह तेरी मा ॅ ने बताया था कि किसी भी पवित्र पेड़ को सूत के एक सौ आठ फेरे बांधने से स्त्रियों को मनचाहा पति मिल सकता है। बोल, बनेगा न मेरा षौहर अगले जन्म में?'' उस्मान मुझसे फिर लिपटने लगा।

इस दरमियान मैने कुछ स्वस्थता प्राप्त कर ली थी। कहा, '' उस्मान घर चल। तू क्या पागल हो गया है? यह तो स्त्रियों का व्रत है ! मर्दो का इस से क्या वास्ता ?''

' 'पर भैया, . . . मंै . . . मै . . .'' चाहने पर भी वह कुछ बोल न पाया। मै उसे हाथ पकड़ कर जबरदस्ती घर ले आया। हमारे यहां ही उसे खाना खिलाया। समझा बुझा कर रात को बहुत देर से घर भेजा। तब तक उस की आंखों से आंसू नही थे। मैने मा ॅ से सब बातें कहीं। पर उसने सुना-अनसुना कर दिया। पूरी रात मुझे नींद नही आयी।

इस के चार-छह महीने बाद एक रोज सुना कि उस्मान घर छोड़ कर भाग गया है। मरियम खाला को सब ने आष्वासन दिया कि अभी आ जायगा। जायगा कहाँ ? पर खाला तो मानो वह मर गया हो इस तरह छाती फाड़ कर रोने लगी। दिन, महीने और बरस बीतते गये, पर उस्मान वापस नही आया। उसका पता ही नही लगा। उसके जाने क तीन साल बाद ठीक उसकी सालगिरह के दिन मरियम खाला भी इस दुनिया से चली गयी।

इस के पांच-छह वर्श बाद हम एक बार ताजियों का जुलूस देखने गये थे। मै षायद मैट्रिक की कक्षा मै था। हमारे परिवार का नियम था कि मुहल्ले का ताजिया गुजर न जाय तब तक रूके रहना और ताबूत पर रेवड़िया वरसा कर ही घर लौटना। चांपानेर दरवाजे पर खुषालदास काका के मकान की ठत पर से हम ताबूत का जुलूस देख रहे थे। हर साल का हमारा यही नियम था। खुषालदास काका जाति से तो मोची थे। पर नैश्ठिक कबीरपंथी औश्र परम भक्त थे और पिताजी के अभिन्न मित्र थे। मुहर्रम के जुलूस के दिन वे दूकान बंद रख कर कुसलमान भाइयों के इस त्यौहार के प्रति अपनी सद्भावना व्यक्त करते। तावूत उठे। पहले सरकारी ताजिया निकला। उसके बाद सेना का ताजिया। उसके बाद और। हम ताजिये देखने में और उनकी ऊंचाई बनावट और कला-कारीगरी की तारीफ करने में मषगुल थे। हैदोस-दुले बहार पर थे। बाघ बने हुए लोग सचमुच के बाघ होने का दिखावा कर रहे थे। हमारे एक सैयद काका कागज के ऊंट का मुखौटा ओढ़ कर और पांवों में घुंघरू बांध कर नाचते हुए जा रहे थे। इतने में हमारे मुहल्ला का ताजिया आया। हम नीचे उतर आये। मा ॅ ने भिष्ती को

दो अने दे कर मषक छुड़वाई और इमाम हुसैन की प्यासी रूह को याद कर के ताजिये को सलाम किया। हमने रेवड़ियाॅ लुटायीं।

इतने में एक जवान मुसलमान लड़की ने आ कर भिष्ती को चवत्री दी और मषक छुडवाई। उसका चेहरा कुछ परिचित मालूम दिया। ध्यान से देेखने पर स्मृति जाग्रत हुई। मै चिल्ला उठा, ''उस्मान!'' लड़की हमारे पास आयी। पर वह लड़की नही थी। स्त्रियों के कपड़े पहने हुए उस्मान था। उसने माॅ के पांव छुए। मुझसे लिप्ट पड़ा। इतने में पिताजी भी नीचे आ गये। उस्मान ने लजाते षरमाते उनके भी पांव छुए। परंतु इतने में ही पांस सात मुसलमान हिजड़ों का गिरोह आ पहुंचा और उस्मान को हमारे बीच में से करीब-करीब छीन कर ले गया। फिर हैदोस दूले की भीड़ का ऐसा रेला आया िकवे सब आंखों से ओझल हो गये। उस रात को पीपल के फेरे लगाने वाली उस्मान की मूर्ति किसी भी तरह दृश्टि पट पर से नही हटीं ।

(2)

एक, दो, . . . पांच, . . . दस, . . . साल गुजरते ही गये। जहां तक याद है सन 31 की बात है। पांन्डीचेरी में श्री अरविंद-आश्रम में लंबा सयम गुजार कर मै वापस आ गया था। एक साप्ताहिक-पत्रिका का संपादन करता था। हमारी जाति की मासिक पत्रिका का संचालन भी मेरे जिम्मे था। बराबर याद है कि गरमी के दिन थे। मै पत्रिका के दप्तर मै बैठा कुछ लिख रहा था कि चपरासी ने आ कर सूचना दी कि कोई मुझसे मिलना चाहता है पर अंदर आने से इंनकार कर रहा है। यह खबर लाने वाले लड़के के मुख पर एक प्रकार के अनाकलनीय हास्य की लहरें उठ रहीं थी जिन्हें वह बड़ी मुष्किल से रोक पा रहा था। मै कुछ समझ न सका। बाहर जा कर देखा तो मेरे आष्चर्य और आनंद की सीमा न रही। उस्मान था। गले में ढोलक। साथ में एक और जनखा साथी। ढोलक साथी के हाथ में दे कर वह मेरे साथ भीतर आया। मैने उसे स्नेहपूर्वक साथ की कुरसी पर बिठाया। पर उस्मान बिलकुल बदल गया था। उस की आंखों में लज्जा, कोमलता या कोई भी अच्छा भाव नही रहा था। कोरी निर्लज्जता झलक रही थी। उसकी आवाज न पुरूश की, न स्त्री की, बल्कि कुछ भयावह और कर्कष हो उठी थी। जीवन के संघर्श ने कोड़े मार-मार कर उस के चेहरे पर दुःख और वेदना की कभी न मिटने वाली रेखाएं खींच दी थी। पान खा-खा कर उसके चमकीले दांत गंदे और कुरूप हो गये थे। उसकी पुरी हस्ती में से मरी हुई मानवता की दुर्गंध आ रही थी-कुचले हुए अरमानों की बदबू फैल रही थी। उस से मिलकर मेरी आत्मा हाहाकार कर उठी। उसे भीतर तो ले आया, पर दोस्ती का दावा करने में षर्म आने लगी।
चलते समय उसने कुछ रूपये मांगे। मेरे पास उस सयम पाॅच सात रूपये थे, दे दिये। उसके जाने के बाद मै काम कर ही न सका। पूरा अस्तित्व विशाद में डूब गया। रात को नींद भी नही आयी। नजर के सामने उस्मान की ही मूर्ति तैरती रही। पीपल के पेड़ को सूत लपेटने वाला उस्मान, . . . अगले जन्म में स्त्री के अवतार की कामना करने वाला उस्मान, . . . मेरे सख्य की वांछना करने वाला उस्मान।

उसके बाद मैने बडौदा छोड़ दिया। बम्बई चला आया। एक वर्श षंातिनिकेतन रहा। फिर पांच साल तक पत्रा रिसायत में नौकरी की। धूमधाम कर सन 41 में वतन लौट आया। 1943 के फरवरी में एक दिन षाम को छह बजे दप्तर से घर जा रहा था। गली के नुक्कड़ पर एक मुसलमान पनवाडी की दूकान थी। पानवाला उस्ताद रमजान खाॅ षरीफ आदमी था। उसके यहां पुत्रजन्म हुआ था। इस खुषी में पांच-सात हिजड़े उसकी दूकान के सामने गीतों की रंगत जमा रहे थे। मेरी नजर गिरोह के ढोलक वाले पर पड़ी और वहीं स्थिर हो गयी। वह उस्मान ही था। मुझे देखते ही उस की आवाज गले में ही अटक गयी। हाथ ढोलक पर से ऊपर उठ गये। गाने के रंग में भंग पड गया। उसने आ कर सलाम किया। पूछा ''भाई कैसे हो' ' मैने कहा, ''अच्छा हुआ उस्मान। ''हमारी इस बातचीत से पानवाले उस्ताद के अचरज का पार न रहा। भीड़ के लोग बारी बारी से मुझे और उस्मान को घूरने लगे। कुछ कानाफूसी भी होने लगी। मैने उस्मान को अपने नये दप्तर की जगह दिखा दी और कोई काम हो तो अवष्य आने को कहा।

इस के बाद उस्मान चार-छह महीने में कभी-कभी आने लगा। मुझसे मिलकर उसे बहुत खुषी होती और थोडी देर बैठ कर चला जाता। परंतु जब जब मै उसे देखता तब तब यही भावना होती िकवह जीवन का एक एक सोपान उतर कर अनवरत मौत की दिषा में आगे बढ़ रहा है। एक रोज मै मुख्य रास्ते की गाडी मोटरों की भीड़ से बचने के हेतु से, पिछवाड़े के रास्ते से दफतर जा रहा था। ग्यारह साढे ग्यारह बजे होंगे। मस्जिद के सामने उस्मान दिखाई दे गया। उसे देख कर मै साइकिल से उतर पड़ा। वह एक अंधे भिखारी का हाथ पकड़ कर उसे सड़क पार करवा रहा था। मै जनता था कि उस्मान लगभग भीख मांग कर ही पेट भरता है। उसे किसी रोज फाका भी हो जाता होगा इस की कल्पना भी मुझे थी। मेरी विचारतंद्रा में से मुझे जगा कर उस्मान ने कहा ''भाई मुझे चार आने चाहिये।' ' मैने दे दिये। उसने वे पैसे उस अंधे भिखारी के हाथ में टिका दिये और किसी परिचित लड़के के हाथ में उसकी लकड़ी थमा कर वह मुझसे बात करने लगा। सामने ही मस्जिद के पास की एक छोटी सी और अत्यंत गंदी कोठरी मंे वह अपने चार-पांच साथियों के साथ रहता था। ईदगिर्द की दुर्गध से सर फटा जा रहा था। सोचा, ऐसी जगह में ये लोग कैसे रहते होंगे ? इतने में चार-पांच नंगधडंग बच्चों ने आ कर उस्मान को घेर लिया। सब एक सूर में कहने लगे, ''अफलातून चने-मुरमुरे दिलवा दो।' ' उस्मान ने मेरी ओर देखा। मैने जेब में से दुअन्नी निकाल कर दी। उसने भड़भूजे की दूकान से चने-मुरमूरे लिये और उन बच्चों को बांट दिये।

' ' उस्मान लो यह रख लो।' ' कह कर मै उसे पांच रूपये देने लगा। मेरी सदभावना देख कर उस की आंखें बरसने लगी। परंतु उसके आंसू सूखें उससे पहले ही मस्जिद की ओर से एक वृद्ध मुसलमान ने आकर उसका दामन पकड़ लिया। रूपये अभी मेरे हाथ में ही थे। गुस्से में आ कर वह कहने लगाः अफलातून पांच महीने का किराया चढ़ा हुआ है। अगर आज नही दिया तो कोठरी का ताला लगा दूंगा। फिर मरना बाहर।' '

' ' लो चाचा, यह चार रूपये। एक रूपया फिर दूंगा। कह कर उस्मान ने मेरे हाथ में से रूपये ले कर उनमें से चार उस बूढ़े को दे दिये। बूढ़ा मेरी और अर्थपूर्ण नजर डालता हुआ चला गया। मैने उस्मान से कहा कि पांचों रूपये उसे दे कर बला टालनी थी। उत्तर में उसके रूके हुए आंसू छलक पड़े। धीरे से बोला, '' भाई षाम के लिए आटा-पानी भी तो नही है। सब कैसे दे देता?'' मेरे पास और रूपये नही थे। मैने जेबे टटोल कर कहा, '' उस्मान दफतर में आ कर कुछ ले जाना।' '

मैं साइकिल में बैठने जा रहा था कि एक मुसलमान बुढ़िया लाठी टेकती हुई वहां आ पहुंची। जड़, निर्जीव आवाज में बोली, अफलातून बेटा चार आठ आने का आटा पानी दिला दे। दो दिन से भूखी हूं। मोदी ने आटा देने से इनकार कर दिया। कहता है कि पहले के आठ आने चुकाती हो तो आटा ले जाओ। क्या करू मरू? खुदा मौत भी नही देता।' ' मेरी ओर देखे बगैर ही उस्मान ने बचा हुआ रूपया बुढ़िया के हाथ में टिका दिया। बोला ''लो अम्मा एक रूपया है। आठ आने उसे दे देना और आठ आने का आटा नमक ले जाना।' '

' ' और बेटा चार पांच लकड़िया भी दे। पकाऊंगी कैसे?'' बुढ़िया की आवाज ओर भी जड़ हो गयी। उस्मान कोठरी में से लकड़िया लाने गया। मैने वृद्धा से पूछा, ''अम्मा यह अफलातून नाम किसने रखा है?''

बुढ़िया की आवाज में कुछ जान पड़ी। बोली, ''साहब खुद भूखा रह कर भी यह ओरों को खिलाता है। बड़ा गरीबनवाज है। खुदा खैर करे। सब उसे अफलातून की कहते है।' '

' ' लो अम्मा चार-पांच ही है। और नही है।' ' बुढ़िया लकड़िया ले कर दुआऐ देती हुई चली गयी।

मैने कहा, ''उस्मान चलो मेरे साथ।' ' वह मेरे पीछे पीछे दफतर में आया। उसे पांच रूपये और दिये।

इसके बाद एक साल तक अफलातून दिखाई नही दिया। मैने पानवाले उस्ताद से पूछा, पर उन्हें भी मालूम नही था। एक दिन दोपहर को खबर मिली कि वह बहुत बीमार है। कई दिनों से बिस्तर पर पड़ा है। दफतर का काम

अधूरा छोड़ कर उसकी कोठरी पर गया। वह बुढिया और अंधा भिखारी दरवाजे पर ही बैठे थे। आंगन में नंगे बच्चे खेल रहे थे।

मुझे देख कर अफलातून की आंखों में कुछ चमक आयी। लेकिन अब वह न तो उस्मान था न अफलातून। धरती से लगा एक कंकाल पड़ा था। मुझे देख कर उसकी झपकती हुई आंखों में पानी छलक आया। कहीं गहराई में से आवाज आयी ''भैया, . . . तुम आ गये। . . . बहुत अच्छा हुआ। . . . अब मै आराम से . . . आसानी से जा सकंूगा। . . . खुदा ने मेरे दिल की अर्ज सून ली। . . . तुम्हें देखने के लिए जिगर तड़प रहा था।

उस्मान की आवाज और भी गहरी उतरती हुई मालूम दी। अस्पश्टता भी बढ़ गयी। फिर भी वह चुप न रह सका। कुछ प्रयत्न कर के उसने मुझे आंख के इषारे से पास आने को कहा। मै सरक गया। उसने मेरा हाथ अपने हाथों में लिया। वाणी नही निकली पर उसकी टगर टगर देखने वाली आंखें पूरी जिंदगी की व्यथा सुना रही थी। कैवे हयात की तरह वीतने वाले निरर्थक जीवन की अश्रुगाथा गा रही थी। अंतर की आर्तता व्यक्त करने के लिए वाणी की अपेक्षा आंखें कितनी अधिक षाक्तिषाली होती है इसका अनुभव हुआ। किसी की करूण दृश्टि किसी और के समग्र अस्तित्व को किस हद तक झकझोर सकती है; यह भी जाना। मेरी समग्र चेतना को भेदते हुए कंपित स्वर में उस्मान ने कहा, ''भैया उस रात पीपल के पेड़ के नीचे कहा था कि मै औरत बनना चाहती हूं और तुम मेरे मरद होगे। लेकिन नही भैया, यह बात कुछ जंचती नही। अगले जनम मेेंं अब तो मै तुम्हारी मॉ बनूंगी। . . . तुम जैसा बेटा. . . उस्मान ने आंखें मूंद लीं।

और . . . और वे आंखें फिर बंद ही रह गयीं।

68

फक्कड़ चाचा

' मोरबी आर्य सुबोध नाटक-मंडली' षहर में बहुत लोकप्रिय हो उठी थी। 'महासती अनुसूया' नामक उनके नाटक में तो भीड़ का पार नही रहता था। षानिवार-रविवार के टिकट एक सप्ताह पहले ही बिक जाते थे। सब से आगे का टिकट दो रूप्ये और अंतिम चार आने। हम बारह आने वाले दरमियाने दरजे में बैठे थे। उन दिनों हमारे दूर के रिष्तेदार छगन काका नाटक मंडली के व्यवस्थापक के मित्र होने के नाते कंपनी के मंतजिम बने हए थे। उस मुहल्ले में उनकी धाक भी बहुत थी। पहाड़ी षरीर, काला आवनूसी रंग, डरावनों आंखे और कर्कष आवाज। उन्हें देखते ही डर लगता था। प्रेक्षकों में थोड़ी भी गडबड़ी होती तो छगन काका दरवाजे से झांक कर देखते और झांकते ही लोग षांत हो जाते।

नाटक का रंग जमा हुआ था। अनुसूया के घर ब्रह्रा, विश्णु और महेष भेश बदल कर महासती की परीक्षा लेने आये थे। सती इस भेद को जान गयी थी। उन्होंने अंजली भर कर पानी छिड़का। एक क्षण के लिए प्रकाष बंद हो गया। अंधेरा छा गया। तीन बार जोर की आवाजें हुई और तीनों देवता छोटे बच्चे बन कर ऊआॅ ऊआॅ करने लगे। कंपनी का यह ट्रिक सीन अत्यंत लोकप्रिय था। लेकिन एक क्षण के लिए जो अंधकार हुआ था उसी दरमियान कुछ गडबड़ हो गयी। किसी की जगह छिन गयी या न मालूम क्या हुआ, पर चार आने वाले वर्ग में कोलाहल मच गया। फिर से रोषनी हुई तब तक तो नौबत मारमीट तक पहुुंच चुकी थी। लाठियां चलने लगी थी।

छगन काका चिल्लाये, पर किसी ने सूना नही। वे लाठी ले कर वहां पहुंचे फिर भी दंगा षांत नही हुआ। इतने में एक पहाड़ी आवाज सुनाई दी। आवाज के साथ ही एक कद्दावर आदमी आ पहुंचा। षीषम जैसा चमचमाता हुआ काला रंग, सफेद दूध जैसा मलमल का कुरता, सर पर चंपई रंग का साफा; हाथ में डंडा। आवाज के साथ डंडा भी उठा। आंख झपकते कोलाहल षांत हो गया। दंगा बंद हो गया। चार आने वाले वर्ग में चुप्पी छा गयी। इसके प्रभाव से और लोग भी षांत हो गये।

' ' षाबाष इमाम।' ' कंपनी के मालिक का अहसानभरा स्वर सुनाई दिया। इमानुदीन के बाहर आने पर उन्होंने उस को पीठ ठोक कर षाबाषी दी। नाटक षांति पूर्वक समाप्त हो गया।

मेरे लिए इमामुदीन का वह प्रथम दर्षन था। न जाने क्यो पर मेरे बाल मन को प्रथम दर्षन में ही यह आदमी पंसद आ गया। मै उसका मुरीद हो गया। कुछ अधिक जान-पहचान होने पर मालूम हुआ कि सब उसे फक्कड़खाॅ कहते थे। मदनझांपा मुहल्ले का वह माना हुआ दादा था। जिसकी घर में उसका आनाजाना हो, उसमें कभी चोरी नही हो सकती थी। इमाम की आंख के एक इषारे पर चाहे जितने आदमी मुप्त नाटक देख सकते थे। और तो मोहल्लें का थानेदार भी इमाम से दोस्ती रखना बेहतर समझता था। होटल वाले बुला-बुला कर इमाम को चाय पिलाने में गौरव अनुभव करते; पान वाले पान खिला कर खुष होते। मुहल्ले के बच्चे फक्कड़चाचा-फक्कड़चाचा कहते हुए उसे घेर लेते। वह भी दो एक आने के बिस्कुट या पिपरमिट ले कर बच्चों को बांट देता।

नाटक न हो उस दिन षाम को इमामुदीन लहरीपुरा तक धूमने निकलता था। दर्षनीय पुरूश। जीवन मद से मतवाला। रंग काला पर नाकनक्ष से आकर्शक धनी और नुकीली मूछें, डरावनी पर ममतामयी आंखें। षरबती मलमल का कलफ किया हुआ चुत्रटदार बाँहों का कलीदार लखनवी कुरता पूरे मुहल्ले में सिर्फ इमाम की पहनता था। हाथ की सिलाई। सिलाई की दर पूरा एक रूप्या। सन् चैदहपंद्रह का जमाना। सादा कुरता चार आने में सिलता था। इतनी सिलाई दे सकना आलतू फालतू आदमी की औकात नही। मुहम्मद रंगरेज इमाम का साफा अत्यंत सफाई और ध्यान से रंगता। स्वर्णचंपे का प्रसन्न रंग इमाम को बेहद पंसद था। कमरबंद से कर पहनी हुई महीन लकदक धोती। हाथों में ख्ेालता हुआ प्रिय डंडा। मस्तानी चाल। सब मिला कर यह आदमी इतना मोहक लगता कि कभी कभी तो उसे देख कर स्.ित्रयों में कानाफूसी होने लगती।

एक रोज भोरवी थियेटर से मै उसके साथ हो लिया। रास्ते में पनवाड़ी होटल वाले, दूकानदार, मजदूर, कारीगर, जो भी मिलता उसे सलाम करता। दो एक वकील डाक्टरों ने भी इमाम को बुला कर खैरखबर पूछी। हमारे मास्टर साहब ने मुझे इमाम की अंगुली पकड़ कर जाते देखा उस रोज से उनका मेरे प्रति स्नेह बहुत बढ़ गया। छड़ी का प्रसाद भी कुछ कम मिलने लगा। चलते चलते हम हनुमान मंदिर तक आ पहंुचे। यह चैक इमाम का विश्राम स्थान था। त्रिभुवन की दुकान पर खड़े खड़े ही उसने पान का हुक्म छोड़ा। वह आ कर खड़ा है। यह मालूम पड़ते ही काजी के होटल से चाय का प्याला आ गया। इतने में राज्य की हथिनी चंपाकली वहां से निकली। मस्तक पर उसका नाम सुनहरे अक्षरों में लिखा हुआ था। ललाट के दोनों तरफ दो मोर चिते हुए थे। मोर की आंखों को चंपाकली की आंखों के साथ मिला दिया गया था। अतः हथिनी की आंखों की हलचल होने पर मोर जीवित दिखाई देते थे। महावत फक्कड़ चाचा का जिगरी दोस्त था। इमाम को देख कर उसने हथिनी को रोका । उसकी घंटियों का नाद सुन कर बच्चे भागे भागे आये और दूर खड़े हो कर स्तब्ध भाव से उसे देखते रहे।

महावत ने धीरे धीरे हथिनी को बैठाया और फक्कड़ चाचा के पास आया। दोनों ने हाथ मिलाये। एक दूसरे के समाचार पूछे। बीडी का आदान प्रदान हुआ। बिना मंगाये ही इमाम की ओर से पानवाले ने पान भेज दिये। इमाम ने महावत की वीडी सुलगा कर आदर प्रर्दिषत किया। चंपाकली खड़ी हुई। महावत ने सलाम किया। सूंड उठवा कर हथिनी से भी सलाम करवाया और घंटिया बजाती हुई चंपाकली चली गयी। मेरा वाल मन सद्भावना के इस दृष्य को मुग्ध भाव से देखता रहा। मेरी दृश्टि में इमाम की प्रतिश्ठा और भी बढ़ी और अब वह मरे हृदय में एक महापुरूश के रूप में स्थापित हो गया।
मोरबी नाटक मंडली का मुकाम उस साल कुछ अधिक रहा। षूरगीॠशि का नया खेल लगा। उसे इतनी लोकप्रियता मिली कि कंपनी क संचालक निहाल हो गये। छगन काका के निमंत्रण से हम भी नाटक देखने गये। भीड़ ऐसी कि पूछिये मत। पहला अंक समाप्त हुआ। मध्यांतर के सयम कुछ गड़बडी हुई। कोलाहल मचा,

लाठियां चली दंगे ने उग्र रूप धारण किया। बस, फक्कड़ चाचा डंडा ले कर पिल पड़े। एक क्षण में दंगा समाप्त हो गया। भीड़ में से वह एक कद्वावर मुसलमान को गले से पकड़ कर बाहर घसीट लाये। उसे रास्ते के बीच में खड़ा कर के पांच सात झांपड़ लगाये। किसी की कुछ कहने की हिम्मत नही हुई। अंत में छगन काका उसे पहलू में भर कर एक ओर ले गये। बाद में मालूम हुआ कि उसने सिकी स्त्री को छेड़ा था। वह फतहपुरे का बदनाम गुंडा था। पर मोरबी थियेटर के अहाते में उसकी ऐसी गत बनी कि फिर षहर में उसका नाम तक सुनाई नहीं दिया।

उसके बाद मोरबी कंपनी चली गयी। लेकिन उस थियेटर में जो भी नाटक मंडली आती उसमें फक्कड़ चाचा का रोबदाब रहता है। पास के होटल में भोजन कंपनी में ही निवास। कुछ लोग उससे डरते थे, कुछ निंदा करते और कुछ खुषामद करते । पर अधिकांष लोग प्यार ही करते। गुंडे के रूप में बदनाम इस आदमी के खिलाफ दरअसल किसी को कोई षिकायत नही थी।; उसकी ईमानदारी आदरास्पद थी। किसी का एक पैसा भी वह मारता नही; पाई पाई का हिसाब करके कर्ज चुकाता। झूठ के प्रति ऐसी नफरत कि झूठ बोलने वाले का कायर या नामर्द ही कहता। किसी की बहन बेटी की ओर आंख उठा कर भी न देखता। ऐसे ऐसे तो न मालूम कितने स्वनिर्मित नियमों का वह पाबंद रहता। नववर्श के दिन हमारे घर आ कर पिताजी के पांव छूने का इमाम का अटल नियम था। संक्रांति के दिन भोजन भी हमारे ही यहां करता। पंतग का उसे बेहद षौक था खुद की पतंग बनाता और मांजा भी खुद ही सूतता। उस की पतंग कटी हो तो मी भर लंबा मांजा होने पर भी कोई हाथ न लगाता। पेच लड़ाने में यकर्ता। पेंच लड़ने के बाद ढील छोड़ता हो जाय। वृŸि से ऐसा खिलाड़ी कि सामने वाले की पंतग कट जाय तो भी हंँसे और अपनी कट जाय तो और भी अधिक हँसे।

एक संक्रांति को मेरी पतंग का पेंच मुहल्ले के किसी और की पतंग से हो रहा था। इतने में, भर पेंच में उधर की छत पर से किसी ने लंगर डाल कर मेरी पंतग काट ली। हम दो तीन मित्र फिरकी डोरी छोड़ कर भागे वहां। बात तू-तू में-में से बढ़ कर मारपीट तक पहुची। लाठी चल गयी। इस दरमियान कोई भाग कर फक्कड़ चाचा को बुला लाया। मुझे मालूम ही नही पड़ा कि इमाम चाचा आ गये है। पर उसे देखते ही विरोधी पक्ष के लड़के लाठियां छोड़ कर भागे। कहा ने मेरी पीठ ठोंकी। लाठी ठीक तौर से चलाने के लिए षावाषी दी। कहा कि उसने जानबूझ कर बीचबचाव नही किया। लड़ाई बराबर जमी हुई थी। और हम ठीक तरह से लड़ रहे थे। स्वत्वरक्षा के लिए हम लड़ सकते है इस बात से उसे वेहद खुषी हुई।

वेचर तेली के यहां उसकी बैठक थी। एक दिन वेचर चुन्नीलाल साइकिल वाले से अपने रूपयों का तगादा करने गया। चुन्नीलाल ने रूपये तो नही दिये उलटा उसे दूकान मेंें घेर कर पीटा। वेचर ने इमाम से षिकायत की। इमामुदीन डंडा ले कर आ रहा है। यह खबर मिलते ही चुन्नीलाल दूकान बन्द कर के अहमदाबाद भाग गया। वहां से वेचर के रूपये मनिआर्डर से भेज दिये। फिर एक रोज आकर चुपचाप इमाम से माफी मांग ली और दूकान खोल कर अपने काम से लगा।
चैक पर राधा दूधवाली की दूकान थी। उसके धंधे में नकद की अपेक्षा उधार का ही व्यवहार ज्यादा था। पर बेचारी स्वभाव से इतनी गरीब थी कि कभी किसी से रूप्ये का तगादा नही करती थी। एक बार वह बीमार पड़ी और दो तीन दिन में ही उसकी मृत्यु हो गयी। उसका कोई सगा संबंधी नही था। कई लोगों पर उसका रूप्या बाकी था पर कोई आगे नही आया। आखिर फक्कड़ चाचा ने उसके अग्नि संस्कार की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। कोई अपना भी न करे ऐसी तत्परता से सब कार्य पूरा किया। पांच सात साल तक तो उसके इस सत्कार्य का उल्लेख स्थानीय गरबा में होता रहा। मर कर आदमी इतियास रचता है यह तो सूना था। पर जीते जी ही तबारीख रचे, यह आष्चर्य की बात थी।

उसके बाद कई वर्शो तक इमाम के साथ हमारा संबंध नाममात्र का ही रहा। मोरबी थियेटर की इमारंत गिरा दी गयी । और भी अनेक परिवर्तन हुए। में दस-बारह वर्श बाद बड़ौदा लौटा था। एक रोज साइकिल पर पोलो

क्लब जाते हुए उस मुहल्ले से गुजरा। मन में आया कि चलो, इमाम की खबर पूछता चलूं। दो तीन जगह पूछा पर किसी को उस के संबंध में कुछ मालूम नही था। नवापुर तक पूछताछ की पर कुछ पता नही चला। लौटते समय वेचर तेली का लड़का मगन मिल गया। उसे मालूम हुआ कि इमाम बीमार है। मै उसे साथ ले कर नवापुर की तरफ लौटा। उसे इमाम का पता मालूम था।
उजली वस्ती समाप्त हो कर जहाँ से खाली डब्बे बोतल बेचने वाले वाघरियों के झोंपडे षुरू होते है, उस मुहल्ले में एक छोटी सी झोपडी के सामने हम रूके। ढलती हुई षाम का, न अंधेरा न उजाला, ऐसा घूसर वातावरण था, मानो साक्षात् उदासी मूच्छित हो कर पड़ी हो। गरीबी, गंदगी और गलियों से वातावरण भरा हुआ था। मैने आवाज दी, ''फक्कड़ चाचा . . .।' ' कोई जबाब नही मिला। फिर मगन ने धीरे से आवाज लगायी, ''इमाम चाचा. . .।' ' झोपड़ी में से एक प्रौढ़ उम्र की स्त्री बाहर निकली। वह आ कर हमारे सामने खड़ी रही, पर बोली नही। हमने फिर पूछा,'' इमाम चाचा की तबीयत कैसी है?''

' ' वे तो आज सुबह चले गये।' ' कह कर वाई ने सिर पर का पल्ला कुछ आगे खींचा। उसकी आंखों में, उसकी पूरी हस्ती में मौत की ठंडक छा रही थी।

हमारी कुछ और पूछने से पहले ही उसने कहा, ''उनकी अंतिम इच्छा के अनुसार उनका अग्निद ह किया गया।' '

' ' तुम इमामुदीन की कौन लगती हो ?'' मै पूछ बैठा।

' ' जो आप समझे।' ' कह कर वह अंदर चली गयी।

अंधेरे में हमारी नजर सिर्फ टिमटिमाते दीपक को देखती रही।

69
मनमोहन
मनमोहन! कितना प्यारा नाम । पर काम देखो तो गंुडों के । इस विलक्षण आदमी से परिचय हुआ जेल मेेंं। उसे परिचय का इस से अच्छा स्थान और षायद हो भी नही सकता था। 1932 के साल में सत्याग्रह आंदोलन चल रहा था। गुप्त रेडियो ट्रान्समीटर से कांग्रेस के आंदोलन का प्रचार करने के जुर्म में जेल की सजा भुगत रहा था। मुकदमा चल रहा था उस दरमियान हमें बम्बई के एस्प्लेनेड पुलिस थाने की हवालात में रखा गया था। जेल के सीखचों के पीछे बंद होने का जीवन में वह पहला ही अवसर था। भीतर रह कर ऐसा लगता था मानो बाहर तो जिन्दगी का कारवाँ आगे बढ़ा चला जा रहा था । और हम भीतर रहने वाले पिछडे जा रहे थे। यह विशाद और उससे उत्पन्न वेदना अधिक व्यापक बने उसे से पहले ही एक घटना हो गयी।

तीसरे दिन हमारी हवालात में चार जुआरिओं का आगमन हुआ और चोर रोज अपनी स्त्री की हत्या करने के अभियोग में गिरफ्तार एक अन्य महापुरूश की सवारी आ पहुँची। इस प्रकार मेला जमा। अकेलापन दूर हुआ। विशाद कम हो गया। जिंदगी ने जेल में भी बिसात बिछा दी।

हवालाती बंदी होने के नाते हमें सरकार की ओर से रोज आठ आने मिलते थे। उसमेेंं ही हमें गुजारा करना पड़ता था इसलिए मुझे खाना घर से मंगवाने की अनुमति थी। अन्य लोगों को आठ आने में पूरा खर्च चलाना पड़ता था। घर से मेरे खाने का डब्बा आता था। उसमें से हिस्सा बँटने लगा। इसी कारण से आपसे का परिचय बढ़ा। उनमें से एक आदमी ने मुझे अत्यधिक प्रभावित किया।

वे चारों जुआरी अपनी आठ आने रोेज की प्राप्ति में से चार आने तो खाने में खर्च करते और चार आनी से जुआ खेलते। मेरे मन में विचार आता कि जिस अपराध के लिए इन्हें पकड़ कर जेल में बंद किया गया है। वह

तो जेल में भी करते है। मनुश्य स्वभाव की यह कैसी विचित्रता है! और मजे की बात यह कि जाली के दरवाजे के बाहर पहरा देने वाले पुलिस के सिपाही की उपस्थिति में और उसकी आंखों के सामने यह खेल चलता था। सिपाही बेचारा कर भी क्या सकता था?

वे चारों जुआरियों में मनमोहन अधिक चंट था। वह जीता हो, और हारने वाले के पास पैसे न हों, तो वह उसे उधार देता। सामने वाला फिर हार जाय तो कर्ज माफ। पैसे की वसूली के प्ररति उसे अधिक आसक्ति नही थी। मानो खेेल के प्रति उसका दृश्टिकोण हो-कला के लिए! अन्य बातों में भी वह अत्यंत वेफिकर था। अपने खाने में से अधिकांष दूसरों को दे देता ।

एक रोज रात को मुझे कै-दस्त की षिकायत हो गयी। लक्षण पीलिया के थे। पूरी रात मनमोहन ने जागते रह कर मेरी सेवा की। दूसरे दिन मेरी हालत देखते हुए पुलिस अफसरों ने मुझे अस्पताल भेजने की व्यवस्था की ।तब तक मेरे पास आठ आने रोज की आमदानी में से तीन चार रूप्ये इकट्ठे हो गये थे। चलते समय मैने वह पैसे मनमोहन के हाथ में रख दिये और कहा, ''देखो दोस्त, इन पैसों को खाने पीने में खर्चना, जुए में नही।' ' वह कुछ बोला नही पर उसकी आंखों में एहसान का भाव स्पश्ट था।

मै अस्पताल पहुँचा। वहाँ भी तीन चार पुलिस के सिपाही चैबीसों घंटे पहरे पर तैनात! पंच छह रोज बीतने पर एक आदमी पुलिस की इजाजत ले कर मुझसे मिलने आया। देखा तो मनमोहन । मै कुछ पूछूं उससे पहले ही उसने कहा। '' भाई साहब, हम सब छूट गये। पर आपने मेरा कायाकल्प कर दिया। मैने जुआ खेलना छोड़ दिया। बंदरगाह पर मजूदरी करता हूं। खूष हँू । . . . यह स्वीकार करेगें . . .?'' कह कर उसने रूमाल में बंधी हुई एक पुटलिया मेरे पलंग पर रख दी। खोल कर देखा। कुछ फल थे और चार पांच गुलाब के फूल। आंखें नम हो गयी। अतंःकरण गद्‌गद हो गया। और कुछ कहने का मौका नही मिला। वक्त पूरा हो चूका था सिपाही ने बाहर जाने का इषारा किया। दबे पांवों और कृतज्ञ आंखों से मनमोहन चला गया। गया तो ऐसा गया कि बरसों के लिए उसकी स्मृति भी लृप्त हो गयी।

इसके बाद बरसों बीत गये। एक रोज षामको छह बजे के आसपास मै बाबुलनाथ रोड की क्रांस लेन से होकर विद्‌याभवन क ग्रंथालय की ओर जा रहा था। 'भाई साहब' की आवाज सुन कर मुड़ कर देखा तो एक वृद्ध जल्दी जल्दी मेरी तरफ आ रहा था। उसने पास आ कर मुझे ध्यान से देखा और फिर पूछा, '' आप भाई साहब तो नही।' ' एक क्षण के लिए मै आवाक हो गया। बडे गौर से देखा लेकिन पहचान न सका। '' आप भाईसाहब ही हो न?'' उसने फिर पूछा। यह संबोधन इतना साधारण और व्यापक है कि मेेरे मन मंें कोई स्मृति नही जगी। अपराधी की तरह मैने कहा, '' माफ कीजिये, आपको पहचान न सका।' ' ''भाई साहब, मंै. . . वह आगे कुछ कहे उससे पहले ही तीसरी बार उच्चारित 'भाई साहब' का संबोधन हृदय में गहरे उतर कर अनेक वर्शो की लंबी यात्रा कर आया। मै आष्चर्य से बोला उठाः '' मनमोहन तो नही?''

' ' हाँ, भाई साहब, मै मनमोहन ही हूं।' ' वृद्ध के चेहरे पर आनंद छा गया। हम दोनों एक दूसरे से लिपट पड़े। जी भर कर गले मिले। मैने कहा, ''मनमोहन, तुमसे मिल कर वाकई बड़ी खुषी हुई। क्या कर रहे हो आजकल?''

' ' बंदरगाह पर ही काम कर रहा हूं। यूनियन का अध्यक्ष रह चुका हूं। हमारा यूनियन कांग्रेस से संबद्ध हैः बयालीस में फिर जेल हो आया। . . . पर जुआ खेलने के लिए नही। 'भारत छोड़ो आंदोलन के कारण। आप क्या कर रहे हैं?'' मनमोहन का हृदय खुषी से तरबतर हो रहा था।

' ' भाई . . . '' अब मै भी मनमोहन को भाई कह उठा। उसके मुंह से उच्चारित 'भाई साहब' षब्द हवालात के उन दिनों में मेरा सब से बड़ा आष्वासन था। ''. . . मै आजकल बड़ौदा रहता हूं। छापाखाना है। कभी कभी किताबें भी लिख लेता हूं। उसका हाथ मेरे हाथों मंे ही था जिसे छोड़ते नहीं बन रहा था।

' देखना भाई साहब, कहीं हमारी बात मत लिख देना।' ' कह कर मनमोहन हँस पड़ा। वही निरागस हास्य। हँसी में वही निश्ठा की इनकार।

' ' क्या भरोसा भाई। षायद लिख भी दिया जाय।' '

स्नेह से हाथ मिलाकर मै जाने ही वाला था कि मनमोहन ने कहा, '' भाई साहब, मेरे घर चलिये न। मेरे बालबच्चे आपको देख कर बहुत खुष होंगे। पिछले वर्शो में बच्चों के सामने आपका जिक्र अनेक बार हो चुका है।' '

स्नेह के कुछ दावे ऐसे होते है कि उनमें बहस किये नही बनता। उनमें हारने में ही मजा है। इनकार करने की मेरी हिम्मत ही नही हुई। मै तुरंत राजी हो गया। और हम दोनों गिरगाँव बॅंक रोड की एक चाल में जा पहुंचे।

एक ही कोठरी थी। वही रसोईघर था, वहीं बैठकख,ाााना और वहीं सोने का कमरा। मनमोहन बाहर खेलते हुए अपने चारों बच्चों को बुला लाया। उसकी पत्नी ने चाय बनायी। सामने की दूकान से मंूगफली, मुरमुरे मँगवाये। गरीब पर दिलदार मनमोहन के परिवार ने जो स्नेहमय खातिरदारी की उसके सामने बडे बडे राजा महाराजाओं की दावतों के आडंवरमय आयोजन फीके पड़ गये। घर की स्थिति विलकुल कंगाली की। सामान इत्यादि बिलकुल दरिद्र और नाममात्र का। खाना भी कैसा और कितना मिलता होगा। रामजी जानें। फिर भी पारिवारिक सुख और परस्पर की ममता देख कर मन खुष हो गया। ऐसा स्नेह और संतोश तो बाहा्र दृश्टि से सुखी दिखाई देने वालेे धनी परिवारों में भी दिखाई नही देता। अकिचन गरीबों के घर में षायद ऐसे निब्यजि स्नेह की दृश्टि ही जीवन को हराभरा रखती है।

मेरे मन में उठने वाले इन विचारों का मानो समर्थन करते हुए मनमोहन ने कहा, ''भाई साहब, आप घर पधारे इस से बड़ा आनंद हुआ। जीवन में उत्साह आ गया। हम गरीब जरूर है, भाई साहब पर दिल हमारा जिंदा है।' '

मुझे लगा कि मनमोहन की बात सोलह आने सही है। दिल जिंदा हो तो गरीबी में भी जीवन पनप सकता है। परंतु जहाँ मन ही रोगी हो, वहाँ ऐष्वर्य और वैभव में भी जीवन बौना बन जाता है।

' ' मनमोहन तुझसे मिलकर अत्यंत आंनंद हुआ। हृदय और मन दोनों प्रसन्न हो गये। भगवान तुम सब को सुखी रखें।' ' मेरे मुंह से षायद अनधिकार ही आषीर्वाद के वचन निकल गये।

' ' भाई साहब आप जैसों की दुआ मिलने पर भला किस बात की कमी रह सकती है? बच्चों, भाई साहब के पाँव छुओ।' '

मनमोहन की आंखें तर हो रही थी। मेरी भी यही हालत थी। सब की स्नेहमयी दृश्टि का अनुंबध ले कर मै चल दिया।

आज इस बात को भी अरसा हुआ। परंतु वह 'भाई साहब' का संबोधन जीवननिश्ठा के आंगन में अलख जगाता ही रहता है। हृदयधर्म के द्वार पर उसकी दस्तक होती ही रहती है और आज उसीने यह घटना लिखवा ली। अंतनिश्ठों की षाक्ति ही ऐसी होती है। उसका प्रसाद जब जीवन को मिलता है तब मस्तक बरबस विनम्र भाव से झुक जाता हैै ।

मित्रमंडली में उनका प्यार का संक्षिप्त नाम था और डी; सो इस हद तक कि उनकी पत्नी तक बातचीत में उनका उल्लेख बिना किसी संकोच के इसी नाम से करती। आदमी थे गणित के क्षेत्र कें। गणित विशय ले कर एम.ए. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उŸाीर्ण की थी। लेकिन ललित कलाओं में बेहद दिलचस्पी। जीवन के प्रति अपार जिज्ञासा। अतएव प्रफुल्लित मानस, सहानुभूतिपूर्ण हृदय और श्रद्धासरत जीवनदृश्टि। जीवन के प्रति दृश्टिकोण उत्साह का, पर विशाद भी उत्साह के जितना ही उत्कट। दुःख की अनुभूति सुख के जितनी ही तीव्र। कुटुम्बवत्सल और परिवार में हार्दिक दिलचस्पी लेने वाले। बालबच्चों में गले तक डूबे हुए। बच्चों के साथ बच्चा बन कर उनके विकास में उत्साह पूर्वक सहयोग देने वाले। माता के प्रति निस्सीम श्रद्धा और स्नेह। दरअसल जीवन की पूरी इमारत माता के संस्कारों पर ही टिकी हुई। जननी के प्रति सदा कृतज्ञता और विनम्रता का भाव। परंतु यह सब जाग्रति और सिद्धान्तों की कीमत पर नहीं।
एक दिन आधी रात बीते दरवाजे की घंटी बजी। द्वार खोल कर देखा तो आर.डी.। म्लान चेहरा। दुःखभरी आंखें । मानो आर.डी. नही, उनकी छाया खड़ी हों । पूछने पर मालूम हुआ कि माताजी की तबयित कई दिनों से खराब है। विस्तर पर पड़ी है। आज हालत चिंताजनक है। अतः फोन करके बडे भाई साहब को बम्बई से बुलाना है। फोन पर बातचीत हुई। दो तीन दिन बाद माताजी की तबीयत कुछ सुधरी। परंतु वह तो बुझते हुए दीपक की बढी हुई लौ थी। क्षणिक और भ्रामक। दो रोज बाद उनका देहांत हो गया।

उस दिन आर.डी. को जीवन की बुनियाद से हिला हुआ देखा। रोना है, पर रोया नही जाता। गला ऐसा भरा हुआ कि बोलना है पर बोला नही जाता। आंखों की गमगीनी गहरी बन कर अंतर में उतरी हुई। हृदय दुःख से स्तब्ध। पूरी हस्ती पर जड़ता की जमावट। चेतना मूच्छित। आष्वासन देने वाला खुद ही सकपका जाय ऐसी मानसिक स्थिति। सांत्वना करने की हिंमत न हो ऐसा सधन दुःख। मुक व्यथा।

मंैने हम दोनों के मित्र डाक्टर ठाकोरभाई से मिल कर सलाह की कि इस हालत में उन्हें छेड़ना उचित नही। दोनों कफन और लकड़ियों का इंतजाम करने निकले। रास्ते में लकड़ी का गोदाम आया। टाल वाले से लकड़िया ष्मषान में भिजवाने को कह कर हम अंत्यसंस्कार का सामान बेचने वाले की दूकान पर पहुचे। न मालूम क्या कारण हुआ पर उस दिन पूरे षहर में एक ही दूकान खुली थी। ठाकोरभाई बड़े मजे के आदमी है। है तो डाक्टर पर स्वभाव से बडे खुषमिजाज । उनसे बातचीत कर के मेरा षोक कुछ हलका हुआ। उन्होंने पूछा ''अरथी कौन बांधेगा? तुम बांधना जानते हो ? मुझे तो कुछ मालुम नही। बेहतर हो, किसी अनुभवी आदमी को बुला लिया जाय। वरना बाद में बडी फजीयत होती है। उसी के कहे अनुसार सामान खरीदा जाय' ' ।

मैं एक अनुभवी प्रौढ़ को बुला लाया। उन्होंने आते ही फिकरा कसा कि आधुनिक संस्कृति के प्रभाव ने हमें कितना अज्ञानी और अपाहिज बना दिया है। अंत्योश्टि के लिए क्या सामान चाहिये यह भी हमें मालुम नही। हमारे बच्चों की जिंदगी हमसे भी अधिक निकम्मी और परावलंबी होगी। . . . राजनितिक स्वातंŸय का मतलब ही क्या है? . . . बोलो अरथी तक बांधना नही जानते। . . . जहाॅ जिंदगी की फसल सूख रही हो वहां आज की षिक्षा के लोटे भर पानी से हरियाली थोडे ही छाने वाली है। बेचारे डाक्टर उपदेष को इस बौछार से हतप्रभ हो गये। मैने चुप रहना ही मुनासिव संमझा। षीध्र ही हम कफन वाले की दूकान पर जा पहुंचे।

हमने कहा, ''भाई अंत्यसंस्कार का सामान चाहिये।' '
उसने पूछा, ''हिंदू है?''
' ' हाॅ' '
' ' पुरूश है या स्त्री?''
' ' स्त्री।' '
' ' सुगाहिन या विधवा?''
' ' विधवा।' '

' ' युवती या वृद्धा?''

' ' वृद्धा' '

' ' आप फिकर न करें। मै सारा सामान ठीक से दे दूंगा। ''

विक्रेता मुसलमान था। वृद्धा था और अंधा था। गहरा पक्का रंग, दोहरी काठी, सुदृढ़ षरीर। टटोल-टटोल कर उसने सारा सामान इकटठा किया। दो मजबूत बांस निकलवाये। बांस की खपच्चियों का एक गठर दिया। फिर पूछा। '' मृतक का कद कितना होगा।?'' '' मेरे जितना ही समझिये। ''मैने जबाब दिया। फिर अचानक खयाल आया िकवह तो अंधा है। आखेें खुली होने पर भी देख नही सकता । मै चुप ही रहा। उसने अच्छे मेल का कफन निकला । थान खोला मेरे जितनी हस्ती होगी मैयत की?'' ठाकोरभाई ने हाॅ कही।

सुनते ही वह लेट गया। फिर कफन का कपड़ा ओढ़ कर लंबाई नापी। दोनों सिरों पर कुछ अधिक कपडा छोड़ा। चारों तरफ से कफन अपने षरीर के नीचे दबा कर उस के पर्याप्त होने की खातिरजमा की। इसके बाद कपड़ा फाड़ा और खुष होता हुआ बोला।' ' लीजिये भाई साहब। नाप कम नही पड़ सकता। इस काम में बेईमानी नही चल सकती।' '

हमने सामान उठाया और चलने लगे । उसने आवाज दे कर हमें वापस बुलाया। ''भाई साहब, रूकियें। एक चीज रह गयी । यह इत्र की षीषी लेते जाइये।' ' हमारे हाथ में इत्र की षीषी देते हुए मानो स्वगत संभापण करने लगा, ''अंतिम समय भी आदमी को खूषबू फैलाते हुए जाना चाहिये। साहब। इस काम में नकली चीज नही चल सकती. . .।' '

सामान ले कर हम चलने लगे। लेकिन कफन नापने के लिए उसे खुद ओढ़ कर सोने वाले कफनफरोष का चित्र मेरे मन पर से नही हटा। नापने के लिए उसने कफन ओढ़ा। नाप कर फिर उठ बैठा। जिंदगी का कारवाॅ आगे बढ़ता गया। ऐसे तो न मालूम कितने बार उसने नाप लिया होगा। कितनी बार कफन ओढ़ा होगा। कितने कफन बेचे होगें। कितने मुर्दो को इत्र से सुवासित किया होगा। यह आदमी मौत का सामान भी बेचता है। और मौत के साथ जीता भी है।

हम आर.डी की माता की अरथी ष्मषान ले जा रहे थे। कफन ओढ़ कर कफन बेचने वाली की मूर्ति साथ साथ चली रही थी। ष्मषान में पहुंचे। मृतदेह का अंग्निसंस्कार हुआ। ष्मषान में पहुंचें। मृतदेह का अंिग्नसंस्कार हुआ। ष्मषान का वातावरण मन में अकसर गहन विशाद उत्पन्न करता है। संवेदनषील आदमी का हृदय तो मुक व्यथा से भर जाता है। इस गमगीनी से मन को इतनी थकान महसूस होती है कि कुछ समय के लिए जीवन के प्रति उत्साह ही नही बचता। जिंदगी अहृय हो उठती है।

पंरतु उस रोज विशाद की बेचैनी उत्कट नही हो पायीं। ओढ कर कफन नापने वाले कफनफरोष की छवि अंतर की गहराई में अंकति हो रही थी। ऐसा लगा कि उस रोज सिर्फ आ.डी. की माता के लिए ही कफन नही खरीदा गया, बल्कि मृत्यु के भय के लिए भी कफन की खरीदारी हो चुकी थी। .... नकद अनुभव की कीमत चुका कर।

71

वल्लाह, क्या चीज है!

हर षुक्रवार को बड़ौदा में गुजरी भरती है। फतहपुर के राजमार्ग पर भरी जाने वाली यह साप्ताहिक पैठ षहर के और इर्द गिर्द के गांवों के श्रमजीवी लोगों के लिए बाजार -हाट का उपयुक्त साधन होने के उपरांत उनके आंनद और मनोरंजन का साधन भी बन जाती है। षहरों का षिक्षित या धनिक उच्च वर्ग इस में षामिल नही होता।

अधिक से अधिक मध्यम वर्ग के निम्न तबके के लोगों तक ही इसका आकर्शण सीमित हेै। भीड़, कोलाहाल पूछताछ, मोलभाव इत्यादि के षोरगुुल और माल बेचने वालों की संगीतमय आवाजों के कारण वातावरण में एक प्रकार की सजीवना छायी रहती है। गुजरी में सागसब्जी से लगा कर गाय-बैल-घोड़ों तक का क्रयविक्रय होता है। नयी वस्तुओं के साथ-साथ पुरानी और उपयोग मंे न आने वाले काठ-कवाड़ के भी यहां ढेर लगे रहते है। साथ दिन में न बिकें उतने चने मुरमुरे यहां एक रोज में साफ हो जाते है। मुरगे,बŸाख, तोते, मैना, तीतर-वटेर बुलबुल, काकातुआ इत्यादि पक्षी बेचने वालों के विभाग में तो उनके रंगीले विक्रेताओं के भाशा ऐसी चुतर और मर्मग्ारही होती है कि बडे-बडे साहित्यकारों को भी नीचा देखना पड़े।

गुजरी में कांइयां षहर वाले अपनी चालाकी से सीधे-सीधे ग्रामीणों को ठगते है; कोई जटाधारी साधु पीतल में से सोना बना देने का लालच दिखाकर इन लोभी षहर वालों को ठगता है, जब कि गिरहकट लोग अभेद भाव से इन दोनों की जेबों का बोझ हलका करते रहते है। इस सब बातों के बाबजूद गुजरी का बाजार जीवन की अधिकाष्ंा आवष्यकताओं को एक ही स्थान पर पूरी कर देने के कारण श्रमजीवियों के लिए बडे आकर्शण की चीज बन जाता है।

एक रोज न मालूम किस संदर्भ मं इस गुजरी का वर्णन मै स्वर्गीय प्रा. बलवंतराय ठाकोर के सामने कर बैठा। उनके स्वभाव से परिचित होने के कारण मैने वर्णन में कुछ नमकमिर्च भी लगाया। बस, बल्लू काका गुजरी देखने के लिए अधीर हो उठे। बुढ़ऊ को ऐसी बातों में बेहद दिलचस्पी थी। अगले षुक्रवार को ही जाने की बात तय हो गयी।
षुक्रवार को सुबह आठ, साढे-आठ बजे मै उनके यहां पहुंच गया। उस वक्त वे रावपुरा में खर्चीकर की गली में इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट के मकान में रहते थे। यह सन 31 की बात है। उन दिनों तीसरे पहर की चाय मै उन्हीं के यहां पीता था। बुढ़ऊ ने इस दरमियान अन्य लोगों से भी गुजरी संबधी बहुत सी जानकारी प्राप्त कर ली थी। उनका उत्साह मानो षरीर की सीमांए तोड़ कर बह जाना चाहता था। मुझे देखते ही बोले कि - ऊपर चल, मै कपड़े बदल लूं। चर्चिल की तरह उनका भी सिंगार हमेषा सुलगता ही रहता था। बार-बार सुलागने का झंझट कौन करे।

बल्लू काका ने जो कपड़े पसंद किये और उनमें जो रंगसंगति साधी उसे देख कर मै हैरत मै पड़ गया। पहले अलमारी में से चूड़ीदार पायजामा निकाला उस में नौकर से लाल रंग का वालिष्त भर चैड़ा जालीदार इजारवंद डलवाया। खाकी रंग की कमीज निकली और धोबी के यहां जा जा कर जिसका मूल रंग पहचानना कठिन हो गया है। ऐसी मटमैली षेरवानी पंसद हुई। क्रमषः यह कपड़े पहने गये। नौकर ने जूतों के फीते बांध दिये। नीचे आकर मिलिटरी ढंग का अत्यंत वजनदार सोला हंट पहना। हाथ में छड़ी ली। धूप अधिक होने के अंदेषें से छाता भी लिया। फिर मुझ से पूछाः '' क्यों भाई लिवास का मैचिंग अच्छा है न ? लोगों को मजा आयगा न ? मै क्या जबाब देता। जानता था कि बुढ़ऊ की हास्य विनोद की कल्पना तीन लोक से न्यारी है। हम जीना उतर गये। वंबाखाने के पास से हमने तांगा किया । तांगेवाला बल्लू काका को देखता ही रहा। फिर मेरे कान में पूछा, '' ये काका क्या सरकस के आदमी है?'' मैने नाक पर अंगुली रख कर उसे आंखों से धमकाया। फिर भी उसके लिए हॅसी रोकना कठिन हो रहा था। चांपानेर दरवाजे पर हम उतर पड़े। गुजरी वही से षुरू होती थी। मै खादी का धोती कुरता पहने हुए था और साथ में इस सजधय से लैस बल्लू काका। विरोधााभास पूरा था। लगभग साढे नौ बजे होंगे। गरमी की सुबह। धूप में तेजी आनी लगी थी। उससे बचने के लिए बुढ़ऊ ने छाता खोल लिया और हम दोनों की षाही सवारी ने गुजरी में प्रवेष किया। मै तो उनका साथी मात्र था। जहाॅ वे जायं वहां जाना और जैसे वे चले उस प्रकार चलना मेरा फर्ज था। हम भरे बाजार से गुजरने लगे। अनेक आंखें हमारी ओर मुड़ने लगे। लोग इषारे करने लगे। राग बेचने वाली कुंजड़िनें उंगली उठा-उठा कर फिकरे कसने लगीं।

मै चलता जाता था और गुजरी के विभिन्न विभागांेे की जानकारी उन्हें देता जाता था। किस विभाग में किस चीज के मिलने की संभावना है। यह बताता जाता था। वे कभी किसी दूकान की ओर मुड़ते एकाध मिनट रहते,

किसी चीज के दाम पूछते या किसी अजूबा चीज की मांग करके दुकानदार को अचरज में डाल देते। घूमते घूमते हम पक्षियों के विभाग में जा पहुंचे। इस के बाद पशु-विभाग था और फिर हरणी के पुल के पास पैठ समाप्त हो जाती थी। एक स्थान पर पिंजड़ों मेें आठ दस मैनाएं और पचीस तीस तोते बिक्री के लिए रखे थे। पीतल के चमकदार पिंजरे में एक काकातुआ था जो अपनी लाल गरदन की थरूर से एंेठ रहा था। एक ओर बहुत से तीतर बटेर पिजड़ों में बंद थे।

मैने बल्लू काका को इन सब पक्षियों की जानकारी दी। तीतरों का जिक्र करते समय मैने जानबूझ कर बात पर कुछ रंग चढाया। किसी जमाने में लखनऊ में बटेरवाजी के षौक में लोग किस हद तक डूबे हुए थे। और इस बात को ले कर किस प्रकार भयानक दंगा फिसाद तक हो जाया करता था। इसका वर्णन किया। बुढ़ऊ ध्यान से सुनते जा रहे थे। उनकी नजर तीतरों के पिजंडे पर ही जमी रही। पिंजड़ों के मालिक से उन्होंने उर्दू में बात की और तीतरों की लडाई दिखाने की फरमाइष की। तीतरवाला मुसलमान था। उसे लगा कि ये कोई विगड़े हुए नबाव है जो अपने अरदली के साथ षौक की चीजें खरीदने निकले है। क्या कहा जा सकता है। तबीयत आ जाय तो सारे पिंजड़े एकसाथ खरीद लें। उसने झुक कर सलाम किया। एक मैली धोती बिछा दी और तीतरों की लड़ाई षुरू हुई। बुढऊ अत्यंत दिलचस्पी से देखते रहे। तीतरवाज लहजेदार उर्दू में षेर पर षेर सुनाता जा रहा था। और तीतरों को उŸोजित करता जा रहा था। बेटा, दिलवर, यार, षगिर्द प्यारे, पटठे इत्यादि संवोधनों की खैरात हो रही थी। आखिर काका का मन भर गया। उन्होंने जेब से बटुआ निकाल कर तीतरवाज को एक रूपया इनाम दिया।

आगे चल कर हम पषुविभाग में पहुंचे। वहां कुछ खास रंगत नही थी। कुछ गाय बैलों से टकरा कर हम वापस लौटे। फिर से गुजरी के मध्य में आ पहुंचे। यहां कबाड़ी बाजार था। अनेक नयी पुरानी अकल्प्य चीजों के ढेर लगे हुए थे। हम इसी प्रकार की एक दूकान के सामने खड़े रहे। बल्लू काका ने सिंगार सुलगाया। छाता बंद किया। फिर दंाये बांये नजर डाल कर पूरी गुजरी का रागारंग देखते खड़े रहे।

इतने में एक अधेड़ उम्र का मुसलमान वहां से गुजरा। उसकी आंखों में रसिकता और चतुराई के मेल से उत्पन्न विदग्धता का भाव था। सुरमे से रंगी आंखें बड़ी भेदक और कमनीय लग रही थी। षायद माषूका से वस्ल के लिए जा रहा होगा। वरना आंखों में इतनी भावकुता कैसे उमड़ती। बल्लू काका को देखते ही उसके मुंह से अनायास उदगार निकल पड़े। ''वल्लाह क्या चीज है।' ' फिर मेरे कान में कहा, '' क्यों भाई बिकाऊ है क्या ?'' मै कुछ जबाब दू ं उससे पहले ही बुढऊ चहक उठेः। ''जनाब यह चीज कब की बिक चुकी है। अब तो कुछ ही दिनों में खरीदार कब्जा लेने को आने वाला है। काका हंसी आ आवेग सभाल नही पा रहे थे। उस निर्मल हास्य की ऐसी फुहारें छूटी िकवह रसिक भी उनमें नही गया। इस जिंदादिली का वह कायल हो गया । आंखों की आंखों में इस आंनद को समेट कर वह अपनी राह चला गया और हम चांपानेर दरवाजे से तांगा कर के घर लौट आये।

72

सम्राट त्रिमूर्ती

1. ऐष्वर्य की कवायद

भारत के बहुत से राजाओं से मै मिला हूं। कई बड़े महाराजाओं के निकट संपर्क में रह चुका हूं। बर्लिन की चान्सलरी में हर हिटलर और रोम के पैलेस द बंनीजिया। में मुसोलिनी के दर्षन भी किये है। परंतु कएछत्र सŸाा के इन सारे प्रतीकों का कोई स्थायी प्रभाव मेरे मानस पर नही पड़ा। इसके विपरीत जिन्हें कभी न भुलाया जा सके ऐसे तीन सम्राटो की मुलाकान मेरे स्मृत्याकाष में षुक्र ब्रहस्पति और मंगल के ग्रहों की तरह अपनी विषिश्ट तेजस्विता क ेवलय लिये सदा चमकती रही है।

1937 के मई में एक रोज षाही पैगाम आया। हम लंदन के मषहूर होटल ग्राॅवनर हाउस में ठहरे हुए थे। सम्राट छठे जार्ज से मुलाकात का सौभाग्य हमें मिलने वाला था। पैगाम में इसी की अधिकृत सूचना थी। हमारे महाराजा और उनके साथ हमें भी यह दुर्लभ गौरव प्राप्त हुआ इस से हमें तो आंनद हुआ ही पर हमसे भी अधिक आनंद हमारे मित्रों को हुआ। जिन्हें यह सौभाग्य नही मिल सका था वे भीतर से हमारे भाग्य की ईर्श्या करते हुए भी प्रकट रूप से हमारा अभिनंदन कर रहे थे। षीघ्र ही यह बात हमारी पूरी मित्रमंडली में फैल गयी। मुलाकात का दिन पास आता जा रहा था। उसके तीन दिन पहले हमें षाही महल के प्रधान प्रबंधक को ओर से एक और पैगाम मिला। मुलाकात के समय हम जो पोषाक पहनने वाले थे। जिन जवाहरात से अपने आप को षोभायमान करने वाले थे। जो तमगे आदि छाती पर सजाने वाले थे, उस सारे लवाजिमे के साथ मुलाकात के रिहर्सल के लिए षाही महल में उपस्थित रहने की सूचना हमें दी गयी थी।

इस संसार में सारी बातों का पूर्वज्ञान हमें हो जाय ऐसा षायद ही कभी होता है। बहुत सी बातें तो अनुभव के बाद ही समझ मंे आती है। मौजूदा परिस्थिति हमारे लिए अभूतपूर्व थी। खैर, नियत समय पर हम अपने पूर्वजों की परंपरागत हिंदू पोषाक में सज्ज हो कर और बाकी सारा साजोसामान साथ ले कर महल में उपस्थित हूए। पोषाक की संपूर्णता और औचित्य के विषेशज्ञों ने हमारी जांच की। हमारी देययश्टि की कड़ी परीक्षा हुई। राहोरसूम के किसी धुरंधर जानकार ने बादषाह की मुलाकात का महत्व हमारी यज्ञ बुद्धि में ठसांया। अंत में षहषाह के पास किस तरह जाना कहां हो कर जाना, हाथ किस प्रकार मिलाना कब, कैसे ओर कितना झुकना इत्यादि सूचनांए साभिनय दी गयी। हमारी चमड़ी के रंग को छोड कर बाकी सब बातों से उनका समाधान हुआ हो, ऐसा लगा। फिर भी चलते समय षाही प्रधान संचालक ने इस बात की फिर से खातिरजमा की कि हमने सारी मुलाकतों के कवायद को आत्मसात कर लिया है और कहीं किसी प्रकार की गलती की तो कोई संभावना नही रही।

षाही मुलाकात का दिन आया। षरीर मन और आत्मा तीनों अस्वस्थ हो उठे। मुलाकात की सफलता की चिंता ने बेचैन कर दिया। इस मानसिक तनाव की हालत में अग्निपरीक्षा पूरी हुई। जरा सी भी गलती किये बिना रिहर्सल में प्राप्त सूचनाओं के अनुसार हमारा जूलूस संपूर्ण अनुषासन और गंभीरता के साथ बडे बडे कई कमरों को पार कर के सम्राट और सम्राज्ञी के कमरे में पहुंचा। अब रिहर्सल में सिखाया गया था उसमें रŸाी पर भी परिवर्तन किये बिना हमें सम्राट और सम्राज्ञी से हस्तांदोलन करना था। अफसर-ए- दस्तूरात एक के बाद एक हमारे नाम पुकारता जाता था। और एक क्षण के लिए हाथ मिलाया न मिलाया कर के हम एक ओर सरक कर अदृष्य होते जाते थे। आखिर परेड पूरी हुई और सब ने चैन की सांस ली।

मुलाकात के इस क्षणिक नाटक के लिए हम हिंदुस्तानियों ने क्या क्या सपने देखे थे; कितनी तैयारियां की थी और कहां कहां सिफारिष लड़ायी थी! किस रंग के किमखाब को षेरवानी अधिक जंचेगी औेर किस प्रकार का कालाबŸाू अधिक चमकेगा। यह निष्चित करने के लिए हप्तों बनारस की दूकानों के चक्कर काटे थे। दरजी महीनों तक रात रात भर जगे थे। हीरे के बटनों के लिए जौहरियों को बम्बई से बुलवाया गया था धारण करने योग्य जवाहरात पंसद करने में महाराजा साहब के कई दिन चिंता में बीते थे। और षाही मुलाकात के हम काबिल समझे जायं इसके लिए बड़े लाट साहब की सिफारिष प्राप्त करने के हेतु से उन्हें षिकार के लिए निमंत्रित कर के उनकी षाही खातिर तवाजह करनी पड़ी थी।

जो बेषुमार धन और पसीना बादषाह सलामत की मुलाकात का सम्मान प्राप्त करने लिए खर्च किया गया था उसके बदले में हमें सिर्फ एक क्षण के लिए सम्राट और सम्राज्ञी से हाथ मिलाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। हमारे आपके जैसे सामान्य जनों को इस से भारी निराषा हो सकती है, पर महाराजा को इससे अपूर्व आंनद प्राप्त हुआ। मैने इस पूरे तमाषे को जीवन के एक अनुभव के रूप में ग्रहण किया और सबक सीखा कि जीवन की बहुत सी तथाकथित सफलताएं अकसर किसी मरीचिका के पीछे भागने का ही दूसरा नाम होती है। इन बातों में

जिंदगी बरबाद करना हम सामान्य मनुश्यों का काम नही। ऐसी खुराफातें भारत के राजा-महाराजाओं को ही षोभा दे सकती है।

2. अभिजात संस्कारिता

बंसत ऋतु के कुछ दिन लंदन की भाग दौड में बिताने के बाद कुछ रोज आराम करने के इरादे से हम फ्रान्स के दक्षिणी तट पर पहुंची। नीस बहुत बड़ा षहर है; भीड भाड और चहल पहल भी बहुत ज्यादा है, अतः हमने केन को अपना केन्द्र बनाया। भूमध्य सागर को अनिमेश नेत्रों से देखने वाले राजविलासी होटल मार्टिनी में हम ठहरे। पहले ही दिन मन में विचार आया कि किसी रोज अनायास ही समुद्र तट पर या किसी कसिनों में पूर्वाश्रम के सम्राट अप्टम एडवर्ड व वर्तमान के डयूक आफॅ विंडसर अपनी प्रियतमा के साथ मिल जायं तो कैसी बहार हो। यह अभिलाशा के कुतूहल की तुलना लंदन में षंहषाह की मुलाकात के कुतूहल के साथ की ही नही जा सकती। एक चीज सिर आ पड़ी थी व उसे निभाना था; जब कि दूसरी ह्रदय की उत्कट आकांक्षा थी। विडंसर दंपती उन दिनों केन में ही रहते थे । कुछ ही दिनों में हमें उनकी सज्जनता और आडंबरहीनता के कई किस्से मालूम हुए। उनके सौजान्य के संबंध में तो हम इग्लैड से सुनते हा रहे थे।

हम केन पहुचे उस से कुछ ही रोज पहले विंडसर दंपती के सम्मान में पेरिस में एक अपूर्व समारंभ हो चुका था। उसके चित्र और वृŸाांत फ्रैन्च समाचारपत्रों में छपते रहते थे। एक अंग्रेज युवती कुछ रोज पहले ही आंरभिक परिचय की औपचारिकता को उलांध कर मित्रता के दायरे में आ गयी थी। एक रोज में उसके साथ केन के सागारतट पर चहलकदमी कर रहा था। वह फ्रैन्च जानती थी। उसने सुबह के अखबार में छपी हुई एक बात सुनायी। लतीफा यूं था पेरिस में एक दिन पत्रप्रतिनिधियों की एक पूरी फौज ने डयूक महोदय को धेर लिया। अनेक प्रकार के प्रष्न पूछे गये। एक प्रष्न तो प्रायः सभी लोगों ने पूछा था कि, '' डचेस आॅफ विडसर में आपने ऐसा क्या देखा कि पूरा साम्राज्य उन पर न्यौछावर कर दिया?'' फ्रेन्च प्रजा अपनी रंगीनी और जिदादिली में दुनिया से निराली है। इंग्लैड में ऐसा प्रष्न षायद ही किसी ने पूछा होता लेकिन फ्रंेच प्रजाजन जिंदगी के रसियां और उसका समग्रता से उपयोग करने वाले लोग है। औपचारिकता के बंधनों से कोसों दूर। इधर डयूक साहब भी जिंदादिली में किसी से कम नहीं। उन्होंने मुस्कराते हुए जबाब दिया, '' डचेस साहिबा बड़ी स्वाभाविक और विनोदप्रिय नारी है। और सबसे बड़ी बात यह यह है कि हमारे मन मिल गये है। इसके तंुरत बाद वे चले गये थे। इस उŸार को फ्रेंच समाचारपत्रों में अत्यधिक प्रसिद्धि मिली और डयूक साहब के जीवनदर्षन और हाजिरजवाबी की हार्दिक प्रषंसा की गयी। फंेरच प्रजा ने उन्हें एकमत से जीवन का षिल्पी घोशित किया। मेरे साथ वाली लड़की बोली, बडभागी है यह स्त्री जिसे ऐसा चाहने वाला मिला। उसकी खातिर आधी दुनिया की बादषाहत को ठुकरा दिया।' '

धूमते हुए हम केन के मुख्य कसिनो में जा पहुंचे। रंगराग का वह अद्‌वितीय केन्द्र माना जाता है। हमारी मंडली के अन्य लोग भी आ पहुंचे। धीरे-धीरे कमरा भर गया। रोषनी के रंग बदले; आंरकेस्ट्रा के सूर बहने लगे और एक के बाद एक युगल नृत्य में षरीक होने लगी। पूरा मजमा रांगरंग में मस्त हो गया। समय के अस्तित्व से बेखबर ; मौजूदा क्षण के उपयोग में आंकठ रत । इतने में एक जोड़ा उनके लिए आरक्षित होता गया ज्यों ज्यों नाचने वाले युगलों में से प्रायः सभी हाथ या रूमाल हिला हिला कर उनका अभिवादन करने लगे। हमने समाचारपत्रों में उनके चित्र देखे थे। अतः पहचानने में देर नही लगी कि यहीं वे विडसर दंपती है। हमसे कोई पांच गज की दूरी पर उनका टेबल था। राागरंग फिर षुरू हुआ। नृत्य और संगीत की बेहोषी में लोग डूब गये। हमारे टेबल पर हमारी महारानी साहिबा थी। कुछ राजकुमारियां और राजकुमार भी थे। वह अंग्रेज लड़की भी थी। बदतहजीवी का एहसास होने के बावजूद हमस ब उन्हें घूर घूर कर देखें जा रहे थे।

मध्यरात्रि होने में कुछ ही देर होगी कि विडसर दंपती उठे और जाने लगे। जाते जाते हमारे अपार आष्चर्य के बीच वे हमारे टेबल पर रूके। हम भारतीय थे यह तो उन्होंने पहचान ही लिया था। बड़ी आस्था से उन्होंने सब

के नाम पूछे। राजकुमारियों के गाल थपथपाये। इधर उधर की और बाते की। हससे मिलकर उन्हें बहुत खुषी हुई यह बात अत्यंत स्वाभाविक और अनौपचारिक ढंग से कही। उनके इस वर्ताव से हम आनंदविभोर हो गये। बादषाहत के ताज और आधी दुनिया के साम्राज्य को ठुकरा कर सामान्य मनुश्य बनना पंसद करने वाले इस अभिजात पुरूश और उसकी सहचारिणी को देख कर जो आंनद हुआ वह आज भी याद आने पर हर्श का रोमांच उत्पन्न कर देता है।

3. बुझा हुआ चिराग

लंदन में सम्राट जार्ज शश्ठ के राज्यारोहण की स्मृति में पत्रा महाराजा के निजी सेवक होने के नाते हम पर 'किग्ज कमिषन' नामक फौजी सम्मान इनायत फरमाया गया था। अतः भारत लौटते ही मुझे लेपटनन्ट के रूप में मेरठ की 1789 ब्रिटिष लान्सर्स नामक बटालियन में तालीम के लिए जाना पड़ा। सुबह पांच बजे उठ कर घोड़े का खरहरा और घुड़सवारी करना मुझे पंसद तो नही था। पर करना पड़ता था। फौजी जीवन का यह अनुभव नया था। 1847 के गदर से सम्बन्धित होने के नाते मेरठ के प्रति मेरे मन में अपार कुतूहल था। मेरठ शंठयंत्र केम के बाद वह भारतीय क्रंात्रिकारों का भी प्रधान केन्द्र बन गया था। यह आकर्शण भी था ही। पर मेरठ की फौजी जिंदगी नीरज थी। उसमें कुछ रच उंडेलने के लिए हम सप्ताह में एक बार दिल्ली जाते । एक दो या कभी कभी तीन सिनेमा देखते; रात को इम्पीरियल सेसिल, मरीना, या मेडन जैसे किसी षानदार होटल में खाना खाते; समय होता तो गाने भी सुनते; और आनंद प्रमोद में दिन बिता कर आधीरात बीते दिल्ली से निकल कर भोर होने से पहले मेरठ पहुंच जाते।

नागरिक और सैनिक जीवन के बीच के भेद के विशय में बहुत कुछ सुना था। अब प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। मै कोरा नागरिक ही नही था। कुछ अंषों में कवि और कलाकार होने का भी दावा रखता था। अतः मुझे इन दो जीवन प्रणालियों के बीच का भेद आकर्शक लगने के वजाय भयावह लगने लगा। फौजी जीवन का अर्थ है अनुषासन; और वह भी जड़ अनुषासन की पावंदी। यह मेरे स्वभाव के अनुकूल नहीं था मेरे मुक्त और स्वैरविहारी मानस की यह अनुषासन माता पिता ने लड़के की मरजी के खिलाफ जबरदस्ती ब्याह कर लायी हुई बहू के समान अप्रिय और अरसिक लगता था। इस जिंदगी को कुछ सहय बनाने के लिए मैने अपने कैप्टन मेजर, कर्नल, आदि अफसरों को क्लब में पार्टियां दे-दे कर कुछ हद तक अपने अनूकूल बना लिया था। लेकिन कुछ भी कहिये, हम ठहरे तालीम हासिल करने वाले षिक्षार्थी अतः हमारी यह अस्थायी जिंदगी तब मिला कर सुख की अपेक्षा दुख का ही कारण बन पायी। इस अनिवार्य अनुषासन की तालीम से एक फायदा भी हुआ। आज के उŸारदायित्वहीन युग में वे पुराने संस्कार बड़े उपयोगी सिद्व हुए। उनकी काययाबी से कई बार तो मुझे बेहद आष्चर्य हुआ है। इस से यही सत्य स्थापित होता है कि जीवन का कोई भी अनुभद नितांत निकम्मा नही होता। विचित्र से विचित्र अनुभव भी किसी विकट परिस्थिति में हृदय को धैर्य बंधा जाता है।

मेरठ की जिंदगी एकरस तो थी ही; जबरदस्ती लादी हंुई होने के कारण अप्रिय भी थी। ऐसे नीरस माहौल में एक अविस्मरणीय अनुभव हुआ। एक दिन षामको हम धुमने निकले। छावनी की लंबी चैड़ी सड़कें यातायात के अभाव में सुनी पडी थी। रास्ते में एक भिखारी जैसा दिखाई देने वाला मिस्कीन मुसलमान मिला। मैले कपड़े, बढे हुए अस्तव्यस्त बाल, पर आंखों मेंे गुमान की झलक। कंधे पर एक फटा हुआ मैला तौलिया पड़ा था। उसे देखते ही हमारी मंडलों में से एक मजाकिया साहब ने षरारत से कहा, '' सलाम आलकुम, बंदानवाज।' ' तुरंत उस फटेहाल मुसलमान ने कंधे पर का चिथड़ा जमीन पर बिछाया। फिर किसी सिंहासन पर बैठ हो ऐसी अदा से उस पर बैठा, और कोरनिष करते हुए उŸार दिया '' वालेकूम अस्सलाम।' ' फिर एक षब्द भी बोले बिना गमछा झटक कर कंधे पर डाला और आगे बढ़ गया।

मेरे समझ में यह पहली नही आया। मित्र से पूछा। उन्होंने कहा, '' ये जनबा मुगल सल्तनत के अंतिम प्रतिनिधि है। ब्रिटिष सरकार इन्हें मुबलिग चालीस रूपये सालाना पेन्षन देती है। हम लोगों के सलाम का

स्वीकार वे सामान्य मनुश्यों की तरह खडें-खडे तो कर नही सकते, और षाही तख्त यहां है नही। अतः वे तौलिया जमीन पर बिछा लेते है और उसी को तख्ते ताऊस मान कर लोगों के सलाम का प्रत्युŸार देते है।' '

73

गांधी इस देष में अभी जिंदा है।

सन् 1947 की 15वीं अगस्त का दिन कभी का इतियास में विलीन हो गया है। लेकिन भारत के विभाजन की विभीशिका को हृदय मेंें समा कर लाला फिरोजचंद अब भी जीवित है। पष्चिमी पंजाब के मुटगमरी जिले में स्थित हड़प्पा के प्राचीन अवषेशों का यह चैकीदार अपनी आंखों से अपनी संपति का विध्वंस अपनी स्त्री के षील का हनन और अपने निश्पाप बालकों की हत्या देख चुका था। विभाजन के परिणाम स्वरूप उसकी स्मृति पर जो लाषों के ढेर चिने जा चुके है। उन्हें भेद कर आजादी का आनंद उसके हृदय तक नही पहुंच पाता। एक रोज पाकिस्तान सरकार के प्रतिनिनिधयों ने उन अवषेशों की विशण्ण प्रतिमा जैसा फिरोजचंद हिजरत करने वाले स्थिति की उसने केन्द्रीय पुरातत्व विभाग को सूचना दी। एक भी आंसू वहाये बिना अपनी विपदा की कहानी उन्हें सुनायी। विभाग ने उस का केस दर्ज कर लिया। पर न तो उसे नौकरी दी, न आजीविका का अन्य कोई साधन। अन्य षरणार्थियों की तरह फिरोजचंद भी मेहनत मजदूरी कर के जीवनयापन करने लगा।

लंदन भेजी जाने वाली भारतीय कला-प्रदर्षनी की दिल्ली के किसी सरकारी महल में स्थायी रूप से स्थापना होने वाली है, यह सुन कर फिरोजचंद के हृदय में प्राचीन कला के अवषेशों का आकर्शण फिर से जाग्रत हुआ। उसने फिर एक बार पुरतŸव विभाग में जा कर अपने अतीत के अनुभव और सेवाओं के आधार पर काम की याचना की। मानो रोटी का टुकडा़ फेंक रहा हो ऐसा एहसान जता कर विभाग के किसी अफसर ने उसे कला प्रदर्षनी के अस्थायी चैकीदार के रूप में मुबलि साठ रूपये माहवार के वेतन पर बहाल कर दिया। इस से फिरोजचंद का पेट भरा हो या न भरा हो, अफसर महोदय को कर्तव्य-पालन का संतोश अवष्य प्राप्त हुआ होगा।

सन 1948 के दिसम्बर का दूसरा सम्पता था। मैं अपने एक कलाकार और एक एंजीनियर मित्र के साथ प्रदर्षनी देखने गया था। मुख्य द्वार पर चैकीदार खडा़ था। उसके चेहरे पर उत्तरदायित्व और आत्मश्रद्धा का ऐसा भाव भा मानो वही उन कलाकृतियों का रचयिता, अधश्ठाता और संरक्षक हो । इस आदमी की आंखे असााधरण थी। उनमें रज की ग्रमख्वारी थी या रोश की चिनगारी, यह कलाना मुष्किल था। यह कुछ भ हो, उसने मुझे आकर्शित किया इसमें कोई षक नहीं। प्रदर्षनी में अनेक चीजे देखीं, पर मेरे मन में तो इस चैकीदार की ही मूर्ति अंकित हुई।

फरवरी में जब फिर से दिल्ली जाना हुआ, तब फिर प्रदर्षनी देखने गया। द्वरा पर उसी चैकीदार को दख कर आदंद हुआ। अजनबी होने पर भी वह पूर्व परिचित लगा। हृदय में उसके प्रति सद्भव तो अभी उत्पन्न हो चुका था। जब उसे पहली बार देखा था। अब की बार समभाव के पौधे पर आत्मीयता का फूल खिला। प्रदर्षनी देख कर बाहर आया तो चैकीदार से गपषप करने की इच्छा को रोक न सका।

' 'लाल, यह यक्षिणी की मूर्ति हमें बहुत पसंद आयी।' '

' 'क्या बात है भैया, हम तो जितनी बार उसे देखते है, नयी मालूम देती है।' ' इस उत्तर से वह चैकीदार की अपेक्षा कवि या कलाकार अधिक मालूम दिया।

मैंने कहा, ''ऐसा लगता है, मानो कोई अद्भुत स्त्री अपने प्रियतम की राह तकते न मालूम कब से खडी़ ह। पर प्रियतम तो आया नहीं। षायद आयेगा भी नहीं।' '

' 'कहा से आये? हो तब आये न।' ' अब लाला की आंखों में रोश और षोक दोनो स्टपश्ट हो उठे।

' 'लाला, आप कहां के रहने वाले है?''

‘ ‘बाषिन्दे तो पंजाब के है, साहब, लेकिन अब बसते है दिल्ली में।’ ’ लाला को षायद कुछ और भी कहना था, पर कह न सका। मैंने उसकी भावनाओं को स्पर्ष करने के इरादे से पूछा, ‘‘बालबच्चे है?’’

‘ ‘थे किसी जमाने में। अब नहीं है। अब तो अकेला हूं।’ ’ आंखों के सामने उभर आने वाले बीते हुए कल को मानो उसने जोर से अवहेलना की खाई में धकेल दिया। फिर हाथ मसल कर उसकी स्मृति को भी झटक दिया। उस दावग्नि में अपने स्वस्व की आहुति चढा कर आने वले विस्थपितों की कडुआहट से मैं परिचित था। उसे अत्यंत स्वाभाविक मान कर हमदर्दी भी व्यक्त की है। परंतु फिरोजचंद तो मानो इस सारो कालकूट को घोल कर पी गया था, पचा गया था।

‘ ‘माफ करना भाई, अगर अनजाने में आपका दिल दुखाया हो तो। वैसा इरादा नहीं था।’ ’ मैंने सहृदयता से क्षमा मांगी। लाला की कहानी तब तक मुझे मालूम नहीं थी। लेकिन इस के बाद उस दुख भरे इतिहास के कई पृश्ठों से परिचय हुआ।

इतने में अमरीकन दूतावास की एक षानदार मोटर आकर रूकीं उसमें से उच्च अधिकारी जैसे दिखाई देने वाल चार आदमी उतरे औश्र चपलता से सीढ़िया चढ़ने लगे। चैकीदार ने टिकट मांगे। टिकट किसी के पास नहीं था। एक साहब ने हंसते हुए, पतलून की जेब से पांच का नोट निकाला और चैकीदार के हाथ में थमा दिया। फिर अर्थपूर्ण स्मित करता हुआ वह अंदर चला गया। चैकीदार चुप रहा। मुख्य द्वारा के बराबर में ही कला-प्रदर्षनी द्वारा संचालित चित्रों की दूकान का। उस के विक्रेता पर क्षण भ्ज्ञर के लिए दरवाजे की निगरानी का कार्य सौप क रवह सीढ़िया उतरने लगा। मुझ से कहा, ‘‘माफ करना भाई साहब, मैं अभी आया।’ ’

वह नीचे जा कर चार-चार आने के चार टिकट खरीद लाया और अपने स्थान पर आ खडा हुआ। मेरे आष्चर्य की सीमा न रही। मैंने तो सोचा थ कि पांच का नोट वह बिला तकल्लुफ जेब में डाल देगा। इस देष का यही नियम है और सब जगह यही होते देखा जाता ह। पर षीघ्र ही मेरे विचार के कारण मुझे लज्जित होने का मौका आया।

लाला ने बातचीत आगे बढायी। कैसे-कैसे लोग प्रदर्षनी देखने आते है और कौन कैसी टीका-टिप्पणी करता है इस के कुछ नमूने पेष किये।

एक प्रौढ़ सज्जन आते है। हाथ में मोटी सी किताब होती है। बस, लिखे जाते है। कभी मूर्तियों के पास खडे रहते है। कभी एकटक चित्रों को देखते रहते है। फिर लिखने लगते है। कई दिनों से आते है। पर क्रम यही है। जरूर कोई विद्वान होंगे।

एक नौजवान आता है। उसका लिबास, उसकी लापरवाह और तेजस्वी आंखे, चेहरे पर का विशाद, सब घोशणा करते है कि वह कलाकार है। अपनी पसंद की मूर्तियों के सामने घंटो खडा रहाता है। कभी बैठकर चित्र बनाना है या नहीं इसकी परवाह किये बगैर। प्रेमी जो ठहरे।

कुछ रोज पहले एक परिवार आया था। स्त्री, पुरूश और एक बच्चा। भीतर जाते ही बच्चा रोने लगा। पुुरूश बच्चे को लेकर बाहर आ गया और उसे बहलाते हुए बरामदे में चहलकदमी करने लगा। कुछ देर चक्कर लगा कर स्त्री भी बाहर आ गयी। बाहर बाग में रखे हुए पत्थर के नंदी को देख कर दोनों हंसे और चले गये।

एक कमसीन जवान आता है। आंखों में काजल लगाता है। चूडीदार पायजामा, सफेद कुरता और जवाहर-जाकिट पहनता है। हर क्षण उसके पांव थिरकते रहते है। कमर लचकाता है, आंखें नचाता है, हाथों से चित्र-विचित्र मुद्राएं बनाता है। जरूर कोई नृत्यकार होगा। लेकिन मूर्तियो या चित्रों को दखने के बजाय प्रदर्षनी देखने आने वाली

खूबसूरत लड़कियों को ही देखते रहता है। नजराज के कमरें में नियमित रूप से आ कर घंटो-खडी रहने वाली एक संुदरी से स्मित का आदान-प्रदान करके चला जता है।
इसी प्रकार की बाते चल रही थी। इतनेमें वे अमरीकन बाहर आ गये। फिरोज़चंद ने चार टिकट और बचे हुए चार रूपये पंाच का नोट देने वाले सज्जन के हाथ में रख दिये। उसे आष्चर्य हुआ, चेहरो पर मुस्कराहट आयी। लेकिन इस बार की मुस्कराहट का आष्य अलग था। उसने एक रूपय इनाम देना चाहा। लाला ने नम्रता से अस्वीकार कर दिया। जाते-जाते अमरीकी सज्जन बोले, ''गांधी स्टिल लिब्ज इन दिस कंट्री। (गांधी इस देष में अभी जिंदा है।)'' मेरी अंतरात्मा से माने प्रतिध्वनि आयी, 'मैं अनाहूत ही कह उठा ''ऐड ही विल लिव टिल टूथ लिब्ज। (और तब तक जिंदा रहोगा तब तक सत्य जिंदा है)''।

गांधी की आत्मा को पांवों तले रौदने वाली घटनाएं दिल्ली में जाने-अनजाने आये दिन होती रहती है। गंाधीजी के सेवक, साथी और अनुयायी कहलाने वाल लोग ही ये लज्जास्पद कार्य करते है। ऐसे वातावरण में सत्य के ऐसे न मालूम कितने अनजान चैकीदार गांधी की चेतना पर पहरा देते रहते है। हमारे दंभ के कारण हमें इनकी खबर नहीं होती पर गांधीजी के पुण्यप्रताप से ऐसी घटनाएं होती है अवष्य। गांधी वाकई अभी इस देष में जिंदा है।

74

पराक्रम की प्रतिभा

लंबे अरसे के बाद पंडित जवाहरलाल जी से जी भर कर निकटता से मिलने का मौका मिला। कभी भी देखिये, पंडितजी इतने व्यस्त और इतने अधिक लोगों से घिरे हुए रहते है कि उनसे मिलना दूभर होता है। वे खुद भी एकांत और आत्मीयता के लिए स्वाभाविक रूप में बेचे हो उठते है। इस बैचेनी को व्यक्त करने के उनके पास दो मार्ग है। जो अब तक बहुत प्रसिद्ध हो चुके है। एक उनका गुस्सा और दूसरा उनका हास्य। इनमें से गुस्सा तो सर्वस्पर्षी व सार्वजनिक है, पर हास्य में मर्यादाएं है। वह सब का प्राप्त नहीं होता। अकसर इसके अधिकारी होते है बच्चे। बालकों की उपस्थिति में पंडितजी का हास्य बिलकुल निष्छल औश्र निव्र्याज होता है। इतना ही नहीं, बालकों के संपर्क से वे एक प्रकार का बल और आनंद प्राप्त करते है।

भारतीय पी.ई.इन. केन्द्र के तत्वाधान में आयोजित साहित्यकारों की चैथी परिशद् का उद्घाटन करनके के लिए वे बडा़ैदा पधारे थे तब कुछ समय के लिए उनके निकट सहवास का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनके व्यक्तित्व का सौरभ और उनकी विभूति का तेज, इन दोनों सत्त्वों का एक साथ पड़ने वाला प्रभाव कितना संमोहक होता है, इस का प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। उनके अंतर का ऐष्वर्य कितना अभिजात है, इस से भी परिचय हुआ। और अस्तित्व के इन अनेकविध पहलुओं से यह सहनीय पुरूश का जीवन कौनसा स्वरूप गढ़ना चाहता है। जिंदगी के विविध सुर छेडकर उनमे से कौन सा संगीत प्रकट करने का पुरूशार्थ यह कर रहा है, इसका भी कुछ इषारा प्राप्त हो सका।

षनिवार को प्रातः नौ बजे वे हवाई-जहाज से बडौदा पहुंचे तब कुछ थके हुए से मालूम दे रहे थे। दिल्ली में जुकाम हो गया था उससे अभी पूर्णतः छुटकारा नहीं मिला था। परिशद् के मंच पर जाने से पहले उनके और राश्ट्रपति डाक्टर राधा कृश्णन के लिए संतरे का रस और ठंडी काॅफी की व्यवस्था की गयी थी। आवष्यकता महसूस होने पर, हाथ-मुंह धो कर कुछ देर सुस्ता लेने का भी इंतजाम था। ये दोनों व्यवस्थाएं सर्वथा आवष्यक और सार्थक सिद्ध हुई। व्यासपीठ पर आते-आते पंडितजी की थकान दूर हो गयी और उन्होंने राहत महसूस की। कुछ अनौपचारिक बातों ने उनके मुख पर स्मित बिखरे दिया। आंखो मे अमृत छलक उठा।

संतरे के रस का छोटा-सा प्याला मैंने उनके सामने रखा। पीने से पहले उन्होंने पूछा, ''क्या है?'' मैंने कहा, ''घबराइये नहीं। रंग बेषक भ्रामक है, पर रस के जितनी ही मधुर मुस्कराहट छलका कर बोले: ''चीजों का

रंगरूप छलने वाला हो, तो कोई हर्ज नहीं। इससे कोई विषेश नुकसान नहीं होता। पर आफत हो जाती है तब जब लोगों के मन छल करने लगते है। ' ' मैंने कहा, ''इस दृश्टि से आप यहां सुरक्षित है।' '

ठीक साढे-दस बजे सम्मेलन के अध्यक्ष डाक्टर राधाकृश्णन के साथ वे मंच पर आ पहंुचे। अपने स्थान पर बैठने से पहले उन्होंने पूरे समुदाय पर दृश्टि डाली। सब को नमस्कार किया। अपने अनुपम स्मित की भेंट उपस्थितों को दी और लोगो के हृदय की गहराई में से स्नेह का अध्र्य प्राप्त किया। पंडितजी जहां कहीं भी उपस्थित हो, स्नेह के आदान-प्रदान की ये प्रथाएं अब इतनी अनिवार्य हो उठी है कि उन्हें 'रस्मे नेहरू' कहा जा सकता है।

सरस्वती वंदना के बाद स्वागत-समिति की अध्यक्षा श्रीमती हंसा मेहता का भाशण उन्होंने ध्यानपूर्वक सुना। इसके बाद बडौदा विष्वविद्यालय के कुलपति बडौ़दा-नरेष महाराज फतहसिंगराव गायकवाड पंडितजी से परिशद का उद्घाटन करने की बिनती करने को खडे हुए। उन्होंने अपने वक्तव्य में पंडितजी का उल्लेख प्रथम श्रेणी के साहित्यस्रश्टा के रूप में किया। तुरंत पंडितजी उनकी और देख कर धीरे से स्वागत बोलने लगे, ''नहीं नहीं, मैं लेखक कहंा का। यह अतिषयोक्ति हो रही है।' ' प्रकट रूप में विरोध न करते हुए भी उन्होंने स्मित की लक्ष्मण -रेखा खींच कर अपने आपको मानो उपरोक्त वक्तव्य से अछूता रखा।

इसके बाद पंडितजी व्याख्यान देने खडे हुए। लोगों ने तालियां बजा कर हृदय से उत्स्फूर्त स्ने से उनका स्वागत किया। नेहरू जब मानव समुदाय के बीच घिर कर जनता के निव्र्याज स्नेह का आस्वादन करते है तब और भी अधिक आत्मलक्षी हो उठते है। पर्ववक्तओं ने उनके संबंध में जा ेभी प्रषंसात्मक उद्गार या महत्ता के भाव व्यक्त किये हों, उनके प्रति वे अत्याधिक जागरूक हो उठते है और बडी़ सावधानी से आगे बढ़ते है। इस प्रसंग पर भी वही हुआ कहने लगे कि उनके संबंध में यह जो कुछ भी कहा जाता है उस सब को सत्य मान लेने की आवष्यकता नहीं। एकाएक उनका सस्मित मुख गंभीर हो गया औरवे वक्तव्य के धाराप्रवाह में बहने लगे। नेहरू जब-जब ऐसी नम्रता प्रकट करते है त बवह कोरा औपचारिक दिखावा नहीं होता बल्कि उसमें सन्निश्ठा की सुगंध व्यक्त होती है। यह अंतर्भेद ही जनता के इस नायक को अन्य तथाकथित महापुरूशों से अलग कर देता है।

परिशद् के उद्घाटन का कार्य डेढ़ के बजाय बारह बजे ही समाप्त हो गया। डाॅ.राधाकृश्णन् और जवाहरलाल जी दोनों के भाशण अत्यंत संक्षिप्त हुए। मंच पर आने से पहले जिस कमरे में उन्होंने आराम किया था। उस में अब द्वारकापीठ के श्रीमत् षंकराचार्य पधारे हुए थे। उनकी राश्ट्रपति और पंडितजी दोनों से बातचीत हुई। इस संभाशण में बातचीत का सूत्र संपूर्णतः डाॅ. राधाकृश्णन् के हाथोंमें रहा। पंडितजी अधिकांष में श्रोता और मूक साक्षी की भूमिका निभाते रहे। किसी भी वार्तालाप के दरिमियान नेहरू जी को चुपचाप बैठे हुए देवना अपने आप में एक निराला अनुभव होता है। चेहरे पर व्यक्त उनके विविध मनोभाव अध्ययन के लिए बडा़ सजीव चित्र प्रस्तुत करते है। ऐसे मौन के समय अधिकांष में तो वे मानसिक आराम करते है या पहले हो चुकने वाली किसी महत्वपूर्ण बात के विशय में आत्मसमागम में डूब जाते है। इस ध्यान की की अवस्थमें उनके मुख पर विविध भावों की जो मुद्राएं उठती है वे किसी भी मनोविज्ञानिक के लिए सरस अध्ययन की सामग्री प्रस्तुत कर सकती है।

भोजन से पहले पंडितजी और राश्ट्रपति जी ने इस अवसर के लिए खास तौर पर आयोजित प्राचीन पुस्तकों और हस्तलिखित पोथियों की प्रदर्षनी का निरीक्षण किया। प्रदर्षनी का उद्घाटन तीसरे पहर तीन बजे डाक्टर जीवराज मेहता करने वाले थे। पर पहले का कार्यक्रम जल्दी समाप्त हो जाने की वजह से ऐसा न हो सका। खैर, लोगों का आनंद और कार्यकताांओं का उत्साह औपचारिक उद्घाटन की अपेक्षा इस में ही अधिक था कि पंडितजी प्रदर्षन देखें। प्रदर्षनी की अनेकविध वस्तुएं देखते-देखते भी उन्होंने दो-चार क्षणों की स्वतंत्रता प्राप्त कर ली। चाहे जैसा संयोजित कार्यक्रम क्यों न हो, उसमें से कुछ क्षणों के लिए अलिप्त होकर मानसिक मुक्ति का

अनुभव कर लेना जवाहरलाल जी की एक खासियत बन चुकी है। प्रदर्षनी विष्व विद्यालय के नये ग्रंथालय-भवन में आयोजित की गयी थी। भवन की विषालता व्यवस्था और स्थापत्य की प्रषंसा करते हुए और प्रदर्षनी की वस्तुओं का निरीक्षण करते-करते ही उन्होंने एक क्षण के लिए अलग खडे होकर मानसिक एकांत प्राप्त कर लिया। इस एकांत का वे अकसर ऐसी तन्मयता से उपभोग करते है कि उसमें खलल पहुंचानेकी किसी की हिम्मत ही नहीं होती। किसी फोटोग्राफर ने इस निराले एकाकीपन को कैंमरे की आंखों में बंदी किया जब वे माने चैक कर जागे। अब मुझे भी कुछ पूछने की हिम्मत हुई। मैंने कहा, ''अपके एकांत का स्पर्ष करने में डर लगता है। लेकिन ऐसे मौको पर आप बहुत गहरे खो जाते है।' ' उन्होंने कहा ''हर बार तो नहीं, कभी-कभी बेषक कहीं खो जाता हूं। इस समय तो मैं यह विचार कर रहा था कि ज्ञान के इतने विपुल भंडार का हमारे विद्यार्थी और अध्यापक सदुपयोग कर भी सकेगें या नहीं।' ' अधिक बातचीत हो सके उससे पहले ही वे फिर निरीक्षण कार्य में जुट गये। भीड़-भाड़ के बीच में भी पंडितजी को इस प्रकार से एकांत और मुक्ति का अनुभव करते हुए मैंने अनेक बार देखा है। ऐसा लगता है कि स्वागतकर्ताओं और पुलिस-अफसरों से सदा घिरे रहने वाले और पूर्वनियोजित कार्यक्रम की लीक पर चलने को मजबूर किये जाने वाले इस स्वतंत्रचेता पुरूश को बीच-बीच में लीक तोड़ कर अपनी ही राह पर चलने का क्षणिक षौक हो आता है। लेकिन सिर्फ क्षण कर के लिए ही। दूसरे ही क्षण वे फिर अनुषासन की डोर से नियंत्रित और नियोजित हो जाते है।

षाम को सार्वजनिक सभा में भाशण देने से पहले पंडितजी रोज़री स्कूल के बालों से मिलने गये। नेहरू बडौदा आने वाले है इस बात की खबर लगत ही रोज़री के प्रिन्सिपल ने स्कूल के दो बालकों को दिल्ली भेज कर उनके स्कूल का निमंत्रण पंडितजी से स्वीकृत करवा लिया था। एक तरह से यह बहुत अच्छा हुआ कि सार्वजनिक सभा में जाने से पहले नेहरू जी बच्चों से मिल लिये। इस कार्यक्रम के लिए सिर्फ दस मिनट तय हुए थे। पर पंडितजी ने पूरा पौन घंटा बच्चों के साथ बिताया और उनके हर कार्यक्रम में आनंद से भग लिया। रोज़री की छात्र-पलमेंण्ट की व्यवस्था और संचालन देख कर वे बेहद खुष हुए।

इसी खुषी को ह्रदय में बसा कर जब वे सभास्थान पर पहुंचे तब तक तो मैंदान में लोगों का सागर उमड़ पडा़ था। लोग तीन बसे से ही आ-आ कर इकट्ठे हा रहे थे। सिर पर चिलचिलाती धूप, दिल दहला देने वाली गरमी, पर लोग व्यवस्थापूर्वक बैठे रहे। पंडितजी के आते ही स्नेह की वर्शा के प्रतीक रूप तालियां बज उठी। पंडितजी को जब-जब ऐसा निस्सीम लोकस्नेह प्राप्त होता है तब वे लोगों के दुःखों की ओर अत्यंत संवेदनषील हो उठते है। लोगों को धूप में तपते देखकर आज भी उतना अंतःकरण भर आया। सभा के आयोजनकों पर उनका पुण्यप्रकोप बरस पडा़। भाशण षुरू करने से पहले उन्होंने इस असुविधा के लिए लोगों से क्षमा मांगी। यह कोरा दिखावा नहीं था बल्कि सचमुच ही उनका अंतःकरण द्रवित हो उठा था। इसी कारण उन्हें स्वस्थ होने में भी कुछ देर लगी। कैसा है इस आदमी का दिल? उस दिल के तार जनता के दिल के साथ किन अदृष्य संबंधो से बंधे हुए है? बात समझ मे नहीं आती। पर कुछ सहायता करते है भभूति व्यतिश्तजि पदार्थन आंतरः कोऽपि हेतुः।

इस देष के साधारण लोग के पास एक अनोखी लोक कसौटी है। कोई रहस्मय छठी इंद्रिय है जिसे षायद ही कोई धोखा दे सकता है। कोई बिलरला ही इस कसौटी पर खरा उतरता है। यह न ऐष्वर्य का लिहाज करती है, न ऐहिक उपलब्धियो का। इसके म नही कुछ निराले है। बिना किसी संकोच के कहा जा कसता है कि गांधी के बाद नेहरू ही इस लोक कसौटी पर खरे उतरने वाले एकमात्र सच्चे लोकपुरूश सिद्ध हुए है। औश्र इस लोकमार्ग पर चल कर वे लोकोत्तरता तक पहुंचे है।

षाम को विष्वविद्यालय की ओर से आयोजित उपवन-समारोह में एकत्रित स्त्री-पुरूशों से वह हर टेबल पर जा-जा कर मिले। इसके बाद श्री चन्द्रवदन मेहता द्वारा भवाई के रूप में प्रस्तुत 'होहोलिका' नामक लोकनाट्य उन्होंने देखा। देख कर बहुत खुष हुए। मानो उनकी पूरे दिन की थकान उतर गयी। नाटके के कलाकारों के साथ

उन्होंने फोटो खिचवाया। सारे कलाकारों की व्यक्तिषः सराहना की और सबके हृदय से स्नेह का अभिशेक प्राप्त कर के विदा हुए। नेहरू की प्रतिभा से लोग जितने प्रभावित होत है उससे कहीं अधिक उनकी चारूता से सम्मोहित होते है। यह एक ऐसा अमूर्त तत्त्व है जिसकी व्याख्या करना मुष्किल है। यह प्रक्रिया दुतरफा चलती है। लोग जहां इस चारूता से प्लावित हो कर विवष हो जाते है वहां पंडितजी लोगों के स्नेह से स्फूर्ति प्राप्त कर के नवपल्ववित हो उठते है। षायद यही कारण है कि वृद्धत्व उनके मुख पर छाने से डरता है। यह सही है कि यौवन तो अब षरमाने लगा है। पर वृद्धत्व निष्चित रूप से अबतक अपनी छया नहीं डाल पाया।

रात को नौ बजे विष्वविद्यालय के कुलपति महाराजा फतहसिंहराव गायकवाड के लक्ष्मी-विलास राजमहल में एक षांत और सादा भेजन समारंभ हुआ। सब मिला कर पंद्रह से अधिक लोग नहीं थे। राश्ट्रपति और पंडितजी दोनों कुलपति के मेहमान थे। महाराज के निजी दीवानखाने में प्रवेष कर के देखा तो एक अपूर्व दृष्य दिखाई दिया। बीच के सोफे पर कुलपति की माता महारानी षांतिदेवी के इर्दगिर्द बैठे थे राश्ट्रपति डाक्टर राधाकृश्णन् और पंडित जवाहरलाल नेहरू! जिन राजा महाराजाओं का सब कुछ जा चुका है या जाने की तैरूारी में है उन की ही एक पुरानी जमाने की वैभवमूर्ति के पास आज के लोकपराक्रम की साक्षात् प्रतिमा बैठी हुई थी। इतना स्र्वस्पर्षी संक्रमण और किसी देष में हिंसा के बिना षायद सम्पन्न नहीं हो पाता। गांधी, नेहरू और पटेल के देष में ही यह संभव हो सका। महाराज फतहसिंह हमारे साथ ही खडे थे। इस दृश्य को देख कर उनके मुख पर जो अकथ्य सांत्वना छायी, श्रद्धा के रस से प्लावित सुरक्षा की जो प्रतीति हुई उसका वर्णन षब्दो द्वारा नहीं हो सकता।

जवाहरलाल नेहरू! कैसा जादूगर है यह आदमी! कैसा कीमियागर है। वाणी से नहीं, तर्क से नहीं, वाग्वितण्डा से तो बिलकुल नहीं, सिर्फ सीधेसाधे आचार के उदाहरण से वह किसी के भी निराष जीवन के मरूस्थल में आषा का पौधा लगा सकता है। यह काम उन्होंने सिर्फ विगतश्री राजा-महाराजाओं के लिए ही नहीं किया। बल्कि समस्त प्रजा के अतिसाधारण लोगों के लिए भी किया है। वैयक्तिक जीवन में, राजानीतिक क्षेत्र में या अंतर्राश्ट्रीय संघर्शों में उन्हें जहर न पीना पडा़ हो, सो बात नहीं। पर इस हलाहल को वे पचा गये है। वे गांधीजी के सच्चे षिश्य और साथी सिद्ध हुए है। सत्य उनका षस्त्र है, प्रेम उनकी ढाल है और विर वृत्ति ही उनका जीवन है।
भोजन का ढंग ‘बूफे’ प्रकार का था अतः बातचीत की और हलन-चलन की आजादी थी। खाना खाते-खाते और उसके बाद भी सब को उनके निकट सहवास का सुख मिला। भोजन के बाद षीघ्र ही डाक्टर राधाकृश्णन् तो सोने चले गये।

सुबह साढे-सात बजे विमानतट पहुंचना था। परन्तु लोगों के मन की इच्छा को पहचान कर पंडितजी रूक गये। इससे सबको निस्सीम आनंद हुआ। कुछ दिनों पहले ही वे जापान यात्रा से लौटे थे। उस प्रजा के पुरूशार्थ और परिश्रम से वे अत्याधि प्रभावित हुए थे। फिर भी उनके दर्षन और दृश्टि में एक प्रकार की तटस्थता औश्र सर्वग्राहकता थी जिसका अनुभव वार्तालाप में कदम-कदम पर हो रहा था।

सब से पहले विष्वविद्यालयों और विद्याथियों की बात छिडी़। हमारे काॅलिजों में विद्यार्थी जिस प्रकार की जिंदगी व्यतीत करते है और विद्यापरायणता एवं ज्ञान-संचय के नाम पर जिस षून्य की उपलब्धि करते है इसका पंडितजी को हार्दिक दुःख था। इससे भी अधिक विचलित और चिंतिंत वे इस बात से थे कि सिर्फ अपने देष में ही नहीं बल्कि पूरी दुनिया में जीवन के तानेबाने दिन-व-दिन अस्तव्यक्त और झिर-झिरे होते जा रहे है जिसकी परिणति मनुश्य जीवन की बुनियाद को कमजोर करने में हो रही है। छिछले जीवनमूल्य जीवनपट को अधिकाधिक षीर्ण बनाते जा रहे है। इस बात को लेकर पंडितजी के हृदय में गहरा विशाद और तीव्र चिंता दिखाई दिये। अपने देष के विद्यार्थियों की विचारधार के प्रति खेद प्रकट करते हुए उन्होंने इंग्लैड का भी उदाहरण दिया। वहां के कुछ अन्य विष्वविद्यालयों के छात्र भी यह कहने लगे है कि उन्हें आॅक्सफर्ड या केम्ब्रिज की विद्या-परंपरा नहीं चाहिए। उसमें ही कौन से सुरखाव के पर लगे हुए है? ज्ञान के व्यवहारीकरण में

नहीं बुराई है? . . . इत्यादि। इस विचारधारा ने उन्हें अत्याधिक मानसिक क्लेष पहुचाया है। किसी भी अच्छी परंपरा के प्रति इस प्रकार का अहंकारयुक्त रूख विकास की निषानी नहीं बल्कि क्षुद्रता का प्रमाण है। अपने यहां भी विद्यापरायणता की युगों पुरानी परंपराओं के प्रति केवल आदर या सहानुभूति प्रकट कर देने से काम नहीं चलेगा। आवष्यकता है प्रामाणिक आचार और अस्खलित निश्ठा की, एक बुनियादी श्रद्धा की। इस के बिना भारतीय जीवन की बहुरंगी चुननिया के ताने-बाने मजबूत नहीं बनेगें।

विद्यार्थियों की बात करते-करते वे जापान की सामान्य प्रजा का जिक्र कर बैठे। इस प्रजा के षून्य में से परार्ध निर्मित करने के और अक्षरषः राख के ढेरों में से कुबेरोपम संपत्ति निर्माण करने के पुरूशार्थ से तो सभी परिचित है। लेकिन इस से यह नहीं मान लेना चाहिए कि यह प्रजा यांत्रिक जडता में ाान की गरिमा को भूल बैठी है। पंडितजी ने एक दूसरा पहलू सामने रखा। उन्होंने बताया कि जापानी प्रजा का लगभग एक तिहाई भाग एक या दूसरे रूप में, अत्यक्ष या परोक्ष रूप से विद्या की उपासना करता है। अपने यहां ऐसा समय कब आयेगा? एकाएक पंडितजी उदास हो गये और इतने लोगों से घिरे होने पर भी अपने अंतर की षून्यता में गहरे उतर गये। ‘हम’ और ‘हमारे’ सर्वनामों की सहायता से उनके ह्रदय का दुःख व्यक्त होने लगा। यह भी एक ध्यान देने योग्य बात है कि जब वे ऐसी बातों की चर्चा करते है तब उत्तम पुरूश के सर्वनाम एकवचन के बजाय बहुवचन का प्रयोग करते है। इससे वे जनता के दुःखों में समभागी और उसकी आकांक्षाओं के प्रतिनिधि होने की देहरी भूमिका निभा जाते है। पराक्रम की इस सजीवन प्रतिमा की यह षायद सब से अनूठी उपलब्धि है।

75

आदमीयत की सुगंध

आज दोपहर के ढाई बजे श्री रमणलाल बसंतलाल देसाई चिरनिद्रा में सो गये। रोज की तरह दो बजे समाचार पत्र पढ़ते-पढ़ते कुछ देर वामकुक्षि करने के लिए वे बिस्तर पर लेटे और उस नींद में से फिर नहीं उठे। षास्त्रकारों ने क्या इसी को कालनिद्रा कहा होगा?

उनके परिवार में सब दीर्घायुशी थे। उनके माता-पिता दोनों ने लंबी आयु पायी थी। अतः हम मित्र-स्वजन मजाक में कहा करते थे कि भाई साहब तो अस्सी के बाद ही जायेंगे। लेकिन वे तो सिर्फ बासठ वर्श की उम्र में इस तरह अचानक धोखा दे कर चले गये। करीब सप्ताह भर से उनके दांतों की पीड़ा बढ़ गयी थी। दांतों के डाक्टर से दांत निकलवा रहे थे। रोज दो-तीन दांत निकालने जाते थे। अभी कुछ रोज पहले ही मजाक में कहा था, ‘‘इस बासठ वर्श के बूढे को नकली दांतों की बत्तीसी लगवा कर तुम लोगों को तमाषा करना है।’ ’ आज तीन बजे दांतों की नयी बत्तीसी लगवानी थी। लेकिन अपने हमेषा के षरमीले स्वभाव के अनुसार, इस ‘तमाषे’ से बचने के लिए, उनसे आध घंटे पहले ही वे जीवन में से अदृष्य हो गये।

हमारी पैंतीस साल की मैत्री थी। जीवन की तरह साहित्य में भी उन्होंने मेरे साथ बडे भाई का नाता रखा और बडे अधिकार से इस दावे को निभाया। बुजुर्गी के इस अधिकार का पालन उन्होंने ऐसे निर्मल और निव्र्याज स्नेह से किया कि उसमें से हमारे स्नेहसंबंध का विस्तृत वटवृक्ष फला-फूला। इस संबंध के चहुंओर ऐसी स्वाभाविकता ने जन्म लिया कि उनके वात्सल्य की छाया बिना किसी संकोच के सदा मिलती रही।

इसीलिए आज पुराने संस्मरणों की मानों बाढ़ आ रही है। ह्रदय अब तक रूदन से अवरूद्ध है। अभी तो उनके षरीर का संस्पर्ष भी जीवित है। अंतमीन वाणी के बजाय मौन की ही बांछना करता है। परंतु बंधुता का कुछ ऋण होता है, मैत्री का कुछ कर्तव्य होता है। अतः आज एक व्यक्ति के रूप में नही, परंतु अनेक स्वजनों के ह्रदयोद्गार के एक प्रतिनिधि प्रवक्ता के रूप में यह अंजली प्रस्तुत करता हूं।

पैतीस साल पहले उनका 'षक्ति हृदय' नाटक हमने बड़ौदा में ख्ेाला था तब उनके निकट संपर्क का सौभाग्य पहली बार मिला था। ठिगना कद, तेजस्वी आंखें और सुकुमार वाणी वाले इस परम संस्कृत अंतर्वाह्र सुंदर पुरूश ने तब से ही हमें वष में कर लिया था। सामने वाले व्यक्ति को मूक आवष्वासन दे कर उसे अपना बना लेने की कला उन्हें षायद जन्म से ही अवगत थी।

लेकिन नहीं। वह कला नही थी। वह तो उनका जन्मजात नितांत सहज स्वभाव था। इस स्वभाव क बल पर ही उन्होंने हमें अपना बना लिया था। और इसके नींद तो मैत्री का विरवा दिन दूना रात चैगुना बढ़ने लगा। उनके वात्सल्य का देख पाया। उनकी जीवन-संगिनी सवर्गीया कैलाष बहनजी से भी आत्मीयता का संबंध रहा। धीरे-धीरे उनके षीलवंत और सौरभयुक्त दांयत्व का संरक्षण मुझे प्राप्त हुआ। अक्षय और सुधा तब छोटे छोटे थे। कैलाष बहनजी चली गयी तब रमणभाई पूरे पैतींस वर्श के भी नही थे। परंतु इस एकनिशठ आदमी के जीवन में फिर दूसरी स्त्री प्रवेष नही कर पायी। जैसे उनके जीवन की कविता ही खो गयी। उसके बाद 'नीहारिका' के इस कवि की कविता कभी कभी प्रकटी तो सही, पर पल्लवित नही हुई। तब से लगा कर महाप्रस्थान के इस दिन तक उन्होंने अपने षील के अमृत से अनेक स्त्री पुरूशों को तरबतर किया। अमृतसिंचन की इन फुहारों ने ही आज उनकी याद में अनेक हृदयों की आंसू से भिगा दिया है।

जीवन का आरंभ उन्होंने बड़ौदा के एक हाईस्कुल मंे षिक्षक के रूप में किया था। सन् 1914 में प्रथम विष्वयुद्ध षुरू हुआ था। उसी साल अंगरेजी साहित्य ले कर बी ए (आनर्स) किया। सन् 1919 में एम.ए किया। उसी साल षिक्षक की नौकरी छोड़ कर बड़ौदा सरकार की सेवा में प्रवेष किया। साधारण सहायक आरंभ कर के अमरेली जिले के प्रधान अधिकारी (सरसूबा) तक के महसूल विभाग के सर्वोच्च पद तक वे पहुंचे। इस लंबी राजसेवा के दरमियान उन्होनें जिस ईमानदारी उŸारदायित्व चरित्रसंपत्रता सत्यप्रियता और मानवता का परिचय दिया उस से व सिर्फ राजा और अधिकारियों के ही नही सुवर्ण चंद्रकों से उनका सम्मान किया तो लोगों ने उन्हें निश्ठाभरे अकृत्रिम स्नेह का नजराना दिया। इस निव्र्याज स्नेह से ही प्रेरणा प्राप्त करके उन्होंने अपने युगदर्षी उपन्यासों और कहानियों का सर्जन किया।

अब तक उनकी सŸार क करीब पुस्तकें प्रकाषित हो चुकी है। उनमें उपन्यास कहानी नाटक आलोचना, अध्यायनात्मक निबंध चिंतन एवं जीवन और संस्कृति में जिस प्रकार सरस्वतीचंद्र के रचयिता स्वर्गीय गोवर्धनराम त्रिपाठी के बाद कन्हैयलाल मुन्षाी का नाम उपन्यासकार के रूप में लोकप्रिय हो उठा था उसी प्रकार वर्तमान युग के 'युगमूर्ति उपन्यासकार' के रूप में रमणभाई का नाम भी लोगों के हृदय में आदर और स्नेह का स्थान पा चुका है।

रमणलाल के उपन्यास गांधीयुग के समाजजीवन का सुस्पश्ट प्रतिविव प्रस्तुत करते है। इस युग के संघर्शो, बलिदानों, अपूर्वताओं और उपलब्धियों की जैसी प्रतिध्वनि रमणलाल के उपन्यासों में उठी है। वैसी अन्य किसी साहित्यकार में नही मिलती । उनके नौजवान सुसंस्कृत और कुछ हद तक रहस्यमय पात्रों ने उज्ज्वल और स्वच्छ प्रेम के आचार का जो निर्मल प्रतिबिंव उनके उपन्यासों मंे प्रस्तुत किया है उसने गुजरात की नयी पीढ़ी का षुद्ध और निष्छल प्रेम की राहों में मार्गदर्षन किया है। प्रेम की भी उपासना हो सकती है इसकी संभावना उत्पन्न की है और त्याग के सहारे भी सौंदर्य की उपलब्धि हो सकती है इसका आदर्ष प्रस्तुत किया है।

रमणलाल की बहूमुखी तेजस्विनी प्रतिभा ने 'षिरीप' और 'कोकिला' में प्रेम के सामाजिक मूल्यों का निरूपण किया है। 'ग्रामलक्ष्मी' में सर्वोदय के सिद्धान्त को जीवनव्यापी बनाया है। 'दिव्यचक्षु' और भारेलो अग्नि में गांधीजी के सत्य और अंहिसा के आदर्षो में जीवन में कितना मंगलाचार फैलाया जा सकता है इसका सुरम्य दर्षन करवाया है। 'पूर्णिमा' में पतिन मानी जाने वाली कलावती नारियों के जीवन की समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न किया है। 'सौदर्यज्योति' आदि उपन्यासों में नये समाज की रचना की भनक कानों में डाली है। झझावात और 'प्रलय' में आने वाले युग का दर्षन अपनी संस्कारिता की चैखट में मढ़ कर इतने सुंदर रूप में

कराया है कि उसकी भयानक नास्तिकता का संपूर्ण अपहार हो गया है। 'कालभोज' 'षौर्यतर्पण और 'बालाजोगन' में अतीत की ऐतिहासिक जीवनभूमि में नयी दृश्टि की खाद डाल कर उसमें से महारणा प्रताप , बाप्पा रावल और मीराबाई के पात्रों की नयी जीवनव्याख्या प्रस्तुत की है। 'अप्सरा' के पांच खंड तो उनकी स्त्रियों के प्रति सदभावना और समवेदना के मूर्तिमंत स्मारक है। 'जीवन और साहित्य' एवम 'भारतीय संस्कृति' उनके प्रिय विशयों का परिषीलन है और उनको कहानियाँ और नाटक तो जीवन के इतने अनेकविध पहलुओं के दर्षन कराते है कि उन्हें किसी एक ही षीर्शक में बाँधना मुष्किल है।
रमणलाल गुजराती साहित्य में अपनी सृजनषील प्रतिभा से तो चमकेंगे ही परंतु इससे भी अधिक वे अपनी आदमीयत की सुगंध से महकेंगे। इक्यावनेंव जन्मदिवस पर जब हमने छोटा सा समारोह करने की बात सोची तब उस लज्जाषील सज्जन के विरोध की झलक हमें मिली। इस प्रकार का कोई तमाषा करने की आवष्यकता नही यह उन्होंने ठोक बजा कर कहा। आत्म विज्ञापन के किसी भी प्रकार क लिए यह 'तमाषा' षब्द तो उनका तकिया कलाम बन गया था। कुछ देर के लिए तो हम सब स्तब्ध हो गये। लेकिन फिर मित्रों के स्नेह के भागे स्नेह के आगे उन्हें निरूŸार होना पड़ा। रमणभाई वाकई सौजन्यमूर्ति थे। यह सुजनता ही उनकी मर्यादा थी और यही उनकी षाक्ति थी।

अभी कुछ रोज पहले की बात है। उनकी पश्ठीपूर्ति का जिक्र आने पर भी उन्होंने इसी प्रकार बगावत की थी। यह अलग बात है कि इस बार भी उन्हें मित्रों के आग्रह के सामने झुकना पड़ा। परंतु इन दोनों प्रसंगों को वे सदा प्रमाद ही मानते रहे और इसकी कसक उनके मन में हमेषा रही।

उदीयमान लेखकों के लिए तो वे प्रेरणा का जीवंत स्रोत थे। किसी अनजाने लेखक की कृति को पढ़ कर वे उचित राय देते, बढ़ावा देते, और पुस्तक बहुत अच्छी हो, तो प्रस्तावना लिख कर लेखक को प्रोत्साहन देते।

परिवार के लोगों ने उनका मधुर स्वभाव देख कर उन्हें स्नेह से 'नवाब' का उपनाम दिया था। दर असल वे नवाब ही थे। सभी बातों में अत्यधिक उदार। परहित और परमार्थ की बातों में तो फजूलखर्ची की हद तक उदार। अपने आपको तिल तिल करके गलाने की वृŸाि में सब से आगे । निष्दलता उनके जीवन का मूलमंत्र था सार्वजनिक या वैयक्तिक जीवन में कहीं कोई दुराव छिपाव नही। सिर्फ एक बात को वे गोपेनीय मानते थे। वह थी दूसरों के लिए त्याग या उत्सर्ग करने की वृŸाि। इसके कारणों और परिणामों की खबर किसी को नही पड़ती थी।

उनके दरबार में तरह तरह के लोग आते थे। परस्पर विरोधी स्वभाव के लोगों से उनका दीवानखाना सदा भरा रहता था। कोई सलाह करने के लिए आता, कोई कहीं सिफाारिष करवाने के लिए तो कोई सांत्वना प्राप्त करने के लिए। कुछ लोग सिर्फ सद्भावना से प्रेरित हो कर आते जब कि कुछ महाभाग अुल्लक वातों को ले कर आते और भाई साहब थक जायॅ तब तक सरपच्ची करते रहते। पर बडत्रे से बड़ा लीचड़ आदमी भी उनके चेहरे का स्मित दूर न कर सकता। उन्होंने कभी किसी भी कारण से अपने चेहरे की रेखाओं को असुदंर नही होने दिया। किसी के संबध में एक भी ओछा षब्द नही कहा। उनके दरबार में किसी की निंदा को स्थान नही था। चर्चा सब की, सब विषयों की हो सकती थी, पर निंदा किसी की नही। उनके षील की धाक ही ऐसी थी कि बुरी बात कहने की किसी की हिम्मत ही नही होती थी। बुरा विचार मन में आया भी हो तो उसे व्यक्त करने में डर लगता। दुश्ट से दुश्ट आदमी भी ऐसा प्रभावित हो जाता कि दुश्टता प्रकट ही न कर पाता।

भाई साहब उस्ताद फैयाजखाँ और पंडित ओमकारनाथजी के एक समान मित्र थे। दोनों का एक समान सांत्वनस्रोत थे और दोनों की निकटता का गौरव उन्हें प्राप्त हुआ था। उनकी संगीत की सुझ अत्यंत सूक्ष्म थी। संगीत के वे सिर्फ प्रेमी ही नही, पारखी भी थे। फैयाजखाँ की टोड़ी और ओमकारनाथ जी की नीलांबरी दोनों का आस्वादन वे समान संवेदनषीलता से कर सकते थे और दोनों का विष्लेशण ऐसी मर्मज्ञता से करते कि कभी कभी तो मूल संगीत की अपेक्षा उनकी विवेचना ही अधिक रसमय मालूम देती।

बड़ौदा उन्हें अत्यंत प्रिय था और अपने बडौदावासी होने में वे गौरव का अनुभव करते थे। लेकिन अब सब समाप्त हो गया। उस्ताद फैयाजखाॅ गये, माणिकरावजी गये और आज रमणभाई भी चले गये। महाराज सयाजीराव के बडौदा का चेहरा उतर गया वह श्रीहीन हो गया। एक बार किसी के यह पूछने पर कि ऐसा व्यक्ति कौन है जिसमें बड़ौदा की सारी विषेशताएॅ एकत्रित हुई हो, मैने अनायास ही रमणभाई का नाम लिया था। आज ध्यान आता है कि वह चुनाव कितना समुचित था। पूछने वाले बंधू भी उŸार सुन कर खुष हो गये थे। सच तो यह है कि रमणभाई कोई व्यक्ति नही थे। बल्कि अपने आप में एक संस्था थे।

आज मन उदास है। हम कुटुम्बी स्वजनों के भाईसाहब चले गये। बड़ौदा की श्री, विभूति लुप्त हो गयी। गुजरात के लाड़ले साहित्यकार चले गये। दुनिया के मीनाबाजार से बेलौस गुजरने वाला एक सच्चा कलापरखी और जीवन का भाश्यकार चला गया। एक सौजन्यषाली, संस्कारसम्पत्र भद्रपुरूश चला गया। मानवता के अधिकारी उपासक गये और मेरे तो अंतरतम के परम आत्मीय चले गये। रही गयी सिर्फ उनकी याद और उनकी आदमीयत की सुंगध। उनकी नष्वर देह पंचतत्वों में विलीन हो गयी पर उनकी अक्षरदेह आज भी हमारे साथ है। लक्ष्मी का वरदान मृत्यु तक ही रहता है, परंतु अक्षरदेह सरस्वती का वरदान मृत्यु के बाद भी अमरता प्रदान करता है। और भाई साहब सही अर्थो में सरस्वती के इस मृ्त्युंजय वरदान को प्राप्त करने वाले अधिकारी सुपुत्र थे। यह उनका भी धन्य भाग्य रहा और हमारा भी।
हे प्रभो! इस निर्मल हृदय आदमी की आदमीयत की सुगंध का ऐसा विस्तार करना कि उससे सब का कल्याण हो। इससे उनकी अतंरात्मा को, वह जहाँ भी हो, अत्यधिक प्रसंत्रता होगी।
76
षिक्षा का अंधत्व
हिमालय से कोई साधु आये थे। स्वामी रामानंद। अपने किसी षिश्य के यहाँ ठहरे थे। दूसरे रोज सुबहे जान वाले थे। अतः रात को भजन का कार्यक्रम निष्चित हुआ था। बड़ौदा के कई संगीतकार भी भाग लेने वाले थे। साधु-महाराज के षिश्यों का समुदाय भक्तिभाव से एकत्र हुआ था। षंाताबहन को षाम को ही खबर लग गयी थी। उनका फोन आया कि सावित्री (मेरी पत्नी) जिस के मधुर कठ को सुनना चाहती है वह लड़की, सिंधुबाला, भी आज भजन गायेगी। स्वामी जी में हम सब मेंे से किसी को कोई विषेश दिलचस्पी नही थी। पहले उनके कभी दर्षन भी नही हुए थे। परंतु सिंधुबाला के दर्दभरे कंठ का आकर्शण प्रबल था। इस लड़की को मैने पहले भी सुना था। खास तौर पर ''आज सखी सुन वाजत बाँसुरिया . . .'' इस गीत की मीठी वेदना और बेचैनी की माधुरी स्मरण में ताजा थी। फोन पर मैने षांता बहन से हाँ कह दी। रात को नौ बजे का निमंत्रण था। हम सब नौ बजे से पहले वहां पहुंच गये।

बैठक एक तम्बाकू के व्यापारी के यहाँ थी। हम पहुंचे तब 'जय जगदीष हरे' की आरती गायी जा रही थी। देखा तो आरती उतर रही थी। स्वामीजी की। वैसे ही श्रद्धा नही थी और यहां देखा तो प्रथम ग्रासे मक्षिका। स्त्रियों का समुदाय भीतर था। पुरूश और बच्चे जितने समा सके उतने अंदर थे और बाकी बाहर खड़े थे। आरती पूरी हुई। प्रसाद बँटा। पौने दस बज चुके थे। संगीतकारों में से किसी का पता नही था। सवा दस बजे कलाकार लोग आये। पंद्रह मिनट उन्हें बैठते और स्वस्थ होते बीते और पंद्रह मिनट वाद्य मिलाने में लगे। कहीं पौने ग्यारह बजे जा कर एक वादक ने सितार की तरह मिजराब से दिलरूबा बजाना षुरू किया। कला का आनंद प्रकट करने की बजाय अपना करतब दिखाने की कीर्तिगामी कसरत ही अधिक दिखाई दी। पूरा संगीत निर्जीव और ऊब उत्पन्न करने वाला रहा। हृदय के साथ उसका मेल ही नही बैठा। संगति उत्पन्न करना, संवाद स्थापित करना संगीत का प्रधान धर्म माना गया है। उसके स्थान पर इस वादक ने संगीत के प्रति अरूचि ही उत्पन्न की। इस तानारीरी से ऊब कर तीन-चार जवान लड़कियाँ और चार-पांच लड़के बाहर आ गये। उन्होंने छुटकारे की सांस ली। बाहर की हवा से वे कुछ स्वस्थ हुए।

बाहर छज्जे में एक हिडोला था। और दो तीन कुरसियाॅ पड़ी थी। कोने में कुछ दरियां लिपटी हुई रखी थी। एक ओर पानी की सुराही और चार पांच गिलास रखे थे। हिडोले और कुरसियों पर पहले से ही लोग बैठे हुए थे। इन तरूण लड़के -लड़कियों की बातचीत से लगा कि वे कालेज के छात्र है। उनका आपस में पति-पत्नी, भाई-बहन या मित्र-सहेली कोई भी रिष्ता हो सकता था। कुछ देर बाद एक लड़की ने पानी पीने की इच्छ व्यक्त की। एक नौजवान को आराम से बैठने की इच्छा हुई। परंतु उनमेें से कोई कुछ करने को तैयार नही था। आपस में बातें हो रहे थी। हँसी मजाक और चतुर संभाशण का आदान प्रदान हो रहा था। मजाक में एक दूसरे पर हुक्म छोड़े जा रहे थे। ''अबे कहार, दरी बिछा दे।' ' 'अबे लड़के, पानी पिला दे।' ' पर कमर झुका कर दरी बिछा लेने को या गिलास ले कर पानी पी लेने को कोई तैयार नही था।

यहाँ तक तो गमीमन थी। पर इतने में एक अषिक्षित दिखाई देने वाली अधड़ उम्र की स्त्री बाहर आयी। उसने इन लोागों की समस्या समझ ली। झटपट उसने दरियाॅ बिछा दीं। सबको बैठाया। सुराही में से पानी उंडेल कर सब को पिलाया। आध घंटे से वे पढ़े लिखे, नौजवान स्वस्थ लड़के लड़कियाॅ जिस भायनक उलझन मंे पडे हुए थे। वह एक मिनट में हल हो गयी। वाई अंदर चली गयी। नौजवान पीढी उसका उपकार मानने के बजाय उसकी सहज सरलता पर टीका-टिप्पणी करके उसका उपहास करने लगी।

मेरी आत्मा चीत्कार कर उठी। आजके इन पढे लिखे, उच्चभ्रू पर असभ्य और अपाहिज नौजवानों को कल की उस उनपढ़ स्त्री की सेवाभावना मजाक का विशय मालूम दी। मन विशण्ण हो गया। तो यह है हमारी आधुनिक षिक्षा ! कैसे भयानक जीवन मूल्य पैदा किये है इस षिक्षा प्रणाली ने । कैसी लज्जास्पद दृश्टि दी है उसने हमारे नौजवानों को। इससे तथाकथित अषिक्षितों की सरलता क्या बुरी है ? रस, रूप, गंध, नाद, स्पर्ष, इत्यादि अनुभवों द्वारा और विचारषाक्ति के बल पर वे सच्ची बात को तो पकड़ सकते है। आज के इन तथाकथित षिक्षित उजड्डों से, इन बेहयाई से खिखियाने वाली मषाीनों से, इन अकर्मण्य मोम के पुतलों से तो वे कहीं अधिक संकारी और सभ्य है।

कहाँ जा रहे है हम? क्या हो गया है हमारी विचारषाक्ति को? हमारे जीवन को इस अर्थहीन षिक्षा का ग्रहण तो नही लग रहा? यह तो विकास के मूल पर ही आघात है। जीवन की बुनियाद में लगी हुई दीमक है।

इस बुनियाद को श्रम, स्वावलंबन और सत्रिश्ठा की त्रिवेणी से सींच कर समग्र जीवन की पुनः प्रतिश्ठा करते हुए उसे नवपल्लिवत करने की षाक्ति बुनियादी षिक्षा-प्रणाली में है। लेकिन गांधीजी के इस भागीरथ स्वप्न पर आज विष्वास किसे है ? कौन चाहता है इसे ? हम तो प्रवाह-पतित की तरह निष्चित विनाष की ओर अग्रसर होते चले जा रहे है।

77

कायरता का प्रदर्षन

बड़ौदा से अहमदाबाद जाने वाली पौने सात की पैसेंजर। सात अगस्त का दिन। गुरूदेव रवीन्द्र की पुण्यतिथि के अवसर पर कठलाल जा रहा था। साथ में परिवार के लोग भी थे। वे सब जा रहे थे। अहमदाबाद उमाषंकर जोषी के यहाॅ । तीसरे दरजे का एक खाली डब्बा देख कर हम बैठ गये। इस डब्बे में सीटों की रचना पहले के इंटर क्लास के जैसी थी। दो पटरियों की एक इकाई पर हम बैठ गये। दूसरी तरफ एक पटरी पर तीन चार पुरूश बैठे थी। और उनके सामने वाली पटरी पर कोई स्त्री सिर से पाॅव तक चादर ओढे से रही थी। सवारी गाड़ी अपनी प्रथानुसार पंद्रह मिनट लेट छूटी। भीड़ बढ़ गयी। दो तीन यात्री आ कर हमारे पास बैठे, कुछ खड़े रहे।

वह स्त्री फिर भी स्वस्थता से सोती रही। वासद स्टेषन पर तीन-चार खादीधारी चढे। अब तक लोग उस स्त्री के संबंध में रसभरी चर्चा करते हुए खुसर-फुसर कर रहे थे, पर किसी ने उसे जगाया नही था। वासद से गाड़ी चलते

ही नवागंतुक चैक पड़े। उसके पास बैठने ही सब लोग चैक पड़े। उसके पास बैठने में भी उन लोगों को कुछ संकोच हुआ। यह स्त्री थी। ? नही। पुरूश था ? नही। स्त्री का भेस। पुरूश की आवाज। विचित्र वर्ताव। इतने मेें उसने अपनी लाक्षणिक षैली में हाथों से तालियाॅ बजायी और लोगों से कहा, 'आओ बैठो।' ' लोगों के अचरज का षमन हुआ, भय दूर हो गया। सब बेतकल्लुफी से बैठ गये। पुरूशों को अब खोलने की हिम्मत हुई।

' ' क्यों वे, कहाॅ गया था। सामने बैठे हुए एक आदमी ने पूछा।

हिजड़े ने स्त्रियों की सी लज्जा के अभिनय से सिर पर पल्ला लिया। आंचल संभाला। आंखों से लजाने का ढोंग किया और कृत्रिम संकोच ने कहा, ''बंबई गयी थी।' '

' ' सरकारी काम से गया होगा।' ' एक खादीधारी ने मजाक किया।
' ' डेप्यूटेषन ले कर गया था या अकेला ?'' दूसरे की टिप्पणी।
' ' सेल टैक्स विरोधी सभा में भाशण देने गया था क्या ?'' तीसरे का सुर।

उसका मन खट्टा हो गया । हर बात का उसने कर्कष तालियों से जबाब दिया । सिर पर से पल्ला खिसक गया। आंखों में निर्लल्लता छा गयी। भयानक आवाज में उसने कहाः ''मै सरकार चलाने लगंूगी तब तुम्हारें सब के मुंह ऐसे नही रहेगें। गिनगिन कर हंटर लगेंगे। तुम लोग ठहरे लतखोरीलाल । सब कुछ मुपत में चाहिये। तुम्हें क्या मेरा बाप खिलायेगा।?'' कह कर उसने ठंेगा दिखाया। आंखों की निर्लज्जता और भी घिनौनी और आक्रमक हो उठी। मजाक करने वाले कुछ खिसिया गये।

कुछ देर सन्नाटा छा गया। फिर एक खादीधारी ने हिम्मत कर के कहा ''अबे बम्बई में मोरारजी भाई से मिला या नही ?''

' ' मै मिलने जाऊंगी तो तुम कांग्रेज वाले क्या करोगंे। ? क्या हमारी तरह तालियाॅ बजाओगे ?'' वह जरा सिमट कर बैठा जैसे कोई कहीं उसे छू न ले।
सामने एक जवान आदमी बैठा था। पतलून कमीज की पोषाक । गोद में हॅट। हाथ में 'टाइम्स आॅफ इण्डिया' । आदमी नौकरी पेषे वाला लगता था। उसके कांग्रेस विरोध में मानो एकाएक उफान आया और वह भी वार्तालाप मै कूद पड़ा।

' ' तू अगर दिल्ली जा कर नेहरू जी से मिले, तो ये सारे कांग्रेस वाले जूतियाँ चटकाते हुए तेरे पीछे-पीछे आयेंगे।' '

अब उस प्राणी की सहनषाक्ति समाप्त हो गयी। अपमान का तीर उसके अंहकार के आरपार उतर गया। उसकी आंखों में खून उतर आया जो षब्दों के साथ मिल कर हलाहल विशय बन गया ।

' ' अबे नामर्दो, मुझे दिल्ली भेज रहे हो ? मै दिल्ली जाऊगी तब तो दिल्ली का तख्ता ही उलट गया होगा। तुम्हारी लाषें लावारिस सड़ रही होगी और इस देष का नसीबा फूट गया होगा। मुझे दिल्ली भेजना चाहते हो ? . . . मुझे ? तुमने क्या चुड़ियाॅ पहन रखी है ? . . . लगता है तुम पर। ''
घड़ी भर पहले जिन आंखों से निरी बेहयाई के सिवा कुछ नही था उनमें अब वेदना का जल भर आया। आंचल से उसने आंखें पोेछीं। बदसूरत और डरावने दिखाई देने वाले चेहरे पर अब मनुश्यता की रेखाएं उभर आयी। जीवन संघर्श क निर्मम कोडे खा-खा कर जिस मुख पर निर्लज्जता की गहरी रेखाएं अंकित हो गयी थी। उस कुरूप मुख पर क्षण भर के लिए आत्मा की दीप्ति अंकित हो गयी।

आंनद आया। गाड़ी खड़ी रही। वह अपना छोटा सा बक्षा ले कर उतर गया। जाते जाते कहता गया, बड़ी मुष्किल से स्वराज्य मिला है। मर्द हो तो उसे संभालना। गांधी को लजाना मत।' ' वरना तुम मै और हम में कोई फर्क नही रहेगा। वह गाड़ी में था। तब तक में चुप था। उसके जाने के बाद भी मौन नही टूटा। मन में ग्लानि उभर आयी। प्राण वेचैन हो उठे। अंतरात्मा पथरा गयी। पूरा अस्तित्व ही इस घटना से हचमचा उठा। हमारी पामर प्रजा क्या इस हद तक निर्वीये हो गयी है ? हमारी हस्ती क्या यं् ही मिट जायगी ? हमारी असलियतत क्या रही है ? क्या यही गांधी, नेहरू और पटेल के सपनों का देष है ? मै मन ही मन रो पडा।

78

दो पहलू

1. जीवन का सौंदर्य

बहुत वर्षो के बाद अहमदाबाद से दोपहर सवा-बारह्ंकी पैसेंजर से जाने का योग आया। में अकसर रात को गुजरात मेल से और क्वचित् सुबह की सौराष्ट्र एक्सप्रेस से ही यात्रा करता हूॅ। सवार गाडी का पूरा वातावरण ही अलग प्रकार को होता है। मुसाफिर और प्लेटफार्म पर धूमने वाले लोग, दोनों की श्रेणी डाक गाड़ी के यात्रियों से बिलकुल भिन्न प्रकार की मालूम देती है। खोमचे वाले धीमी गति से और स्पष्ट निराशा से चक्कर लगा रहे थे मानों इस गाड़ी के ग्राहकों से उन्हें विशेष आशा न हो। गार्ड और टिकट -बाबूओं की वेफिक्री को देखते हुए तो ऐसा लग रहा था गाड़ी आज तो किसी हालत में नही छूटेगी। गाड़ी के डब्बों में और बाहर जिस आलस्य, गंदगी और कोलाहल का विविधरंगी प्रदर्शन हो रहा था वह वेचैन करने वाला था। मुझे लगा कि कहाँ से इस गाडी में आ कर फँसा! आखिर बीस-पचीस मिनट लेट हाक कर गाड़ी छूटी। दूसरे वर्ग के डब्बों में बारे जड़ी, मेहमदाबाद या नड़ियाद जाने वाले अहमदाबादी आढ़तियों की ही संख्या अधिक थी। अधिकांश ने गाड़ी छूटने से पहले ही खर्राटे भरना शुरू कर दिया था। मुझे चैन नही पड़ रहा था। कांकरिया तालाब की दिशामें देख कर दृष्टि को कुछ आराम पहुॅचाने का प्रयत्न कर रहा था। मिलों की चिमनियों में से निकलने वाले धुएॅने घुटन भरे आकाश को और भी धेर लिया था। दिन-दोपहर संध्या का आभास हो रहा था। गाड़ी मणिनगर आकर रूकी। कुछ तो हवा का झोंका खाने केे हेतु से और कुछ प्लेटफॅार्म पर की चहल-पहल देचाने की दृष्टि से में पूरा दरवाजा खोल कर खड़ा हो गया। इतने में एक जवान ग्वालिन सिर पर पीतल के दो खाली हंडे रखे आ पहुॅची। तीसरे दरवाजे में भीड़ बहुत थी। लोग दरवाजों से बाहर लटक रहे थे। ग्वालिन ने हंडों को नीचे वाले पायदान पर जमाया ओर खुद ऊपर के पायदान पर बैठी। उसेन पाॅव इस प्रकार नीचे छोड़ रखें थे कि हंडों को सहारा मिलता रहे और चलती गाड़ी के हिकोलों से वे गिर न जायं।गाड़ी चल दी। रफ्तार बढ़ी। ग्वालिन ने दरवाजे के दोनों और की लोहे की सलाखेेें कस कर पकड़ रखी थी। कुल मिला कर यह स्त्री कोई पुरूष भी न दिखा सके ऐंसी निर्भयता का परिचय दे रही थी। जरा सा भी संतुलन विगड़ने पर हव गिर सकती थी। और गाडी के नीचे आ कार उसके टुकड़े -टुकड़े होने की पूरी संभावना थी। मैने उससे डब्बे के अंदर आ जाने को कहा। ''नही भाई। टिकट थड़ क्लास का है' ' दक्षिण के पवन को पीठ पर झेलते हुए उसने उŸार दिया। ''लेकिन संभाल कर बैठना, बहन। गाड़ी का मामला है।' ' मैने चिंता व्यक्त की। ''अरे भैया, जाको राखै सॅाइया मार सके ना कोय।' ' उसने मरी ओर देखे बिना ही जवाब दिया और गरदन को भटका दे कर वाल पीछे को किये।

गजब का आत्मविश्वास था इस गँवार स्त्री में। मै चिंता करता रहा लेकिन वह बेफिकर बैठी रही।
इतने में वटवा स्टेशन आया । गाड़ी की रफ्तार कम हुई। गाड़ी खडी रहे उसे से पहले ही एक तरूण ग्वाले ने उस स्त्री को ऊपर के पायदान पर से उधर उठा कर नीचे उतार लिया। गाड़ी के रूकने से पहले ही हंडे उठा कर दोनों जने हॅसते -हँसते चले गये।

दाम्पत्य का ऐसा स्वस्थ सौन्दर्य आज के जमाने में दुर्लभ हो गया है। भयानक संघर्ष और कठिन जीवनसंग्राम के इस युग में शुद्ध और श्रमजीवी दाम्पत्य का यह स्वाभाविक दर्शन बड़ा स्फूर्तिदायक लगा।

और तीसरे दरजे का टिकट होने के कारण दूसरे दरजे के डब्बे में प्रवेश तक न करने का उसे अशिक्षित स्त्री का आग्रह तो भविष्य के लिए बडी आशायें बांधानें वाला था।

2. और कुरूपता

कुछ देर बाद गाड़ी नड़ियाद आ कर रूकी। मेहमदाबाद कब निकल गया इसका ध्यान ही नहीं रहा। मन की आॅखों के समझ उस अहीर दंपती का चित्र सजीव हो रहा था। जवान ग्वाले ने जिस प्रकार अपनी प्रियतमा को अंक में भर लिया था वह दृश्य जीवन का अनुपम काव्य बन कर आंखों के रास्ते अंतकरण में उतर गया था। मेरी इस काव्यसमाधि को भंग करने का पाप किया एक और बहन ने । नडियाद से गाड़ी छूटने को ही थी कि कंधे पर चमड़े का सुन्दर पर्स लटकाये और हाथ में फैंशनेबल सूटकेस उठाये एक अत्याधुनिक चुवती ने डब्बे में प्रवेश किया। खिड़की में से वह छोकरे जैसे दिखाई देने वाले मरियल युवक से बातें करने लगी। इतने में गाड़ी चल दी। लड़का गाड़ी के साथ साथ चलने लगा। युवती ने कहा, ''मैं एम.ए में गुजराती लेने वाली हूॅ तुम निरंजन काका से कहना कि प्रोफेसर से मेरी सिफारिश कर दें।' ' ''जरूर कहूगा। इसके बिना तू बी.ए. में भी पास कैसे होती?''....लड़के ने कुटिल मुस्कराहट चेहने पर ला कर चलते चलते कहा।

युवती ने हाथ खिड़की के बाहर निकाला। लड़के ने उसे अपने हाथों में ले लिया। लेकिन इतने में गाड़ी की गति बढ़ गयी। हाथ छूट गये। लड़की ने रूमाल हिला कर मानो अधूरे संदेश को पूरा किया।
उŸारसंडा स्टेशन पर टिकट-चेकर डब्बे में आया। दो चार यात्री उतरे दो-चार नये आये। सब ने टिकट दिखायें । उस युवती ने भी दिखाया। चेकर ने कहा, ''यह तो थर्ड क्लास का टिकट है, बहन। एक्ससे किराया दीजिये' '

' ' एक्सेस किसा बात का? मैं प्लेटफार्म में आयी और गाड़ी चल दी। जो सामने आया उसी डब्बे में चढ़ना पडा। आंणद ऊतर जाऊंगी।' ' युवती ने चेहरे पर शिकन डाले बिना सफेद झूठ जड़ दिया। अब तक वह इस अदा से बैठी थी मानो डब्बे के अन्य यात्री उसके आराम और एकांत में बाधा डाल रहे हों।

' ' ते आणंद तक का फिरेन्स दे दीजिये। रसीद बना देता हूं।' ' चेकर ने सभ्यता और शांति से कहा ।
' ' इसमें मेरा कसूर नही है। मुझे दूसरे दरजे में बैठना नही था। बैठना पड़ा में एक्सेस नही दूंगी।' ' युवती ने कुछ करारेपन से अपनी जिद जारी रखी।

' ' आप क्या करने वाली थी इस से मुझे कोई मतलब नही। मेरा वास्ता आपने जो किया उससे है। डिफरेंस के पैसें दे दीजिये तो मेै रसीद बन दू ''टिकट चेकर ने सहनूभूति के लिए हमारी तरफ देखाँ ।

मैं श्रावंण के स्टेशन-मास्टर को पहचानती हूॅ। उनसे बात करूगी। युवती ने अब रोब जमाना चाहा।
' ' देखिये बहन, आप जनरल मंनेजर को पहचानती हो तो भी पैैैसे तो आपको देने ही पडेंगें। मैं इस डब्बे में न आया होता तो आप आराम से श्राणंद उतर जातीं। आपने गती से उँचे दरजे में सफर किया है यह किसी से न कहती। डिफेरेन्स देने की तो बात ही कहाँ रही। लोग रेलवे के मुलाजिमों को नाहक रिश्ववतखोर कहते है। मुसाफिर भी कुछ कम नही होतें। '' अब चेकर की आॅखों या वाणी में सभ्यता का लिहार नही रहा था।

इतने में गाड़ी आणंदा पहंुच गयी। एक और जवान लड़का उस युवती को लेने स्टेषन पर आया था। प्लेटफार्म परद फिर भगड़ा हुआ। तू-तू मै-मैं हुई। लड़की को चेहना उतर गया। लेने आने वाला जवान भी कुछ नक कर सका । हार कर लडकी ने कंधे के बैग में से वाहरआने निकाल कर चेकर को दिये। उसने रसीद काट दी। वे दोंनों हताश हो कर चले गये। आगे आगे लडकी पीछे-पीछे वह् जवान। देखा आपने साहब? ये पढें लिखे लोग ही आज देश को बेआबरू कर रहे है। विदेशों में भी ये ही लोग जाते है। और अपने देश के भंडे गाडते है। . . . अब सब जगह से निकाले जा रहे है। टिकट चेकर बड़बड़ाता हुआ दूसरे डब्बे में चला गया। वटवा के स्टेशन पर

देखा हुआ हुआ वह सौंदर्यमय दृश्य फिर एकबार आॅखो के समझ आया। नडियाद और आणंाद के बीच होने वाली अप्रिय घटना ने उस पर मानो बदसूरती का परदा डाल दिया था।

79

साथी

जलती हुई दोपहर थी। अंग-भंग को फूंक देने वाली चैत की गरमी पड़ रही थी। छाया ढुंढने का व्यर्थ प्रयत्न करता हुआ में गली से निकल कर राजमार्ग पर आ गया। साइकिल से दफ्तर जा रहा था। सड़क का कोलतार पिघल कर उसमें से भाप निकल रही थी। सामने से लू के थपेड़ें लग रहे थे। इतने में एक हाथगाड़ी दिखाई दी। एक जवान मजदूर गाड़ी को ठेलता हुआ ले जा रहा था। ठेले पर एक जवान स्त्री बैठी थी। उसने पूरी दुनिया की ओर पीठ कर के आंखे अपने पति के मुंह पर जमा रखी थी। मेरी साइकिल की अपेक्षा ठेले की गति तेज थी। उसके साथ रहने के लिए कुछ रफ्तार बढ़ा दी।

पुरूष ने कान के पीछे से बीडी निकाल कर स्त्री को दी। स्त्री ने सुलगा कर उसे वापस दी। वह हॅसती-हॅसती उसे फिर लौटाते हुए बोला। ''दो चार दम लगा ले। फिर मुझे देना' ' स्त्री ने मुस्करा कर जवाब दिया, ''पहले तू पी ले । फिर मुझे देना।' ' प्रत्युŸार में पुरूष ने अपने हाथ से उसके मुंह में बीडी दे दी। मुझे लगा कि अपने-अपने ढंग से दोनों की जीत हुई।

इस जीत की मस्ती में स्त्री ने कहा ''गाड़ी खड़ी रख और तू बैठ जा। अब में ठेलती हूॅ' ' अपने दोनों हाथ पेट की ओर ले जा कर पुरूष ने अभिनय किया और बोला '' इस पेट की खातिर मुझे भी रोज गाड़ी खींचनी पड़ती है। आज तेरी खातिर मुझे ही चलाने दे।' ' इस अभिनय को उसकी आॅखों के भाव ने रस में डुवो कर जीवंत कर दिया। उसने हाथों से फिर ठेला सम्भाल लिया। स्त्री ठेले पर ऐसी श्रदा से बैठी थी मानो हवाई जहाज में बैठी हो। उसके मुख पर मस्ती छा रही थी। इस मस्ती की खुमारी में उसने गोद में से तरबूज का टुकड़ा उठाया और पीछे को सरक कर पुरूष के मुंह में दे दिया। पुरूष ने खा कर स्नेह से कहा, '' अब बाकी का तू खा ले।' ' बचे हुए में से आधा भाग खा कर आधा स्त्री ने फिर पुरूष को खिला दिया। मैं सोचने लगा अब की बार जीत किस की हुई? मेरी उपस्थिति में वेखबर वे दोनों खिलखिलाकर हॅस पड़े।

' ' गाड़ी रोक ले।' ' स्त्री ने कहा। पर पुरूष ने सुना-अनसुना कर दिया और गाडी धकेले गया। स्त्री चलते ठेले से कूद पड़ी। पुरूष के कदमों से कदम मिला कर उसने भी ठेलना शुरू किया। पुरूष ने अपने कंधे से उसे धक्का दिया। उŸार में उसे मधुर स्मित का इनाम मिला।

ठेला चलता रहा। मुझे जिस तरफ जाना था वह मोड़ आ गया। राजमार्ग छोड़ते हुए मैं उन जीवनसाथियों को देखता रहा और एक क्षण के लिए बिलकुल भूल गया कि चैत्र महीने की जलती हुई दोपहर थी और झुलसाने वाली लू चल रही थी।

80

मुरलिया बाज रही किस ओर

बहुत दिन हुए शुक्रवार की गुजरी में जाने का योग नही आया था। उस रोज चिŸा बहुत उदास था। कामकाज में मन नही लग रहा था। खिड़की की जाली के बाहर देखा। सड़क पर लोगों की आमद रफ्तार कुछ अधिक दिखाई दी। कैंलेडर में देखा। शुक्रवार था। एक शगल मिल गया। अपने राम पहुॅच गये चांपानेर दरवाजे की गुजरी में। जाने का कोई खास हेतु नहीं था। सिर्फ बेचैनी दूर करनी थी, उदासी को हलका करना था, अन्यमनस्कता को काबे में लाना था।

एक खरादी की दूकान के सामने आ खड़ा हुआ। दो तीन पालने, चकजे बेलन, लट्टू फिरकी पलंग के पाये आदि तरह-तरह की चीजें पड़ी थी। एक देहाती युगल एक पालने की कीमत को ले कर मोलभाव कर रहा था। स्त्री की कमर पर कोई छह महीने का सुडौल बालक था। लड़का दिखाई दे रहा था। बच्चा संुदर था। उसका स्वास्थ्य तो दूर से ही आॅखों को आकर्शित करने वाला था।

स्त्री ने मोलभाव का अंत ला दिया। लड़के के पिता से बोली, ''अब हटाओ भी। दे दो रूपये और पालना ले लो।' ' पालना खरीद लिया गया। माता ने बालक को चूमा। लडके के बाप ने पालना कंधे पर चढ़ा लिया। दोनों चल दिये। स्त्री के सिर पर काफी सामान का भोझ था। पुरूश के कंधों से भी कई गठरियाॅ लटक रही थी। उन्हें जाते देख कर मै इधर उधर घूमने लगा।

लौटते समय, चाॅपानेर दरवाजे के पास वे दोनों फिर दिखाई दे गये। दोनों सामान से लदे हुए थे। पुरूश के हाथ में पकौडियों का दोना था। स्त्री के सिर पर गठरी कमर पर बालक। चलते चलते दोनों पकौडियाॅ खाते जा रहे थे। मुझे नये बाजार के रास्ते से जाना था। वे दोनों भी उसी ओर मुड़े। कुछ दूर जाते ही बूंदे पड़ने लगीेंं। मैं जल्दी जल्दी चल कर अपने दफ्तर में आ गया। इतने में बारिष जोर से आ गयी। वे दोनों भी वर्शा से बचने के लिए हमारे दफ्तर के बरामदे में आ खड़े हुूए। बारिष रूकने के आसार दिखाई नहीं दे रहे थे। इस परिवार ने बिना किसी संकोच के उस छोटे से बरामदे में ही अपनी गृहस्थी फैला दी। पुरूश ने साफा उतारा । स्त्री ने उसका भूला बना कर पालने में बाॅधा। बच्चे को उसमें सुलाया और माता लोरी देने लगीः

बाज रही किस ओर,
मुरलिया बाज रही किस ओर...........

तेरे कहने से पालना खरीद लिया यह अच्छा ही किया।' ' पुरूश ने कहा। उसकी आवाज में अपनी प्रियतमा की इच्छा पूरी कर देने का आनंद था।
स्त्री ने आॅखों से स्नेह का झरना बहा कर दूसरा चरण छेड़ा:
राधा नाचे, गोपी नाचे,
नाचत नंद किषोर, ...।
मुरलिया बाज रही किस ओर .... ।

फिर पुरूश की बात का उŸार देते हुए बोली, 'अच्छा हुआ। बच्चे के लिए एक चीज हो गयी' माता की नजरों में मानो यह एक बहुत बडे स्वप्न की सिद्धि थी।

' ' भला तूू कहे, तो मै मना कर सकता हूं?'' पुरूश पराक्रम और पुरूशार्थ की अभिव्यक्ति की।
' ' यह तो हमारा रतन है............ हमारा चंदा है .... ।' ' कह कर स्नेह के आवेष में माता ने सोते हुए बालक को चूम लिया।
पुरूश ने एक ओर पुड़िया खोली ।
' ' ले यह बरफी।' '
' ' बरफी ? आज दिवाली है क्या ?'' स्त्री की आंखों से नेहा टपकने लगा।' '
' ' अरी तू खूष है, तो अपने लिए रोज दिवाली है।' ' पुरूश ने अपने हाथों से बरफी का टुकड़ा उसके मुंह मेेंं ठुंस दिया।
बारिश जोरों से हो रही थी। उस बरसने में आनंद का आवेग था। वर्शा में भीगे हुए सुर फिर सुनाई दिये:
मुरलिया बाज रही ओर किस ओर .... ।

मातृत्व

पिछले होली के दिन नयी -दिल्ली में एक अनोखे उत्सव का आयोजन हुआ था। दिल्ली से ''षंकर्स वीकली' ' नामक प्रसिद्ध व्यंगचिŸा-पत्रिका प्रकाषित होती है। विख्यात व्यंग चित्रकार श्री षंकर इसके संचालक है। उनके व्यंग चित्रों द्वारा देष और दुनिया के जीवन के विविध प्रष्नों और समस्याओं पर प्रतीकात्मक अभिप्राय प्रकट किया जाता है। विविध घटनाओं पर टिप्पणी करने का व्यंग चित्र एक अत्यंत सषक्त माध्यम माना गया है। श्री षंकर की पारदर्षक तेजस्वी द्दश्टि, उनका स्वस्थ जीवनदर्षन उनकी दंषहीन आलोचना एवम सर्वस्पर्षी उदारता के कारण इस साप्ताहिक पत्रिका में प्रकाषित होने वाले व्यंगचित्रों ने समग्र देष में ओर विदेषों में भी प्रतिश्ठा प्राप्त की है। उनकी निर्वेयक्तिकता तो इतने ऊंचे दरजे की होती है। कि जिन लोगों के संबंध में अभिप्राय या संकेत प्रकट किया गया हो तो वे भी उसके उपहासगर्भ आंनद में बेझिभक सहभागी हो सकते है।

पिछले कई बर्शो से हर साल इस साप्ताहिक का बाल-अंक प्रकाषित किया जाता है। यह अंक हर वर्श विकास का एक एक सोपान ऊपर चढ़ता जा रहा है। उस साल इस बाल विषेशांक में पूरी दुनिया से पैतीस देषों के लगभग साठ सौ बालकों ने अपने लेख या चित्र भेज कर भाग लिया था। उनमें से चित्रांकन के लिए एक सौ नब्बे और लेखन के लिए सौ बालाकों को पारितोशिक दिये गये थे।

पारितोशिक-वितरण समारंभ धूलिवंदन के लिए षाम को चार बजे नयी दिल्ली के स्टेडियम में पंडित जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में हुआ। इस उत्सव में पंडितजी की उपस्थिति के अलावा और भी कई आकर्शण थे। राश्ट्रपति डाक्टर राधाकृश्णन स्वागत का भाशण करने वाले थे। विभिन्न देषों के बालक अनेक प्रकार के सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत करने वाले थे। बाल कलाकारों द्वारा प्रस्तुत ये कार्यक्रम अत्यंत आकर्शक और मनोरंजक सिद्ध हुए।

पैतीस देषों के बालक, जिन्होंने इस स्पर्धा में भाग लिया था। अपने अपने देष के राश्ट्रध्वज के पीछे कतार बाॅधे खड़े हुए थे। लंबे, गोल, रंग बिरगें गुब्बारों ने पूरे वातावरण को प्रफुल्लित बना दिया था। और अनगिनक बालकों की उपस्थिति ने पूरे उत्सव में प्राणों का संचार कर दिया था। विभिन्न देषों के लगभग सभी राजदूत अपने परिवारों और बच्चों के साथ उपस्थित थे। अमरीका, इण्लैड, जापान, इंडोनेषिया, और बरामा के राजदूतावासों के बालक तो कार्यक्रम में भी सहभागी हुए थे।

रायसीने की माध्यमिक कन्याषाला की बालिकाओं द्वारा गाये गये राश्ट्रगीत से उत्सव का आंरभ हुआ। फिर एक छोटी से जापानी बालिका ने मीठे सुरों में गीत गया। दिल्ली की संत थाॅमस माध्यमिक षाला ने बालकों ने 'सुप्त-सुंुदरी' नामक नाटिका प्रस्तुत की। इन्डोनेषिया के बालकों ने विख्यात सुमात्रा नृत्य किया और अमरीका के बालकों ने तीन गीति नाटय पेष किये। दिल्ली के प्रसिद्ध राश्ट्रीय मुस्लिम विद्यापीठ जामिया मिल्लिया के बालकों ने सुंदर कब्बाली गायी। उनका प्रवेष करने का ढंग सलाम कर के बैठने का तरीका कब्वाली गाने की अदाएॅ सब में परंपरागत मुस्लिम संस्कारिता की हूबहू झलक दिखाई दी। विदेषाी मेहमान तो इस से मंत्रमुग्ध हो गये। इसी प्रकार जापानी गीत और सुमात्रा नृत्य के समय भी संगीत और वस्त्र परिधान आदि की पंरपराओं का बारीकी से पालन किया गया था।

सब से सुंदर नाटिका प्रस्तुत की दिल्ली पब्लिक स्कुल के बच्चों ने। नाटिका का नाम था 'समस्या' । इसमें संगीत और परिधान कला के कुछ अभिनव प्रयोग किये गये थे। दो लड़के कागज का रूप धारण करके आये। उन्होंने अपना महत्व दो लड़के लिफाफा बन कर आये। उन्होनें अपनी आवष्यकता स्थाापित की और दो लड़कियाॅ टिकट बन कर नाचीं और अपनी अनिवार्यता प्रतिपादित कर गयी। इतने में दो बच्चे पत्रपेटिका बन कर आये। उनका कहना हुआ कि लेटर बक्स के बिना पत्र डालोगे कहाॅ? फिर दो डाकिये उपस्थित हुए। उनका कहना भी सही था। उनके बिना पत्र को डाकखाने कौन ले जायेगा? फिर रेलगाड़ी आयी। डाक रवाना हुई। दूसरे षहर में पहुची। वहाॅ के डाकिये आये। उन्होंने पत्रों को यथास्थान पहुॅचाया। सब मिला कर पत्र ही इस

नाटिका का विशय था और वही इसकी समस्या थी। पूरे विशय का नियोजना अत्यन्त सुरस और प्रभावषाली ढंग से हुआ। बच्चों ने रंग जमा दिया। नाटिका समाप्त होने पर बच्चे तो क्या, वयस्कों ने भी दिल खोल कर तालियाॅ बजायीेंं।

हमारे पास वाली सीटों पर एक नौजवान जोडा बैठा था। स्त्री पुरूश दोनों बहुत सुंदर थे। वातों और रंगढंग से स्पश्ट जाहिर हो रहा था कि विवाह हुए अधिक दिन नही बीते। वातें कार्यक्रम प्रस्तुत करने वाले बच्चों को ले कर ही हो रही थी। कभी उन्हें कोई लड़की पसंद आ जाती तो कभी कोई चुलबुला लड़का । कभी किसी की आंखों की प्रषंसा करते तो कभी किसी के चेहरे की। किसी की चाल ही पसंद आ जाती, किसी की भाशाषुद्धि आकर्शक लगती तो किसी के तीखे नक्ष मन को भा जाते। 'समस्या नाटिका में पत्रपेटिका बन कर आने वाले एक लड़के की चुस्ती और चारूता ने तो स्त्री पर मानो जादू कर दिया। उनकी आॅखों में वह बालक कही गहरा बस गया। नाटिका समाप्त होने के बाद भी वह उसी की प्रषंसा करती रही। पति सुन रहा था। और दिलचस्पी ले रहा था।

इतने में बरमा के एक लड़के ने माउथ आंरगन बजाना षुरू किया। उसने ऐसी अदभूत लंबी सांस खंीच कर बाजा बजाया और ताल सुर की ऐसी षास्त्र षुद्ध जमावट की कि उसका वादन समाप्त होते ही उपस्थित लोग आंनदविभोर हो कर तालियाॅ बजाने लगे। इस के बाद रंगभूमि में फिर परिवर्तन हुआ। इंग्लैड के बालक एक नाटिका का अभिनय करने लगे । उसमें नायिका की भूमिका करने वाली एक लड़की ने हमारी पड़ौसन का ह्नदय जीत लिया। उसके मन पर से लेटर बक्स वाला लड़का हट कर यह बालिका छा गयी। उसके अंतर की प्रीतिभावनाएं उद्गार बन कर व्यक्त होने लगी। '' वाह कितनी सुंदर लड़की है। . . . कितने बडभागी होंगे इसके मातापिता . . .। पुरूश कहने लगा। वाह यह कैसे अदभूत तालीम दी है। लड़की को । इसके पिता अवष्य कोई षिक्षाषास्त्री होंगे। स्त्री ने कहा, ''नहीं जी . . .। यह तो तामा की देखभाल का ही परिणाम हो सकता है। बालकों की परवरिष का आधार है माॅ । . . . पिता जी ।' ' मेरा आधा ध्यान था कार्यøम देखने में आधा था पडोसियों की बात सुनने मेेंं। आंखें नृत्य और नाटिका देख रही थी। कान पास का संवाद सुन रहे थे। अंत करण दोनों से आनंद प्राप्त कर रहा था।

इतने में दक्षिण भारत के बालकों ने कृशणलीला का नृत्य प्रस्तुत किया। संगीत में सुकोमल तमिल लहूजा। मृदंगम् का षुद्ध तमिल ताल। साथ में मजोरे। पहनावे में वर्णवैविध्य। कृशण बना हुआ लड़का बेहद सुंदर लगा रहा था। अत्यन्त सुकोमल और आकर्शक । किसी भी स्त्री का वात्सल्य उमड़ पड़े ऐसा सुंदर और प्यारा बालक। पड़ोसन की निश्ठा फिर विचलित हुई । इस बार तो हदय के कपाट खोल कर भावनाओं का ज्वार उमड़ पड़ा।' ' हाय . . . इस लड़के को तो देखो।

रूप का सागर! . . . माधुर्य का झरना . . .।' ' पुरूश भी भीगा । स्त्री के साथ सहमत हुआ। परंतु स्त्री को इस से अधिक गाढे और रसिक समर्थन की अपेक्षा थी। बोली, . . . इसका मोरपंख का मुकुट तो देखिये . . . ! क्यों जी बालकृशण क्या ऐसा ही दिखाई देता होगा।? अब पुरूश की आवाज भी रससिक्त हुई। ''. . . जरूर ऐसा ही होगा? इतने में गोपियों ने उस नटवर नागर को घेर लिया। उसने सब को छोड़ कर राधा का ही हाथ चालाक है ! बराबर राधा को ही पकड़ा। . . . मनचाही जो है। . . . मैं नही कहा करती? .... सारे पुरूश ऐसे ही होते है। इस मामले में वे कृशण से कम नही होते ''यह बात कहते समय उस की आंखों मेेंं कैसा भाव रहा होगा, कह नही सकता क्यों कि मेरी आंखें नृत्य की ओर थी। मुड़ कर देखना अषिश्ट मालूम देता । परंतु पुरूश के उŸार ने मेरीे कल्पना को सत्य प्रमाणित किया। वह बोला इस नजर से देखा जाय तो स्त्रियां भी राधा के प्रतिरूप होती है। रमणी के रंग में आयी। बोली वह खुद राधा का प्रतिरूप ही नही, बल्कि स्वयं राधा है। इसका उŸार पुरूश ने वाणी से देने के बजाय क्रिया से ही दिया होगा। वरना वाणी रूकती नही।

कार्यक्रम पुरा हुआ। जवाहरलाल जी रंगमंच पर आये। पारितोशिक बॅटे। जिस देष के बच्चे उपस्थित नही थे उनके पारितोशिक उन देषों के राजदूतों ने स्वीकार किये। यह पद्धति अत्यंत उचित सिद्ध हुई। सब से अधिक इनाम जापान के बच्चों को मिले। राजदूत उठा न सकें इतने। दूसरा नंबर अमरीका था। तीसरे क्रम पर रूस और चैथे स्थान पर मिश्र के राजदूत सब से वयोवृद्ध थे। अतः नेहरू जी ने बच्चों के पारितोशिक के साथ एक गुब्बारा उन्हें भी इनाम दिया। सारे समुदाय में हॅसी की लहर फैल गयी। सब मिल कर पूरा कार्यक्रम अत्यंत सफल और आंनद दायक सिद्ध हुआ। अन्तर्राश्ट्रीय बन्धुत्व की लंबी चैडी बातों चर्चाओं और परिशदों को अपेक्षा ऐसे समारभों द्वारा वसुधैव कुटुम्बकम् के सिद्धंात का कहीं अधिक प्रभावषाली प्रचार हो सकता है। पूरा आयोजन विष्वैक्य की भावना से ओतप्रोत रहा।

इतने में पंडित जी ने घोशणा की कि सभारंभ में उपस्थित हर बालक के लिए कुछ न कुछ पारितोशिक की व्यवस्थ्या की गयी है। इस से बालकों की दुुनिया में खुषी छा गयी। बच्चों की भंीड का ऐसा रेला आया कि पंडित जी उसमें खो से गये। उनके भाशण को देर हो रही थी। पर बच्चों को मस्ती, उनकी खुषी उनका हास्य, उनकी उमंग सब इतने सजीवन, आहादयक और प्रफुल्लित थे कि उस आनंद में बच्चों के साथ बच्च बन जाने वाले रसिकराज जवाहरलाल सारी सुध-बुध खो बैठे। पूरी संध्या अत्यंत सुहानी और मनोरम बन कर स्मृतिपट पर सदा के लिए अंकित हो गयी।

पंडितजी धीरे धीरे बोलने लगे। पडोस में भी बातचीत चल रही थी। अब मै दुविधा में पड़ा किसे सुनू। पंडित जी का भाशण वस्तुनिश्ठ । पडोस की बातचीत नितांत वैयक्तिक। साहित्य में हम जिन्हें आब्जेक्टिव और सबजेक्टिब कहते है। उसकी अनुभूति होने लगी। आंखें देख रही थीं पंडितजी की दिषा मेंें। चेहरा भी वहीं देखने का ढोंग कर रहा था । पर कान लगे हुए थे पडोस में। स्त्री के मन में से वह कृश्ण बनने वाला लड़का हट नही रहा था। पुरूश के मन पर भी उसी की मोहिनी छायी हुई थी। दोनों की आवाज में वात्सल्य की गंगा बह रही थी। इतने में पंडितजी पंचवार्शिक योजना के संबंध में कुछ कहने लगे। स्त्री को यह बात कुछ अप्रस्तुत लगी। वह् बरस पड़ी, '' जवाहरलाल जी हर बात में यह योजना और नियोजन की बात क्यों लाते हो। ''मेरा ध्यान कुछ पंडित जी की ओर गया था। वह फिर पडोस में आ गया। पुरूश ने कहा, जीवन में नियोजन अत्यंत आवष्यक है। उसके बिना जीवन का हिसाब नहीं बैठता।' ' स्त्री अब भडक उठी। . . . ''आग लगे इस नियोजन में। . . . जिंदगी की हर बात में योजना। . . . आजकल तो लोगों पर जैसे नियोजन का भूत सवार है। . . . परिवार का व्ययपत्रक बनाइये, हिसाब लिखिये, हर खर्च को रूपये पैसों मेंें ही नही बल्कि प्रतिषत के तराजू पर तौलिये। . . .अच्छा तमाषा है। सांस भी गिन-गिन कर लीजिये। यह भी कोई जीने की रीत है। . . . अरे कुछ आराम से जियो. . .चैन से जीने दो। . . . नियोजन को यह सदा सिर पर टंगी हुई तलवार किस लिए. . .।' '

पुरूश क्या समझा और क्या नही, यह कहना मुष्किल है। पर स्त्री ने हमला चालू रखा: ''. . . मै क्या झुठ कह रही हूं? . . .''पुरूश कुछ सिटपिटाया । पर उसे बोलना ही पड़ा' ' जीवन में व्यवस्था लाये बिना छुटकारा नही। योजना अपने आप में कोई बुरी चीज नही। हाँ अति हर चीज बुरी होती है। . . . अपना ही उदाहरण ले लो। . . . परिवार नियोजन ने हमारी कितनी मदद की है। . . . वरना आज तनख्वाह में से एक पाई भी न बची होती। अब स्त्री से नही रहा गया। चिरकाल की सुशुप्त माता उसके हृदय में जागृत हो उठी।' ' आग लगे तुम्हारे परिवार नियोजन में। . . . मंै अब मानने वाली नही। . . . न होगा, कर्ज हो जायगा। . . . पर . . . इतने में पंडितजी का भाशण समाप्त हुआ। तालियां बजीं । हार वार पहनाये गये । कोलाहल मंच गया। देखा कि पुरूश नाक पर उंगली रख कर स्त्री को बोलने से बरज रहा था। और स्त्री . . .? . . . उनकी आंखों में तो जैसे समग्र विष्व का मातृत्व धनीभूत हो कर उमड़ रहा था।

उजाले से अंधियारे में

नयी दिल्ली का अपना एक विषिश्ट व्यक्तित्व है। उस पर पंजाबी संस्कारिता की छाप है और उŸार प्रदेष की सभ्यता का प्रभाव है। दिल्ली की अपनी परंपरागत मौलिक तहजीब तो उसके ताने बाने में बुनी हुई है। परंतु आजकल से सारे प्रभाव तिरोहित होते जा रहे है और उन पर छा गया है पष्चिम की संस्कृति का चक्रवर्ती साम्राज्य। अब दिल्ली रह गयी है चले जाने वाले अंगरेजों की सभ्यता का खंडहर और पष्चिम के अर्धदग्ध जीवन का उच्छिश्ट अवषेश। आजकल की दिल्ली और कुछ भी हो, भारतीयता की तो कब्र बन कर रह गयी है। कृत्रिमता और दंभ यहाॅ के सब से अधिक प्रचलित सिक्के है। सŸाा इस षहर की साम्राज्ञी है। सौजन्य तिरस्कृत हरिजन के समान माना जाता है। भलमनसाहत आदि बातंे सिर्फ भाशणों के लिए है। त्याग और बलिदान सिर्फ काव्य के विशय रह गये है। सादगी मजाक का आंलबन है। सत्य एक असंभव सपना है।

ऐसा यह बहुरूपी नगर प्रथम दर्षन में बडा आकर्शक लगता है। पहली बार आने वालों को झटपट पसंद आ जाता है। परंतु जैसे जैसे हम उस में रहते जाते है। उसके स्वार्थ प्रेरित संघर्शो की टक्करें खाते जाते है, और उसकी नकली सभ्यता का षिकार बनते जाते है। त्यों त्यों यह अदभूत दिखाई देने वाली नगरी हमारे लिए अप्रिय और असहाय हो उठती है।

आज एक जगह चाय का निमंत्रण था। मेजबान बड़े अफसर है। विषाल बंगला। संुदर बाग। बाग में रंगबिरंगें फूलों का बसंतोत्सव। गुलाब की खूषबू से वातावरण तरबतर सयम था ढ़लती हुई दोपहर को जो गुलाबी ठंड के कारण प्रभात के जैसी जीवनदायिनी लग रही थी। बाग में कुरसियां डलीं । और भी कई मेहमान थे। चाय आयी। पीते पीते बातें होने लगी। वार्तालाप में नेहरू से लगा कर मेजबान की पुत्री नयना तक विविध व्याक्तियों की चर्चा हुई।

दिल्ली षासन की विधानसभा के चुनाव में कांग्रेस की धज्जियाॅ उड़ गयीेंं। एक कांग्रेस विरोधी जनसंधी ने कहा ।

’ ’ इस से क्या फर्क पडता है? सŸाा थोडे ही उनके हाथ से गयी है। देखिये न, सी.सी देसाई हाई कमिष्नर बन कर लंका गये तो उनका बंगला तुंरत विजयालक्ष्मी पंडित को मिल गया। अब कोई पूछे, इनते बडे बंगले का अकेली बुढ़िया क्या करेगी?’’ मकान के लिए तरसने वाले एक पत्रकार बोल उठे। उनकी कड़वाहट छिपी न रही।

’ ’ यह सब तो यूं ही चलेगा। मैंने रेडियो-स्टेषन के संचालक पद के लिए आवेदन किया था। लेकिन पब्लिक सर्विस कमिषन की मेहरबानी मिनिस्टर साहब की भान्जी पर हो गयी।’ ’ काॅलेज के एक प्राध्यापक ने दिल का गुबार निकाला।

लेकिन अपने साहब बहुत अच्छे है। जब कही तब चाहंे जो काम कर देते हैं। . . .’’छल-परपंच बिलकुल नहीं। . . . लीजिये बाबूजी . . . यह संदेष खाइये। ये रसगुल्ले चखिये। . . . पडोस के बंगाली की दूकान से खास तौर से तैयार करवा कर लाया हूं। ’’एक स्थूलकाय लालाजी ने हॅसते हुए राज खोला। दाने-दाने पर खाने वाले का नाम तो होता ही है। लालाजी ने खिलाने वाले का भी नाम जाहिर कर दिया और पार्टी की अधिकांष चीजों पर मालें-मुफ्त होने की मुहर लग गयी।

मंै एक तरफ बैठा मेजबान से बातें कर रहा था। वे बेेचैन दिखाई दे रहे थे। किसी का इंतजार कर रहे थे। इतने में एक नेता जैसे दिखाई देने वाले खादीधारी सज्जन आ पहुॅचे। करीब-करीब सब लोग खड़े हो गये। मैंने भी वही किया। तिरंगा झंडा फहराने वाली मोटर ने घोशणा की कि वे संसद के सदस्य है। मेजबान ने बडी़ तत्परता से उनका स्वागत किया। मानो सुदामा के घर श्रीकृश्ण पधारे हों इस प्रकार हाथ जोड़े खड़े रहे। परिचय कराया गया। वे हमारे मेजबान अफसर के विभाग के डिप्टी मिनिस्टर थे।

मिनिस्टर साहब संसद के किसी अन्य सदस्य से बातें करने लगे। . . . ''कहिये, आप के प्रष्न का मैने वही उŸार दिया न, जो आप चाहते थे।' '

' ' जी, . . .जी . . . आप आजकल बेहद मेहनत कर रहे है। काफी रात बीते तक दफ्तर में बैठे रहते है।' ' संसद सदस्य ने दांत निपोरते हुए देवताओं को भी प्रिय लगने वाला उपाय आजमाया। पूरे वातावरण के दरमियान रसगुल्ले और संदेष बड़ी रफतार से उदरस्थ होते रहे।

' ' अरे साहब हमारी भी कोई जिदगी है? . . . मेहनत कर के मरें हम, प्रसिद्धि मिले मिनिस्टर को। पारिश्रमिक उनसे आधा भी नहीं मिलता। ''डिप्टी साहब ने षिकायत करते करते सिगार से लंबा कष खींचा। इतने में एक छोटी मोटर आयी। उसमें से एक युवती दिखने का भरसक प्रयत्न करने वाली प्रौढा उतरीं। पोषाक भारतीय पर ठाठ सारा योरोपीय। मेजबान की पत्नी थी। सब ने खडे हो कर अभिवादन किया। उन्होंने देर से पहॅुचने के लिए क्षमा मांगी। मीटिंग देर तक चलने की सफाई पेष की। वे चाय पी रही थी कि उनके पति ने कान में कुद कहा। उन्होंने आया को आवाज दे कर अपनी पुत्री को बुलवाया। लड़की गुड़िया जैसी सुसुंदर थी। उससे नृत्य करवाया गया। उपस्थितों को उस बाल-कलाकार में भविश्य की महान नर्तकी के दर्षन हुए।

चाय पार्टी समाप्त हुई। मेहमान एक एक कर के जाने लगे। सिर्फ दो चार निकट के स्वजन रह गये। सांय ढल रही थी। श्रीमतीजी सब को भीतर ले गयी। अब डिक्स की महफिल जमी। मंदिरा के प्याले निकले । षराब की बहार ने वातावरण को रसयम बना दिया।

कुछ देर बाद फोन आया। श्रीगती जी को किसी और मीटिंग में जाना था। कुछ देर बाद एक साहब मोटर में आये और उन्हें ले गये। जाते समय आया को बुला कर बच्चों को खिलाने पिलाने सुलाने संबंधी सूचनाएॅ देती गयी। अब हम तीन जने रहे। मेजबान, उनकी कोई मित्र और भी। धीरे से अफसर महोदय ने काम की बात छेड़ी। मेरी और मुखातिब हुए। ''देखिये आप की हमारे मिनिस्टर साहब से धनिश्ठता है। हमारी बात उनके कान पर डाल दे ंतो मैं जीवन भर आपका आभारी रहूंगा। महकमे में वरिश्ठ जगह खाली होने वाली है। उस के लिए मेरी सिफारिष कर दीजिये। '' मै हाॅ-हू करता रहा। उन्होने मेरा हाथ दबाया और पूरा गिलास गटगटा गये। वे और वह महिला एक के बाद एक प्याले खाली करते जा रहे थे। उनका आपसे वर्ताव भी घनिश्ठ होता जा रहा था। अब उनके दरमियान तीसरे आदमी का उपस्थित रहना हिमाकत थी। अतः मैने जाने की अनुमति चाही। बोले वे मुझे घर छोड़ देंगे। मैने कहा कि आज चलना बिलकुल नही हुआ। टहलता हुआ आऊंगा और मै चल दिया। रास्ते भर दम घोटने वाली बैचैनी होती रही। षराब की दुर्गध मानो पीछा करती हुई साथ-साथ चल रही थी।

(2)

षाम ढल चुकी थी। कृश्णापक्ष की रात का अंधेरा उतर आया था। बिजली के खंभों की रोषनी से वह दबने को तैयार नहीं था। ठंड कह रही थी। कि दिल्ली में मेरा राज है। कांग्रेस का नहीं । षायद नौ बजे होंगें। पूरे षाहजहाॅ रोड पर मेरे सिवा और कोई दिखाई नही दे रहा था। किसी प्रकार की सवारी का नामो-निषान नही था। बा के लिए कुछ देर रूका पर दिल्ली की बस सर्विस । राम का नाम । में आकाष की ओर देखता हुआ चलने लगा। सप्लाई आफिस के सामने से गुजरा। दिन में जहाॅ भीड़ का अंत नही रहता है। वहाॅ इस समय चिडिया भी नही थी। मुझे पूरा षाहजहाॅ रोड पार कर के कर्जन रोड पहुचना था। सोचा कि इंडिया गेट पर कुछ चहल पहल होगी। षायद कोई सवारी भी मिल जाय। रफतार कुछ तेज कर दी।

धौलापुर हाऊस के पास एक पेड़ के नीचे अंधेरे में दो आकृतियाॅ दिखाई दी। पास जा कर देखा तो एक स्त्री और एक पुरूश । पास ही साइकिल में कुछ जोडतोड़ कर रहा था। मैनें पास जा कर पुछा कि मै कुछ मदद कर सकता हूं क्या। जवान ने लाचारी से कहाः ''बाबूजी साइकिल पंचर हो गयी है। हम पति पत्नी मजदूरी करने

गये थे। वहा इसके बच्चा हो गया । मै इसे साइकिल पर बैठ कर घर ले जा रहा था। कि साला पंचर हो गया। भाग की बलिहारी है।' '

उतने में धोड़े की टाप सुनाई दी। मैनें कहा ''षायद तांगा आ रहा है। ऐसा कर, में तेरी पत्नी को तंागे में पहुचा दूंगा। तू साइकिल ले कर पैदल आ जा' '

बाबूजी हम गरीब आदमी है। तांगे के पैसे कहाॅ से देंगे? पुरानी साइकिल खरीदी थी तभी का तेरह रूपये का कर्ज बाकी है। जो अब तक नही चुका । उसने दी हताष वाणी में कहा।
मैने कहा '' घबराओ मत। तांगे के पैसे में दे दंूगा।' '

इतने मेेंं तांगा आ गया। तांगे वाला कोई गजल गा कर वातावरण की षून्यता को भरने का प्रयत्न कर रहा था। किराया तय करके उस स्त्री को पीछें बिठाया। में तांगे वाले के साथ आगे बैठा। तांगा चल दिया। चार दह मोड़ ले कर तांगा एक बंगले के पिछवाडें में जहाॅ अकसर नौकरों की कोठरियाॅ होती है। रूका।
मैने उस स्त्री को उतार कर कहा। अब कोई हर्ज न हो तो में चलूं। उस सद्यप्रसूता के हाथ में मैनें पाॅच रूपये का नोट देने की कोषिष की।

' ' नही बाबूजी रूपये नहीं लूंगीं। आप कुछ देर रूक जाइये। मेरा घरवाला आ जाय फिर जाइये। उसने तांगे वाले से भी रूकने के लिए कहा।

बालक को बरामदे में लिटा कर उसने कोठरी का ताला खोला। अंदर जा कर लालटैन लायी। दियासलाई ढुंढ कर उसे जलाने की कोषिष की पर लालटैन में तेल नहीं था। फिर ढुंढ ढांढ कर मोमबŸाी का एक टुकडा लायी। उसे जलाया। मै खडा रहा। उसने भीतर से एक गूंज की टूटी फूटी खाट निकाली उस पर मैली-कुचैली दरी बिछायी और मुझ से बैठने को कहा।

' ' नही में यहीं ठीक हूॅ यह बंगला किस का है। उस तरह वह सड़क कौन सी है।?
यह संगत बाबू का बंगला है। बाबूजी। और वह बारहखम्भा रोड है' ' स्त्री ने जबाब दिया। मोमबŸाी के प्रकाष में वह बालक का मुंह ठीक से देखने की कोषिष कर रही थी।

मैं चैंक पडा़ यह तो मेरे आज के मंेजबान अफसर के ही बंगले का पिछवाड़ा निकला वहा ! म्ेारा मन चीत्कार कर उठा आगे के दरवाजे पर जगमगाते प्रकाष में दंभ का साम्राज्य। पिछले दरवाजे पर गहन अंधकार में दरिद्रनारायण की ऐसी मजबूरी। इस क्या कहे कुदरत का खेल ? या अपना अपना भाग्य?

इतने में साइकिल लिये वह आदमी आ पहुॅचा, गदगद कंठ से उसने मेरा उपकार माना। ''स्त्री को डाॅटा अरी कैसी है तू? बाबूजी को बैठाया भी नही' ' मैने जबाब दिया कि मैने ही खडे रहना चाहा था।

' ' देखो देखो इस का मुंह तो बिलकुल तुम्हारे जैसा है। स्त्री ने चहक कर कहा। पुरूश ने बच्चे को ध्यान से देखा।

' ' चल झूठी कहीं की । बिलकुल तुझ पर गया है। फिर मुझे दिखा कर कर बोला बाबूजी यह हमारा पहला ही बच्चा है। लड़का है।

' ' सूनो थोड़ा सा गुड ले आयो । बाबू जी का मंुह मीठा कराओ। उनके आषीर्वाद से हमारा यह राजा बडा हो जायेगा। स्त्री की आवाज से माता के वात्सल्य की माधुरी टपक रही थी। चेहरे पर त्रिभुवन का राज्य मिलने की खुमारी थी।

मैंने वह पांच का नोट बालक की मुट्ठी में पकड़ा दिया। पुरूश ने आष्चर्य से कहा- यह क्यों बाबूजी ? मैंनें कहा '' भाई मै भी तो बच्चे का ताऊ लगता हूं। मुंह देख कर खाली हाथ कैसे लौटाऊॅ ?''

मैं बरामदे की सीढियाॅ उतर रहा था। पति पत्नी दोनों हाथ जोड़े खडें थे । अंधकार में एकता का मूर्तिमंत्र स्वरूप दिखाई दे रहे थैं तांगे में बैठते हुए मैने गुड़ की डली मुंह में डाले ली। वाणी मूक थी पद मन प्रफुल्ल था। सांस में जिंदगी की खुषबू बसी हुई थी। सोचा, जब तक पृथ्वी पर अमीरी को चुनौती देने वाली ऐसी गरीबी मौजूद है, तब तक डर की कोई बात नही। इस भूमि का पुण्य अब तक चुक नही गया।

83

जमनापार

करीब ग्यारह वर्श बाद देहरादून जाने का योग आया। बीते हुए दिनों की अनेक स्मृतियां जाग्रत हुई। ऋशिकेष में स्वर्गाश्रम के पास से बहने वाली निर्मला भागीरथी, नरेन्द्रनगर से आगे टिहरी के मार्ग पर किसी मुग्धा की तरह लजाती-षरमाती आगे बढ़ने वाली भीलांगना और वहां से गंगोत्री-जमनोत्री की ओर गहन जंगलों को बेध कर जाने वाले पगडंडी जैसे रास्ते सब की याद ताजा हुई। यह स्मरणयात्रा चल रही थी कि हमारे मेजबान ने खुषखबर सुनाई कि उन्हें भोलांगना और जमनापार के जौनसार प्रदेष तक दौरे पर जाना होगा। उनके लिए यह यात्रा अनिवार्य थी। और मेरे लिए इस से बढ़कर आनंद की बात हो ही क्या सकती थी। जौनसानर प्रदेष और वहां के निवासियों के दर्षन होंगे और यात्रा का आनंद धते में!

नरेन्द्र नगर टिहरी गढवाल रिसायत की राजधानी है। पहले यह सिर्फ गर्मियों की राजधानी थी। जाडे और बरसात में टिहरी षहर ही सारी प्रवृŸिायों का केन्द्र बन जाता था। परंतु अब राजनीतिक परिस्थिति बदल जाने के कारण नरेन्द्रनगर का महत्व बढ़ गया है और राजधानी बारहों महीनेेें वहीं रहती है। देहरादून से ऋशिकेष हो कर नरेन्द्रनगर का रास्ता अत्यंत रमणीय और आल्हादक है। गंगा की घाटी के किनारे-किनारे जाने वाली यह सड़क जिन जंगलों में हो कर जाती है। वे प्राकृतिक सौंदर्य की दृश्टि से बेजोड़ है। वनस्पति दृश्टि यहां अपने सहस्त्रावधि रूपों में विकसित होती है। परंतु प्रकृति की षाक्ति और सौदंर्य का असली साक्षात्कार होता है। नरेन्द्रनगर से आगे बढ़ने पर। वहाॅ छह हजार फुट की ऊँचाई पर से नीचे उतरना पड़ता है। वनश्री का हरा रंग जितना गहरा यहाॅ दिखाई देता है। उतना अन्यत्र कहीं नहीं देखा। उतना अन्यत्र कही नही देखा। कुल घाटी में रही कर महर्शि निकोलस रोरिक ने हिमालय के चिर - हिमाच्छादित षिखर पर मुझे हुए आसमान का जो काला नीला रंग अपने चित्रों में मूर्तिमंत किया था। उसे ''रोरिक व्लू' ' का विषिश्ट नाम मिला था। नीले रंग की वैसी आभा दुनिया में और कहीं देखने को नही मिलती। यहां के अलौकिक हरित वर्ण को देख कर मेरे मन में भी कुछ इसी प्रकार के भाव उठे । किसी कलाकार की पारदर्षी दृश्टि इस हरित आभा का पान कर के उसे इन जंगलों के मनोरम चित्रों में मूर्त करे तो यह रंग भी अमर हो कर किसी विषेश नाम का अधिकारी हो जाय।

भीलांगना पार करते समय स्वामी रामतीर्थ का स्मरण होना स्वाभाविक था। राम बादषाह को यह भींलांगना बहुत पंसद थी। उन्हें लगा कि इस सुंदर सरिता को कुछ देना चाहिये। उन्होने अपनी अंतिम प्रिय वस्तु भेंट दे दी। इस भीलांगना के तट पर ही उन्होंने भविश्य में अपनी प्राणप्रिया पंजाबी भाशा न बोलने की प्रतिज्ञा की थी।

भीलांगना पार करके समृद्ध और सौन्दर्यमŸा प्रकृति का आस्वादन करते हुए, दिन ढलने से पहले ही हम जमना के किनारे जा पहुंचे। दिल्ली मथुरा या प्रयाग में देखी हुई यमुना से इस यमुना का दर्षन बिलकुल भिन्न था। कैसी थी यह जमना? मानो कोई यौवनमस्त लावण्यमयी क्वारी कन्या जीवन सौरभ बिखेरती हुई विवाह मंडप में प्रवेष करने जा रही है। वैसी ही स्वप्नषील वैसी ही आतुर वैसी ही निश्कलंक। अंतर आंनद में छलक उठी आंखों प्रकृति के कृपाप्रसाद से तर हो गयी। थके हुए ह्रदय से हम जमुना पार गये।

यहीं से जौनसार प्रदेष का आरंभ होता है। हम गांव में पहंुचे तक सांझ हो चुकी थी। षरमाती संकोच से सिमटती उस संध्या के प्रकाष में पहली बार एक जौनसार नारी के दर्षन हुए। फिर देखा उसका पुरूश। दोनों रूपवान, षाक्तिषाली, समभावी। पुरूश का नाम था रतनसिंह। भोजन से पहले गपषप हुई। रतन सिंह ने अपने मन की व्यथा सुनायी। उसे षिकायत थी कि जमुनापार की स्त्रियां बडी नासमझ और बदतमीज होती है। टिहरी के बाद नरेन्द्रनगर और वहां से आगे बढ़कर हरिद्वार की तरफ मैदान में उतरने पर तो अत्याचार और अविवेक की सीमा नहीं रहती। अभी हाल में एक जौनसार पुरूश उस तरफ की एक स्त्री को विवाह करके ले आया है। स्त्री कहती है कि उसका तो एक ही पुरूश से विवाह हुआ है और वह उसी की स्त्री के रूप में रहेगी। अब आप ही बताइये। यह भी कोई बात हुई? वह बेचारे चार भाई है और स्त्री इस तरह की बदतमीजी पर उतारू है। . . . हम जौनसारों में तीन चार भाइयों के बीच एक ही पत्नी होती है। सब अलग-अलग स्त्रियों से विवाह करने लगें तो लड़ाई झगडों का पर न रहे। और फिर सब के अलग अलग बच्चे हो तो जमीन और मिल्कीयत के हिस्सें हो जायंे। हम लोगों का तो इस से नामो निषान मिट जाय। हमारे इस रिवाज के कारण ही हमारी जमीन और संपŸिा अखंड रहती है। परिवार में एकता और सहमति रहती है। हम जौनसार लोग इस प्रदेष में स्वर्ग का सा जीवन जीते है। सुखी और संतोशी। . . . लेकिन अब जमाना बदल रहा है। . . . मैदानी विचारों की हवा ने सब मटियामेंट कर दिया है। . . .

महाभारत की द्रौपदी की बात को हम धार्मिक कथा के रूप में सहन तो कर लेते है, पर मन ही मन उस पर विष्वास नही करते और हंसते रहते है। हम मानें या न मानें पर बहुपतित्व की प्रथा एक ठोस सत्य है। हिमालय के अनेक पहाडी़ इलाकों में यह प्रथा आज भी जीवित है और वहां की पारिवारिक अर्थव्यवस्था का मूलभूत आधार है। इन जौनसारों की दुनिया और जिंदगी देखने वाले को आष्चर्य से विमूढ कर दे ऐसी नकद और ठोस हकीकत है।

84

दिनकी तनहाई मेंे।

मनुश्य ने अब तक आंतरिक अनुभव से होने वाले जीवन विकास का अंतिम छोर नहीं पाया। उसकी रहस्याकांक्षा अब तक मिटी नही है। इसी लिए मनुश्य अब तक नित्य नूतन रहा है और अपनी अभिनव जीवनकला विभिन्न रूपों में प्रकट किये जा रहा है।

ऐसी ही किसी आंतरिक अभीप्सा के कारण ष्वेत हिम से ढके हुए, ऊँचे-ऊँचे, रमणीय व रहस्यमय पहाडों़ की तरफ और सदा सर्वदा बहती रहने वाली जीवन दायिनी नदियों की ओर मेरा सदा से आकर्शण रहा है। नगरों और नागरिक संस्कृति के प्रति मुझे विषेश मोह नहीं है। जीवनरस से प्लावित किसी मूक गांव के दर्षन का आंनद फिर भी मोहक और आकर्शण मालूम देता है। पर षहरों की धकापेल के प्रति कोई लगाव महसूस नही होता।

इसलिए पिछली दिवाली से पहले में पहले कुमांऊ के पहाड़ों में विचरण करने का मौका मिला तब बेहद आनंद हुआ था। हिमालय को देख कर भला कौन अघा सकता है? किस के नयन तृप्त हो सकते है? वैसे तो दार्जीलिंग से कांचनजंघा और गौरीषंकर की गिरिमालाओं के दर्षन कर के स्पप्न जैसी जागृति और परम जागृति जैसी समाधि दोनों के आनंद का अनुभव कर चुका हूॅ। नेपाल में इस नागधिराज के कुछ अलग स्वरूप में दर्षन कर चुका हूं। फिर भी कुमांऊ के पहाडा़ेंं पर से नंदादेवी और उसकी सखी जैसे दिखाई देने वाली अन्य पर्वतमालाओं के दर्षन से हृदय में जो भाव उठे उनकी तुलना अन्य अनुभवों के साथ नहीं की जा सकती।

हम बरेली से कार में चले थे। काठगोदाम तक समुद्र की सतह से अधिक ऊंचाई नहीं है। हजार दो हजार फुट की ऊँचाई तक प्रकृति में कुछ विषेश फर्क मालूम नहीं देता। लेकिन काठगोदाम के बाद नैनीताल तक चढ़ाई ही चढा़ई है। चारेक हजार फुट ऊँचाई पर पहुंचने पर हवा वातावरण प्राकृतिक दृष्य सब में एक प्रकार की नवीनता

और ताजगी का अनुभव होने लगा। आँखें वैसे भी मनुश्य की सर्वाधिक चैटन्यपूर्ण इन्द्रिय है। रोजमर्रा के दृष्यों से सहज भी अलग प्रकार का दृष्य देखने पर वे हर्शित हो उठती है। तो फिर नितांत नवीनता का दर्षन से उन्हें कितना आनंद हुआ होगा। इस का अंदाज लगाना मुष्किल नही। वातावरण की ताजगी और प्रकृति की नवीनता के आनंदानुभव को वे गहरे उतार कर अंतर की गहराइयों तक पहुंचा देती है। किसी अछूती या अभिनव सौन्दर्यश्री को देखकर वे पूरे अस्तित्व को मूक बना देती है। और दृश्टा को कविता के आंनद में डुबो देती है।

नैनीताल समुद्री सतह से लगभग छह हजार फुट की ऊँचाई पर है। नैनीताल नामक तालाब ही इस भूमि के सौंदर्य की आत्मा है। बाकी स्थान को तो पष्चिम की भ्रश्ट नकल के द्वारा सैलानियों ने अत्यंत साधारण बना दिया है। हम इस तथ्य से अवगत थे। अतः हमने वहाॅ से तीसेक मील की दूरी पर स्थित रानीखेत को हमारा निवासस्थान बनाया था। रानीखेत देखने के बाद हमें हमारा निर्णय अत्यंत उचित मालूम दिया।

रानीखेत की षांति और एकांत वाकई अलौकिक है। इस प्रकार की निर्जन षांति के लिए फारसी का 'तनहाई' षब्द अत्यंत सार्थक मालूम देता है। रात की षांति का अनुभव तो हम सब को होता है। परंतु इन ऊँचे पहाड़ों पर दिन की षांति और निर्जनता भी उपभोग की वस्तु हो सकती है। रानीखेत में हमें इसी प्रकार की 'दिन की तनहाई' का मधुर अनुभव हुआ। यहां के वातावरण में एक प्रकार की मुग्ध ग्रामीणता है जो तुरंत आकर्शित कर लेती है। एक रोज सुबह जल्दी उठ कर इस आकर्शण का पग-पग पर अनुभव करते हुए हम अल्मोड़ा जाने को निकले। नंदादेवी और उसकी संगिनी गिरिमालाओं को निरखने को सौभाग्य प्राप्त हुआ। आंखों को माना मूर्तिमती भव्यता का दर्षन हुआ। कैसी है भगवती नंदा?

कनकोŸाम कान्तिस्या सुकान्ति कनकाम्बरा।
देवी कनकवर्णभा कनकोŸाम भूशणा ।।

बाँयी ओर दिखाई देने वाली पर्वतराजियों में से पहली है। बदरी-केदार की गिरिमाला। उसके बाद का षिखर है त्रिषूलि। बीच में नंदादेवी आसन जमायें बैठी है और उस के बाद क्षितिज में अदृष्य होने वाले षिखर है पंचचूलि की गिरिमाला के।

बचपन में देवताओं की नगरी, गंधर्व-किन्नरों के नगर इत्यादि की कहानियां मंत्रमुग्ध हो कर पढी थी। उनकी सचाई के विशय में मन में कभी षंका उत्पन्न नहीं हुई और वे सारी अलौकिक नगरियाॅ हिमालय में ही बसी हुई है। यह बात तो पत्थर की लकीर की तरह मन पर अंकित हो गयी थी। हिमालय के साक्षात् दर्षन होते पर तो आज का संषयदग्ध मनुश्य भी ऐसी मुग्धता में डुब जाता है कि इन सुनी हुई दैवी नगरियों के अस्तित्व के विशय में मन में कोई षंका ही नही उठती। कदम-कदम पर ऐसा लगता है कि बस अगले मोड के बाद ही अलकापुरी के दर्षन हो जायेंगे। बुद्धि जबतक इस भव्यतता की मूच्छा में से जाग्रत होती है तब तक अंतरानुभूति उस की इतनी निकट की संगिनी बन जाती है कि वह खुद ही पुकार उठती है। कि जीवन के दैवी अंष का निवास इस हिमालय में ही है। दष्येन्द्रियः अंतकरण और बुद्धि इन तीनों के संगम में से जिस आत्मानुभव का उद्भव होता है। उसे सिर्फ जीवन का ही विषेशण दिया जा सकता है। क्रमषः यह भावना स्थायी हो जाती है और एक श्रवर्णनीय अनुभूति का रूप धारण कर लेती है।

इस प्रकार के मधुर अनुभव करते हुये हम अल्मोडा की ओर जा रहे थे। दूर से अल्मोड़ा को देख कर ऐसा लगा जैसें कुमाऊॅ के षांत पहाडों पर मनुश्यप्राणी ने घोसंला बना लिया हो। इन रैनबसेरे में एक सिरे से प्रवेष कर के दूसरे छोर से हम बाहर निकल गये और मिरतोला का रास्ता पकडा़। हमारा गंतव्य स्थान था उŸार वृन्दावन। उŸार वृन्दावन अल्मोड़ा से बीसेक मील दूर है। वहां पहुचने के लिए मिरतोला से हजारेक फुट ऊपर पैदल जाना पड़ता है।

उŸार-वृन्दावन में परम वैशणव और मर्मज्ञ भक्त श्री कृशणप्रेम का निवास है। अपनी जन्मभूमि और आप्त-स्वजनों को छोड़कर पिछले पैंतीसेक वर्श से वे यहां रहते है। पष्चिमी यंत्रवाद के कोलाहल से छुटकर यह विदेषी और विजातीय महामानव पूर्ण रूप से भारतीय बन गया है। उनके दर्षन की अभिलाशा ने जब प्रत्यक्ष अनुभूति का रूप धारण किया तब पूरा अस्तिव स्नेह से आर्द्र हो गया। जीवन दौड कर जैसे द्वापार योग में पहुंच गया। वहां से लौटा तो अपने आपको कलियुुग के सन 1960 में पाया। ऊपर से उतर कर मिरतोला वापस आये। ऐसा महसूस हुआ। मानो स्वर्ग से उतर कर मृत्युलोक में आ गये हों।

षाम को लौट कर रात को अल्मोड़ा मेेें गुजारी। सुबह जल्दी उठ कर कौसांनी की ओर चले कौसांनी के रास्ते में प्राकृतिक सौदर्य की अत्यंत खुषनुमा झलक दिखाई दी। पहाड़ों के बीच में से कोसी नदी खेलती कूदती चली आ रही थी। कहाॅ से वह आयी है और कहाॅ जायेगी। इस की उत्सुकता मन में जगाती हुई एक क्षण में सामने हाजिर तो दूसरे क्षण में दूर गायब। पार करते समय गले का आलिंगन करती हुई। कभी माता के वात्सल्य कभी बहन की ममता और कभी प्रियतमा के संखा का अनुभव कराती हुई । कोसी ने मेरी हृदय में एक सजीवन रूप धारण कर लिया। इस प्रकार के घनिश्ठ साथ का आंनद प्राप्त करते हुए हम कौसानी की ओर बढ़ रहे थे। सामने खड़ा हुआ। अनुल्लंघ्य दिखाई देने वाला पहाड़ कैसे पार हो सकेगा यह अचरज पूरा हो उस से पहले ही हमारी मोटर कोसानी पहुंच गयी। वहां पहुचते ही दूसरा प्रष्न उपस्थित हुआ। जिसका दर्षन करने हम इतने दूर आये थे वह ढाई-तीन सौ मील तक फैली हुई। चिरहिमाच्छादित गिरिमाला यहां से कैसे दिखाई देगी? यहाॅ तो कुछ भी नहीं है। परंतु एक मोड़ ले कर मोटर ने जैसे ही दिषा बदली कि आंखें धन्य हो गयी। नजरों के सामने भव्यता की जो छवि अनेक रूपों में व्यक्त हुई उसका वर्णन कैसे किया जाय? सृश्टि का समस्त सौन्दर्य लावण्य और चारूता ही नही उसकी समस्त गरिमा और भव्यता भी मूर्त रूप से सामने उपस्थित थी। जीवन के संपूर्ण मर्म महिमा कविता और कला की बल्लरी अनेक रूपों में पैल्लवित हो रही थी। दृश्टि दंग रह गयी। चेतना दिडमूढ हो गयी। मनुश्य की पामरता और परमाता का अनुभव एक साथ हुआ। प्रकृति के सामने नगण्य होने पर भी मनुश्य कैसा अदभूत जीव है। प्राचीन होने पर नित्य नवीन। पुरांतन और सनातन होने पर भी नित्य परिर्वतनषील । जीवन और मरण में बद्व होने के बाबजूद नित्य नूतन।

लौटते समय भी सखी कोसी का साथ रहा। अच्छा ही हुआ। वह मिल गयी। वरना विराट दर्षन की उस भव्यता में मुग्धता का मेल कौन करता? कोसी पार कर के रानीखेत के पास जहाॅ नंदादेवी के प्रथम दर्षन हुए थे। वहाँ पहुँचे। देखा कि षिखरों के महासागर में से एक एक षिखर बादलों का आवरण ओढकर अदृष्य हो रहा है। सर्जन और विसर्जन की कैसी अद्भूत रमणीय लीला। दृष्य अदृष्य का कैसा विलक्षण और जीवंत काव्य !

इस काव्य का आस्वादन करते-करते रानीखेत पहुॅचे। डूबते हुए दिन की तनहाई में उन षिखरों के काव्य का रह-रह कर स्मरण हो रहा था। सिद्धों के अखाड़े में कतार बाॅध कर बैठे हुए योगीन्द्रों के समान दिखाई देने वाले हिमालय के वे षृंग ध्रवुतारे की तरह चेतना में स्थिर हो गये है।